नये भारत के निर्माता

लेखक की अन्य रचनायें

• कविता

मल्लिका (१९४२)
बन्दी के गान (१९४५)
कारा (१९४६)

• उपन्यास

हड़ताल (१९४८)

• इतिहास तथा जीवनी

हमारा संघर्ष (१९४६)
नेताजी सुभाष (१९४५)
कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास (१९४७)
आजादी की कहानी (१९४९)

• संकलन

लाल किले की ओर (१९४६)
गान्धी-भजन-माला (१९४८)
गल्प-माधुरी (१९४८)
राष्ट्र-भाषा--हिन्दी (१९४८)



लेखक

नये भारत के निर्माता

लेखक

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

राज शर्मा एण्ड सन्स
लेनेड रोड, दिल्ली।

प्रथम बार १९५६
मूल्य साढ़े चार रुपये

मुद्रक

निर्णय आप ही करें

स्वतन्त्र भारत में अपनी आजादी का उपभोग करते समय कह
उन विभूतियों को न भूल जायं, जिन्होंने सर्वात्मना अपने जीवन क
हित-चिन्तन में ही खपा दिया और उनमें से कुछ आज भी अपन
त्वपूर्ण मस्तिष्क एवं अपूर्व प्रतिभा का उपयोग देश-सेवा मे ही क
हैं। अंग्रेज़ी राज्य के कुटिल दानवी पाश से मुक्ति दिलाने के लि
ग्रेस ने जो कुछ किया, वह सब इन्ही महान् आत्माओ का उद्योग था
आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने वाले इन महापुरुषों का व्यक्तित
त ऊँचा था, उनकी योग्यता बहुत अधिक थी, उनका मस्तिष्क अत्य
च्छ था—जिसमें स्वार्थ की भावना लेश-मात्र भी नही थी।

यह निर्विवाद है कि कांग्रेस और उसके कर्णधारो ने अब त
ने त्याग, वीरता राजनीतिज्ञता तथा लोक-सेवा का परिचय दि
उसके सामने और कोई संगठन ठहर ही नही सकता। कांग्रेस क
लता का एक-मात्र यही रहस्य है। प्रस्तुत पुस्तक में हमने निष्प
व से ऐसी ही 'महान् विभूतियो' के 'जीवन-सागर' का मन्थन कर
मोती प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रत्येक विचार-धारा
तिबिम्ब रखने में हम आँख खोलकर चले हैं; इसमें अतिशयोक्ति
। जन्म के आधार पर हमने इनको क्रमबद्ध किया है; यही ए
त्र सुगम मार्ग था।

इसका यह भी आशय कदापि नही कि प्रस्तुत पुस्तक में निर्दि
पुरुषों के अतिरिक्त और किसी ने भारत के निर्माण में भाग

है कि यदि प्रस्तुत पुस्तक को हिन्दी-जगत ने स्वागत किया तो नि
भविष्य मे हम देश के अन्य सूत्रधारो की जीवनियाँ भी प्रस्तुत करें
पुस्तक को लिखने, बिखरी हुई सामग्री को सजाने-सँवारने में
पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा है। एक ही व्यक्ति की जीवन-तालि
तैयार करने मे हमे महीनो लग गए। इसमे अनेक व्यक्तियों का प्रत्
और परोक्ष सहयोग हमे मिला है, अतएव हम उनके हार्दिक आभ
हैं। इस सम्बन्ध मे अपने स्नेह-भाजन श्री करनसिह 'प्रभाकर' त
श्री राजेन्द्र द्विवेदी की सेवाएं भी नही भुलाई जा सकतीं। पुस्तक आप
हाथो मे है। यह कैसी है, इसका तो निर्णय आप ही करें।

क्षेमचन्द्र 'सुम

१४६७ हाथीखाना
हाड़ी धीरज, दिल्ली।



बाबू श्रीप्रकाश (गवर्नर आसाम)

माननीय

बाबू श्रीप्रकाश को

संकेत

Lives of great men all remind us
We can make our lives sublime
And departing leave behind us
Foot-prints on the sands of time.

Long-fellow

पावन चरित महापुरुषों के हमें कराते ध्यान
हम भी अपने चरित बना सकते हैं दिव्य महान
महाविदा के समय जगत् से जा सकते साह्लाद
क्षण-भंगुर जग में अंकित कर स्मृति के अमर निशान



दादाभाई नौरोजी

: १ :

दादाभाई नौरोजी

[जन्म सन् १८२५ : मृत्यु सन् १९१६]

"अपनी आँखें और अपने कान खुले रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति न
ज्ञात होना चाहिए कि उच्च और श्रेष्ठ बातों के लिए उसकी जा
कैसे-कैसे संघर्ष छिड़े हैं ?"

भीष्म-सा सतेज पौरुष, द्रोण-सी सचेष्ट बुद्धि, उपनिषद्काली
षियों-जैसी सफेद दाढ़ी, आँखों पर चश्मा और सिर पर पार
ी देखते ही दादाभाई नौरोजी की सजीव प्रतिमा आँखों की
में उतर जाती है। जिस व्यक्ति ने कांग्रेस की स्थापना से भी
पूर्व भारत की सेवा में अपना समस्त दीर्घ जीवन अर्पित कर दिय
रत के उद्धार के लिए अविश्रान्त-परिश्रम किया, अपनी कलम
छुट्टी नहीं दी, कांग्रेस को स्थापित करने और पुष्ट बनाने में प्रमु
ा लिया तथा उसे शासन-सम्बन्धी सर्व साधारण की शिकायतें
ने का प्रयत्न करने वाली जन-सभा से बढ़ाते-बढ़ाते स्वराज्य-प्रा
निश्चित उद्देश्य से काम करने वाली राष्ट्रीय महासभा बना दिया

दादाभाई नौरोजी के पूर्वज पारसियों में पुरोहिताई का कार्य करते थे। आपका जन्म ४ सितम्बर १८२५ को बम्बई में हुआ था। ४ वर्ष के उपरान्त पिता का देहावसान हो जाने के कारण आपके पालन-पोषण का पूर्ण भार आपकी माता पर आ पड़ा था। और उस देवी ने इस होनहार बालक को वीर बनाने में प्राणपण से चेष्टा की। दादाभाई ने अपनी माँ के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा था कि—

"सत्य तो यह है कि मैं जो-कुछ हूँ, माता की बुद्धि और चेष्टा का फल हूँ।"

यदि आजकल की तरह उन दिनों विद्या बिकती तो सम्भवतः उनकी माता नौरोजी को विद्याध्ययन नहीं करा सकती थीं। आप किसी तरह 'एलफिन्स्टन इन्स्टीट्यूट' में प्रविष्ट हो गए और अपनी तीव्र प्रतिभा और परिश्रम के कारण आपको कालिज में लोकप्रिय होने में अधिक समय नहीं लगा। हर परीक्षा में आप इनाम पाते। गणित और विज्ञान में आपकी अधिक रुचि थी। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर 'बम्बई एजुकेशन बोर्ड' के अंग्रेज़-सभापति ने आपको विलायत जाकर कानून पढ़ने की सलाह दी और आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। अपने अभिभावकों के विरोध की वजह से आप वहाँ न जा सके और 'एलफिन्स्टन' स्कूल में असिस्टेंट हैडमास्टर हो गए। कालिज के गणित और पदार्थ-विज्ञान के यूरोपियन प्रोफेसर के मरने पर आप वहाँ प्रोफेसर नियुक्त किये गए। उन दिनों किसी भारतीय का उक्त कालिज में प्रोफेसर बनना अनहोनी बात थी। आप पहले भारतीय प्रोफेसर थे। १८४५ से १८५५ तक आप अध्यापन-कार्य करते रहे।

अध्यापन-कार्य के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन के विविध क्षेत्रों

ने कार्य-काल में आपका देश की अनेक संस्थाओं से सम्पर्क रहा। १८५५ में आप व्यापार में पड़े और बड़ी ही सफलता प्राप्त की। सिलसिले में आप लंदन भी गए और १२-१३-वर्ष वहाँ रहकर त के लिए महान् आन्दोलन करके आप १८६१ ई० में भारत । यहाँ आपका विराट स्वागत हुआ और आपकी सेवाओं की ति में तीस हजार रुपये की थैली आपको भेंट की गई। आपने में से एक पैसा भी अपने ऊपर व्यय न करके सारी रकम देश के ों में लगा दी। १८८५ में आप बम्बई-कौंसिल के सदस्य नियु गए। उसी साल आपने कांग्रेस की स्थापना में प्रमुख भाग लिया।

कांग्रेस के सूत्रधारों में सबसे अग्रगण्य और प्रथम व्यक्ति दादा ई नौरोजी थे। वे अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही कांग्रेस सेवा करते रहे और उसकी उन्नति की चिन्तना करते-करते अपने न की परिसमाप्ति की। सन् १८८६, १८९३ और १९०६ में वे बार कांग्रेस के सभापति हुए और बराबर कांग्रेस के साथ रहे इङ्गलैंड और हिन्दुस्तान दोनों जगह कांग्रेस के झण्डे को ऊँचा । दूसरी बार जो उन्हें कांग्रेस का सभापति चुना गया, वह सेण्ट्रल न्सबरी से उनके कामन-सभा का सदस्य चुने जाने की खुशी में था ंकि उस समय इस बात पर गम्भीरता के साथ विचार हो रहा कि भारत के दुःख-दर्द दूर कराने के लिए लन्दन में आन्दोलन री किया जाय। १८९१ में तो यह प्रस्ताव भी जोर के साथ पेश ा कि जब तक लन्दन में अधिवेशन न हो ले तब तक कांग्रेस का गित रखा जाय, लेकिन वह अस्वीकृत हो गया। ठीक इसी समय

ो इस बात की प्रेरणा की कि वे "इस शक्ति (शिक्षित भारतीय
ा अपनी ओर खींचने के बजाय अपने से दूर न फेंकें—अप
रोधी न बनावें।" ब्रिटिश राज्य की न्याय-परायणता में दादाभ
विश्वास था और वह अन्त तक कायम रहा।

सन् १९०६ में दादाभाई कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन के सभ
ति हुए। उस समय हिन्दुस्तान मानो एक खौलते हुए कढ़ाव में था
६ अक्तूबर सन् १९०५ को जो बंग-भंग किया गया था, उससे दे
एक नई लहर पैदा हो गई थी। पूर्वी पंजाब असन्तोष से उब
ा था। हिन्दू-मुसलमानों को एक दूसरे के खिलाफ उभारा जा र
। विशेष कानूनों (आर्डिनेन्सों) का शासन जारी किया जा रहा थ
नून और व्यवस्था के लिए फौज और ताजीरी पुलिस की तैना
नया क्रम चला और बरीसाल में होने वाली प्रान्तिक परिष
लिस द्वारा भङ्ग की गई। डा० रासबिहारी घोष के शब्दों में क
"शान्ति बनाये रखने के लिए पुलिस ने अन्धाधुन्धी के सा
न्ति का ही खून कर डाला था।"

दादाभाई ने बताया कि १८९३-९४ के बाद जन-संख्या तो १
शत ही बढ़ी है पर सरकार का शासन-सम्बन्धी खर्च १६ प्रतिश
गया है। और १८८४-८५ से लें तो तब तो जहाँ जनसंख्या १
शत बढ़ी है, वहाँ यह खर्च ७० प्रतिशत बढ़ा है। १७ से लेक
करोड़ तो अकेला सैनिक-व्यय ही बढ़ गया, जिसमें का ७ करो
ँ इंग्लैंड में किया जाता है।

कांग्रेस के सारे वायु-मण्डल में उस समय बहिष्कार की भावन
ई हुई थी। बाबू बिपिनचन्द्र पाल ने बहिष्कार शब्द को और भ

शी उद्योग-धन्धों का संरक्षण किया। लोकमान्य तिलक ने मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले विदेशी कपड़े के दुःखद श्य का अन्त करने के लिए राष्ट्रों की ओर से किये जाने वाले दृढ़ निश्चय, बलिदान और स्वावलम्बन को स्वदेशी कहा। लाला जी ने सका अर्थ देश की पूँजी को लाना और सुरक्षित रखना बतलाया और स्वयं दादाभाई के लिए यह आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी सुधार था शिक्षा-प्रचार की पुकार थी; क्योंकि शिक्षा-प्रचार के ही कारण लोगों में स्वराज्य की भूख पैदा हुई थी।

जिस समय यह सब घटनाएं घटीं, उस समय दादाभाई की आयु ० वर्ष थी। उस समय इन्होंने ६००० मील दूर (इंग्लैंड) से यहां आकर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के साथ स्वराज्य की क नई लहर और पैदा कर दी। उनके इस प्रयत्न पर 'इंगलिशमैन' उनकी खूब आलोचना की थी। लेकिन भारतीय माँगों के लिए स्ता इस तरह अपने-आप साफ हो रहा था। सन् १९०५ में गोखले स्वशासन की ओर प्रगति करने के लिए चार उपाय बताये थे, जो ९०६ के मुख्य प्रस्ताव में शामिल कर लिये गए। इस प्रकार दादाभाई के सभापतित्व में होने वाले कलकत्ता-अधिवेशन में चार मुख्य-प्रस्ताव पास हुए, जिनमें स्वशासन सम्बन्धी-प्रस्ताव इस प्रकार है:—

"इस कांग्रेस की राय है कि स्वराज्य-प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशों जो शासन-प्रणाली है वही भारतवर्ष में भी चलाई जाय और सके लिए नीचे लिखे सुधार तुरन्त किये जायं—

(१) जो परीक्षाएं केवल इंग्लैंड में होती है वे भारतवर्ष और इंग्लैंड में साथ-साथ हों और भारतवर्ष में ऊँची नौकरियों

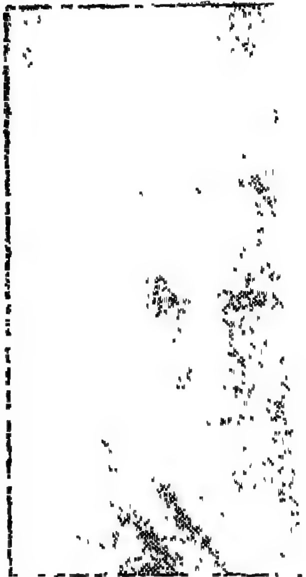
तथा बम्बई के गवर्नरों की कार्य-कारिणियों में भारतीय प्रतिनिधि पर्याप्त संख्या में हों।

(३) भारतीय और प्रान्तीय कौंसिलें बढ़ाई जायं; उनमें जनता के अधिक और वास्तविक प्रतिनिधि रहें और उन्हें देश के आर्थिक और शासन-सम्बन्धी कार्यों में अधिक अधिकार रहें।

(४) स्थानीय और म्युनिसिपल बोर्डों के अधिकार बढ़ाये जायं और उन पर सरकारी नियन्त्रण उससे अधिक न हो जितना ऐसी संस्थाओं पर इंग्लैंड में लोकल गवर्नमेंट बोर्ड का रहता है।

इसके अतिरिक्त इस अधिवेशन में बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास हुए।

जिस व्यक्ति ने भारत की सेवा में अपनी सारी जिन्दगी लगा दी, और जिसे विधाता ने ८९ वर्ष से अधिक समय तक हमारे बीच में बनाये रखा उसकी सेवाओं का उल्लेख हम इन थोड़ी-सी पंक्तियों में कैसे करें। दादाभाई तो कांग्रेस के ऐसे सूत्रधार थे, जिन्होंने अपने जीवन में तो काम किया ही, पर अपने पीछे भी न केवल अपने आत्म-बलिदानपूर्ण जीवन का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया है, प्रत्युत अपनी सन्तति ही ऐसी छोड़ गए हैं, जो आज भी अपनी कर्म-कुशलता द्वारा उनकी श्रेष्ठ परम्परा को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं।



डाक्टर एनी बेसेण्ट

: २ :

डाक्टर एनी बेसेण्ट

[जन्म सन् १८४६ : मृत्यु सन् १९३३]

" राष्ट्रों में सबसे अधिक दलित और मृत राष्ट्र भारतवर्ष इस सम[य पु]नर्निर्माण की अजर-अमर और क्रान्तिमय वेला में खड़ा है।"

गठा हुआ शरीर, महान् नारीत्व के तेज से दमकता हुआ चेहरा, [दो]नों ओर बिखरे हुए घुँघराले बाल, चौड़ा एवं उन्नत ललाट, दिव्य [चक्ष]ु, दीर्घ नासिका और उस पर लगा हुआ सुनहरी फ्रेम का चश्मा—[ए]क ऐसी आदर्श महिला की याद दिलाते हैं जिसने अपने जीवन क[ी अ]नीत घड़ियाँ रात-दिन जन-सेवा में व्यतीत करके संसार में नारीत्व [के] उज्ज्वल गौरव को चमका दिया। वे थीं श्रीमती एनी बेसेण्ट [वि]लक्षण व्यक्तित्व, अदम्य साहस, अद्भुत कार्यशक्ति, अपूर्व प्रतिभ[ा ए]वं अगाध पाण्डित्य की पुञ्ज डाक्टर एनी बेसेण्ट। जिन्होंने इंग्लैण्[ड में] जन्म लेकर भी भारतवर्ष को अपना घर बनाया और उसी की सेव[ा में] अपने बाल पका दिये। आप सहृदयता, विनम्रता और दयालुता क[ी स]जीव प्रतिमा थीं। दीन और दुखियों को देखकर आपका हृद[य]

विरोधी दिशाओं में बहने वाली धाराओं का स्रोत है—वह स्रोत कि जिसका प्रवाह दीर्घ आयु और वृद्धावस्था में भी बन्द नहीं हुआ, और न ही मन्द पड़ा, वरन् सतत एक ही गति से चलता रहा। लिखने, बोलने तथा विचारने और संगठन, आन्दोलन एवं नेतृत्व करने की आपमें अलौकिक शक्ति थी। वे जिधर मुँह फेरती थीं, उधर ही बिजली की भाँति फैलती हुई संजीवनी शक्ति का संचार कर डालती थीं। आपकी महान् सेवाओं को भारतवासी कभी नहीं भुला सकते और जब तक भारत के राष्ट्रीय विकास का इतिहास जीवित रहेगा, उसमें आपका नाम सदैव चमकता रहेगा।

श्रीमती एनी बेसेण्ट का जन्म लन्दन में १ अक्तूबर १८४६ को एक साधारण कुल में हुआ था। आपके पिता डाक्टर विलियम वेजवुड आयरलैंड के निवासी थे, किन्तु लन्दन में व्यवसाय करते थे। आपका बचपन का नाम वुड था। छोटी आयु में ही कुमारी वुड को अध्यापिका मैर्चेट के सिपुर्द कर दिया गया, जिन्होंने आपको विविध विषयों की शिक्षा देकर आपके हृदय में विद्या एवं ज्ञान के प्रति वह अपूर्व प्रेम और रुचि उत्पन्न कर दी जो जीवन के अन्तिम दिन तक बनी रही। आपने अध्ययन काल में ही अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। १८६७ में फ्रैंक बेसेण्ट नाम के युवक के साथ आपका विवाह हो गया। आपके पति महोदय एक पादरी थे और आप स्वतंत्र विचारों की थीं। ईसाई धर्म की रूढ़ियों पर आपका विश्वास न था। इसलिए पति-पत्नी के विचार परस्पर मेल न खा सके। दोनों में वाद-विवाद रहने लगा. इससे आपका जीवन और भी दुखमय हो गया। इसी बीच आपकी कन्या की बीमारी ने आपके मानस को और भी उद्विग्न

पति-पत्नी का सम्बन्ध और भी कटु हो गया। जब आपके प
आप पर गिरजे में जाकर प्रार्थना करने के लिए दबाव डाला,
आपने अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य करने से साफ इन्कार कर दिय
फलतः १८७४ में पति-पत्नी ने एक दूसरे को तलाक दे दिया।

अब आप पारिवारिक जीवन से मुक्त हो चुकी थीं, अतः आ
जीवन को पूर्ण रूप से सार्वजनिक कार्यों में लगा दिया। आपने रूढि
की संकीर्णता एवं अन्ध विश्वासों को तोड़कर अपने स्वतंत्र विचारों
निर्भीकता से प्रचार किया। आपकी दृष्टि में जो सत्य दीख पड़ा, उ
ो झुक गईं। १८७४ से १८८६ तक आपने चार्ल्स ब्रेडला
वतंत्र हलचलों में उनका साथ दिया। वास्तव में चार्ल्स ब्रेडला व
ो सफलता मिली, वह आपकी प्रकाण्ड विद्वत्ता, लेखन-शक्ति, प्रचा
ौर लगन के कारण ही मिली। आपने ईश्वर-विरोधी विचारों क
ब जोरों से प्रचार किया। कई जगह तो जनता ने उत्तेजित होक
ाप पर पत्थर तक फेंके, अखबारों में, और सभाओं में आपकी क
ालोचना की गई, किन्तु इससे आप हतोत्साह न हुईं, प्रत्युत औ
दुगने वेग से अपना कार्य करती रहीं। अब आप सन्तति-निग्रह
प्रचार भी करने लगीं। इसके लिए आपने 'न्यू माल्थ्यूज़ियन लीग'
म की एक संस्था बनाई। आपका कहना था कि जन-संख्या जिस
ुपात से बढ़ रही है, उस अनुपात से खाद्य-पदार्थों की वृद्धि नहीं
रही है। इसलिए मनुष्य को कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह करना
हिए। सन् १८७४ में आप पर संतति-निग्रह सम्बन्धी पैम्फलेट प्रका-
ा करने के अभियोग में मुकदमा चलाया गया था। उस अभियोग से
प्राप बरी हो गईं। किन्तु धर्म-च्युत होने का अपराध आप पर

आपकी भेंट हुई, जिन्होंने आपके जीवन पर गम्भीर प्रभाव डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि आप नास्तिक से आस्तिक बन गईं। आपने इस सत्य का अनुभव किया कि भौतिक जीवन ही सब-कुछ नहीं है, आध्यात्मिक जीवन उससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और वास्तविक है। आपने बिना किसी संकोच के अपना भ्रम स्वीकार कर लिया और जिस नास्तिकवाद के प्रचार के लिए आपने अनेक कष्ट उठाये थे, उसे एकदम छोड़ दिया। यह है वह विशेषता, जो एक असाधारण व्यक्ति में पाई जाती है।

इंग्लैंड के सार्वजनिक जीवन में आपका विशेष स्थान था। आपने वहाँ के अनेक प्रमुख आंदोलनों में भाग लिया। एक जबर्दस्त आन्दोलन करके आपने अपने नास्तिक मित्र चार्ल्स ब्रेडला को पार्लमेण्ट में प्रविष्ट कराया था। जीवित पशुओं की चीर-फाड़ के विरोधी आन्दोलन में भी आपका मुख्य हाथ था। मजदूरों की दयनीय दशा देखकर आपका हृदय द्रवित हो उठा! आप साम्यवादिनी बन गईं और फ़ेबियन सोसायटी में सम्मिलित हो गईं। आपने मज़दूरों के लिए तुमुल आन्दोलन किया। गरीब मज़दूरों को पुलिस और सरमायेदारों के अत्याचारों से बचाने के लिए आपने 'सोशलिस्ट डिफेंस एसोसियेशन' की स्थापना की। 'लिंक' नाम का पत्र भी निकालना प्रारम्भ किया। भारत और आयरलैंड के स्वातन्त्र्य-आन्दोलनों में भी आप दिलचस्पी लेती थीं। इसके साथ-साथ इंग्लैंड के विद्वत् समाज में भी आपकी विशेष प्रतिष्ठा थी आपका अध्ययन और अनुशीलन गम्भीर था। विविध भाषाओं और विषयों की आप पंडिता थीं। थियोसाफी में प्रवेश करने के पश्चात् आप अध्यात्म-शास्त्र में विशेष रूप से रत हो गई थीं।

डाक्टर एनी बेसेण्ट

समस्त यूरोप, अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा एशिया का भ्रमण किय
कुछ समय पश्चात् आप भारत आ गईं और यहीं से 'थियोसाफिक
सोसायटी' का कार्य समस्त देशों में चलाने लगीं। श्रीमती एनी बेसे
ने हिन्दू धर्म का गम्भीर अध्ययन करके बीसियों विद्वत्तापूर्ण ग्र
लिखे। इन ग्रन्थों ने योरोपियन विद्वानों की आँखें खोल दीं। वे हि
धर्म और भारतीय संस्कृति का परिचय पाकर चकित रह गए। भा
रतीय विद्वानों ने भी आपके ग्रन्थों का बड़ा आदर किया। अब आप
अपना समस्त जीवन भारत को अर्पित कर दिया और अपनी पू
शक्ति के साथ भारत की सेवा में लग गईं। शिक्षा की ओर आपक
विशेष रूप से झुकाव था। अपने अनेक भारतीय मित्रों की सहायत
आपने, जुलाई सन् १८९८ को बनारस में 'सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल
स्थापना की, जो बाद में कालिज और फिर हिन्दू-यूनिवर्सिट
रूप में परिणत हो गया। आप उसको 'इण्डियन यूनिवर्सिटी
का देने के लिए बहुत उत्सुक थीं। इसके लिए आपने भारत-मंत्र
भी बातचीत की थी, इधर मालवीय जी भी हिन्दू-यूनिवर्सिटी क
जना बना रहे थे, यह निश्चय हुआ कि दोनों योजनाएं मिला दी
गईं। फलतः आपके खोले हुए कालिज को ही सन् १९१६ में हिन्दू
निवर्सिटी का रूप दे दिया गया।

सन् १९१३ से आपने भारत के राजनीतिक आन्दोलनों में दिल
चस्पी लेना प्रारम्भ कर दी। इसी उद्देश्य से आपने 'कामन वील'
का एक साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया और १९१४ में
'न्यू इण्डिया' नाम से एक दैनिक पत्र भी निकाला। 'न्यू इण्डिया' उस
समय भारत का सबसे अधिक लोकप्रिय पत्र था। आपके दोनों पत्रों

साथ संगठन का एक बिलकुल नया ढंग लेकर कांग्रेस में प्रवेश किया। आपके विलक्षण व्यक्तित्व की छाप तो पहले ही सारे जगत् पर लग चुकी थी, अतः भारतीय राजनीति को एक नवीन जीवन प्रदान करने में आपको अधिक समय नहीं लगा। अपने प्रयत्न से आपने कांग्रेस के नरम और गरम दलों में समझौता कराया। १९१६ में श्री गोखले और तिलक दोनों विरोधी नेताओं को एक मंच पर इकट्ठा कर दिया।

कांग्रेस के कार्य की मन्द गति आपको पसन्द नहीं थी। आप उसे एक क्रियाशील जीती-जागती संस्था बनाना चाहती थीं। इसी विचार से आपने सितम्बर १९१६ को 'होमरूल लीग' की स्थापना की। सारे देश में होमरूल लीग ने नवजीवन का संचार कर दिया। उसकी शाखाओं का जाल बिछ गया। सरकार घबरा गई और उसके विरोध में उसने अपने हथियार सँभाल लिये। श्रीमती एनी बेसेण्ट का बम्बई और बरार प्रान्त में प्रवेश बन्द कर दिया गया और उनके दोनों पत्रों 'न्यू-इण्डिया' और 'कामनवील', जो होमरूल लीग के प्रचार का मुख्य साधन थे, से जमानतें माँगी गईं। २०,००० रु० तक की जमानतें जब्त कर ली गईं। अन्त में १५ जून १९१७ को आपको गिरफ्तार कर लिया गया। इस समय आपके सम्बन्ध में देश में इतना उत्साह भर गया था कि आपको छुडाने के लिए कांग्रेस-कमेटी ने सत्याग्रह करने का विचार किया। सत्याग्रह होने ही वाला था कि मि० माण्टेगू की प्रसिद्ध घोषणा से राजनीतिक वातावरण में कुछ शान्ति आ गई और सत्याग्रह का विचार स्थगित कर दिया गया। इसी वर्ष कलकत्ता में होने वाली कांग्रेस का आपको सभापति चुना गया। अधिवेशन से ठीक पहले आपको रिहा कर दिया गया। आपने अपने सभापति-पद से दिये गए

तक पूरी तरह निबाहा। होमरूल लीग के आन्दोलन में सम्मिलि
कर भारतीय महिलाओं ने भारत की राजनीतिक हलचलों में
ग लिया, इसका श्रेय आपको ही है।

उस समय श्री गोखले और श्री फिरोज़शाह मेहता का देहा
चुका था। लोकमान्य तिलक वृद्ध हो चुके थे, सर दीनशा ईदल
वा को भी बुढ़ापे ने आ घेरा था, श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के विचारों
जंग चढ़ना प्रारम्भ हो गया था, लाला लाजपतराय अमेरिका च
थे, मालवीय जी साम्प्रदायिक गुट बनाने की सोच रहे थे, गान्ध
राजनीति का अध्ययन कर रहे थे, ऐसे विकट समय में देश के सा
नक जीवन के नेतृत्व को सँभालकर आपने अपने अदम्य साहस
चय दिया। सन् १९१६ से १९१८ तक समस्त देश में आप-ही-आ
। विलक्षण व्यक्तित्व, अपूर्व साहस, अद्भुत कार्य-शक्ति औ
मुखी प्रतिभा के जो गुण एक नेता में होने चाहिएं, वे सब आप
ष्ट मात्रा में विद्यमान थे। सेवा की भावना भी आपमें ओत-प्रो
। विचार उग्र थे, अपनी लेखनी और वाणी दोनों से ही आ
र बरसाती थीं। १९१८ में आपने एक ऐसे बिल की माँग की, जिस
सार १९२३ या अधिक-से-अधिक १९२८ तक भारत को औ
शिक स्वराज्य दे दिया जाय और बीच के इन पाँच या दस वर्षों
शासन-सत्ता भारतीयों के हाथों में आती चली जाय।

सन् १९१९ में रौलट-एक्ट के सम्बन्ध में महात्मा गान्धी
का मतभेद हो गया। गान्धी जी ने रौलट-बिल के विरोध में सत्य
-आन्दोलन आरम्भ कर दिया था और वे सरकार के नये शास
रों के प्रति आशावादी बन गई थीं। मतभेद का यही कारण था

आपने अपना कार्य बराबर जारी रखा। सन् १९२५ में आपने 'कामनवेल्थ आफ इण्डिया बिल' नाम से भारत का एक शासन-विधान बनाया और उसे पार्लमेण्ट से पास कराने के लिए कई बार इंग्लैण्ड गईं। १९२७ की मद्रास-कांग्रेस में सम्मिलित होकर आपने स्वराज्य के ध्येय का समर्थन किया था। सत्याग्रह और तीव्र उपायों से आप असहमत थीं। कलकत्ता-कांग्रेस में आपने अपना यह मतभेद स्पष्ट शब्दों में उपस्थित किया था।

भारतीय राजनीति से उदासीन होकर भी आप 'थियासाफिकल-सोसायटी' का कार्य बराबर करती रहीं। आप उस समय अत्यन्त वृद्ध हो चुकी थीं, फिर भी आपकी कार्य करने की इच्छा युवा ही थी। अड्यार (मद्रास) में आपने 'थियासाफिकल सोसायटी' का जो केन्द्र स्थापित किया, वह आपका स्मृति-स्तम्भ है।

२० सितम्बर १९३३ को आपका देहावसान हो गया। धार्मिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति रखने वाली इस महान् महिला ने भारत की जो सेवा की, उसके लिए भारतवासी चिर-कृतज्ञ रहेंगे।





लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

: ३ :

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

[जन्म सन् १८५६ : मृत्यु सन् १९२०]

"स्वराज्य प्राप्त करना हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। इतना ही नही, बल्कि मैं यहाँ तक कहता हूँ कि वह हमारा धर्म है। जिस प्रकार कोई मनष्य अग्नि से ताप दूर नही कर सकता, वैसे ही कोई हमसे स्वराज्य को अलग नही कर सकता।"

चौड़ा भव्य ललाट, घनी मूछें, दृढ़ता-व्यंजक ठुड्डी, और जो-कुछ कह रहे हैं, मानो उसे ठीक-ठीक जानने-समझने वाले ओठ; यही वह बाह्य आकर्षण थे, जो लोकमान्य की ओर किसी को भी सहसा खींच लेते थे। उनके मुँह से कठिनाइयों से भरे उनके जीवन का सारा इतिहास पढ़ा जा सकता था। किसी बात की तह तक धँस जाने वाली आँखों के नीचे एवं ललाट पर खिंची लकीरें मूक भाषा में बताती है कि उन्होंने राजनीति को अथ से इति तक खोद-खोद कर पढ़ा था।

लोकमान्य का जीवन उस योद्धा सेनापति का जीवन था, जो गिरता-पड़ता अपनी सेना में जीवन डालता हुआ उसे

कर चमक उठा था। इस ब्राह्मण को हमने अद्भुत लगन में सदा
द्र की चिनगारियों के साथ खेलते देखा है। कभी लड़ते, कभी क्यु
ना करते, कभी शत्रु से हाथ मिलाकर सन्धि करते—सन्धि इसलि
दम लेकर क्षत्रित्व की धार पर शान दे दिया जाय और फिर यु
में नवीन उत्साह के साथ पैंतरे दिखाए जायं। परन्तु ऐसा नहीं
में केवल क्षत्रित्व ही रहा हो। कर्मण्यता के इस सतत प्रवाह
छे उनमें एक ब्राह्मण की सादगी और विद्या भी थी। वह प्रकृति ए
कार से नहीं, अपितु परिस्थिति और अभ्यास से क्षत्रिय होने
रण एक राजनीतिज्ञ एवं रण-कुशल सेनानायक बन गए थे। उन
त्रित्व विद्या, बुद्धि एवं सात्त्विकता की आभा से प्रदीप्त था। वे ए
र्षि थे।

लोकमान्य की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण है, उनका जन
ति आदर और प्रेम। वे जनता के थे और जनता उनकी। उन्हों
जनता की भावनाओं का आदर किया और अपने देशवासियों
थ गिरते-पड़ते, उठते-बैठते तथा लड़ते-झगड़ते आगे बढ़ते रहे। जन
कष्ट को उन्होंने अपना कष्ट समझा, उसकी भाषा, रीति-नीति,धर्म
हित्य में समान भाव से वे रस लेते रहे और साथ ही उसे मार्ग दिख
उसके साथ-साथ आगे बढते रहे। जनता उनके इस अपनेपन क
भव करती थी, तभी वे इतने लोकप्रिय हो गए। उनकी लगन
ा और उसके लिए असीम कष्ट-सहन की क्षमता ने उनकी इस लोक
ता को 'लोकमान्य' बना दिया। उनकी राजनीति एक स्थायी नीति
। वे जीवन-भर अपने एक ही सिद्धान्त पर दृढ़ रहे। प्रतिसहयोग-
को तैसा-'शठे शाठ्यम्'--उनकी राजनीति का सार था और व

कारों के बिना सामाजिक सुधारों में उलझना व्यर्थ है। वे अपनी
कृति, रीति-नीति तथा आचार के प्रति पूर्ण निष्ठा और प्रेम रखते थे
का अपना खास रंग था। अँग्रेजी साहित्य से उन्होंने बहुत-कुछ
ा, परन्तु स्वयं उसके रंग में रँगे नहीं—उसको ही अपने रंग में
लिया।

राजनीति में उनकी अद्भुत गति का प्रमुख कारण था—उनकी
हार-कुशलता। भावुकता में आदर्श के लिए वे कभी पागल नहीं
; न कोरे व्यवहारवादी की भाँति उन्होंने आदर्श की अवहेलना
की। बल्कि वे तो आदर्श और व्यवहार दोनों का समन्वय करते
-क्षेत्र में चलते थे। उनका महान् त्याग पल-पल करके जलने वा
क की भाँति था, न कि भावावेश में आकर भस्म होने वाले परवा
भाँति। उनकी लगभग ४० वर्ष की अनवरत साधना, तपस्या औ
ग ने ही भारतीय स्वाधीनता के भव्य भवन की नींव डाली थी।

लोकमान्य तिलक का जन्म रत्नागिरी में २३ जुलाई १८५६ क
ा था। उनके पिता गंगाधर रामचन्द्र तिलक कोंकण में रत्नागि
ले के निवासी थे। पहले वह वहीं एक स्कूल में अध्यापक थे, बाद
ना और पूना जिलों के स्कूलों के डिप्टी इन्सपैक्टर हो गए। तिल
नाम बलवन्त राव रखा गया था, परन्तु घर में बोल-चाल का ना
ल' होने के कारण अन्त में वही प्रसिद्ध हो गया। बचपन
पिता इन्हें संस्कृत के श्लोक याद कराते थे। आप बड़ी तीव्र अ
व्र बुद्धि के थे। आठ वर्ष की अवस्था में ही आप भिन्न
ाल, रूपावली, समासचक्र, आधा अमरकोश और ब्रह्मकर्म का बहु

करना, कुश्ती लड़ना, छात्रों को इसके लिए उत्साहित करना और शृंगार अथवा नाज-नखरा करने वालों को तंग करना आपकी विशेषताएं थीं। १८७२ में मैट्रिक पास करके १८७६ में प्रथम श्रेणी में आनर्स के साथ डेक्कन कालिज से बी० ए० पास किया। १८७७ में आपने गणित में एम० ए० की परीक्षा दी, परन्तु असफल रहे। १८७९ में एल-एल० बी० की परीक्षा पास की, किन्तु वकालत नहीं की। कालिज में अपने मित्र आगरकर, जो महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समाज-सुधारक थे, से मिलकर आपने यह निश्चय कर लिया था कि जीवन में सरकारी नौकरी न करके देश-सेवा का कार्य ही करते रहेंगे।

बहुत विचारों के बाद दोनों मित्रों ने निश्चय किया कि देश को इस समय शिक्षा की सबसे अधिक आवश्यकता है। अतः दोनों ने पहले सर्वाङ्गीण शिक्षा का कार्य हाथ में लिया। इसके फलस्वरूप उन्होंने पहली जनवरी १८८० को 'न्यू इंग्लिश स्कूल' की स्थापना की। तीन मास में ही इस स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या ५०० तक पहुँच गई थी और १८८४ में १००० से भी ऊपर हो गई थी। २४ अक्तूबर १८८४ को डेक्कन एज्यूकेशन सोसायटी (दक्षिण शिक्षा-समिति) की स्थापना की। १८८५ में इसी समिति की ओर से 'फर्गुसन कालिज' की नींव डालकर आपने महाराष्ट्र में शैक्षणिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। बाद में समिति के कार्यकर्त्ताओं से मतभेद हो जाने के कारण आप १८९० में इन शिक्षण-संस्थाओं से पृथक् हो गए।

जब तिलक और आगरकर ने जन-शिक्षा के लिए जीवन अर्पित कर दिया तभी उन्होंने विचार किया था कि इसके दो प्रमुख साधन

करते थे। आगरकर के लेखों में सामाजिक विषयों पर उदारता के साथ सोचने की प्रवृत्ति, विनोद, निस्पृहता एवं भावुकता स्पष्ट दिखाई देती थी और तेजस्विता, जोश, प्राचीनता के प्रति आकर्षण तथा राजनीतिक सुधार की आकांक्षा तिलक की विशेषता थी। सन् १८८१ के अन्त में 'केसरी' और 'मरहट्टा' में कोल्हापुर रियासत के सम्बन्ध में कुछ आपत्ति-जनक लेख छप गए, जिसके कारण तिलक और आगरकर को चार-चार मास की सादी कैद की सजा हो गई। इस सजा से तिलक और आगरकर के प्रति लोगों में श्रद्धा का भाव अधिक मात्रा में बढ़ गया। जब वे जेल से छूटे तब हजारों की संख्या में लोगों ने जेल के फाटक पर एकत्र होकर उनका स्वागत किया था।

सन् १८९३-९४ में आपने जनता को जाग्रत एवं संगठित करने के दो काम और किये। गणेश-उत्सव सार्वजनिक रूप से मनाने की परि-पाटी चलाई। यह प्रथा इतनी लोकप्रिय हुई कि आज तक वह महाराष्ट्र का सबसे प्रमुख उत्सव बना हुआ है। दूसरा उत्सव शिवाजी-उत्सव के नाम से आरम्भ किया। इन उत्सवों पर राज-नीतिक विषयों पर विचार, विवाद और भाषण आदि होते हैं।

सन् १८९५ में लोकमान्य बम्बई प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गए। कौंसिल में आप लोक-पक्ष का समर्थन बड़ी योग्यता तथा निर्भीकता से करते थे। १८९६ में महाराष्ट्र में अकाल पड़ा। आपने 'केसरी' द्वारा अकाल-पीड़ितों के लिए आन्दोलन किया और ग्राम-ग्राम में कार्यकर्ता भेजकर लोगों की सहायता की। उन्हें संगठित होकर परस्पर सहायता करने का उपदेश दिया और स्थान-स्थान पर सस्ते अन्न की दुकानें खुलवाईं। १८९७ में [illegible]

तो चापेकर नामक एक मनचले युवक ने विक्षुब्ध होकर प्लेग
मेटी के अध्यक्ष मि० रैण्ड की हत्या कर डाली। इससे सर्वत्र ब
सनी फैल गई, और सरकार ने इसका यह अर्थ लगाया कि 'केस
प्रकाशित लोकमान्य के लेखों का ही यह परिणाम है। फलतः उर
ह लेख चुनकर लोकमान्य पर राजद्रोह का अभियोग चलाया अं
सितम्बर १८९७ को उन्हें १८ मास कैद की सजा दे दी। स
विरुद्ध अपील करने का यत्न भी किया गया, किन्तु सफल
हीं मिली।

शिक्षा-क्षेत्र में कार्य करते हुए लोकमान्य ने अपनी विद्व
छाप अनेक विद्वानों के मन पर बिठा दी थी। उन
नों आपने 'ओरियण्टल सोसायटी' में पढ़े जाने के लि
योतिष-शास्त्र के आधार पर 'ओरायन' नाम से एक निबन्ध लि
। जिसमें वेदों की प्राचीनता सिद्ध की गई थी। यह निबन्ध ब
एक पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ था। इस निबन्ध
देशों के मैक्समुलर आदि विद्वानों के मन में तिलक के लिए बहु
आदर-भाव बैठ गया था। उन्होंने तथा अनेक भारतीय एवं यू
यन मित्रों ने तिलक को छुड़वाने का बहुत यत्न किया। जिस
लस्वरूप आप सजा की पूरी अवधि से ६ मास पूर्व ही छ
ये गए।

यों तो आप पहले से ही कांग्रेस में शामिल थे और १८९५
ा-कांग्रेस के सेक्रेटरी भी थे, पर अभी तक कांग्रेस में आपका विशे
ान न था। सन् १८९८ से आपका प्रभाव कांग्रेस में बढ़ने लग

कारी बड़ी चालाकी के साथ उग्र दल की उपेक्षा करते रहे
न् १९०७ में सूरत-कांग्रेस में दोनों दलों में झगड़ा हुआ औ
का उग्र-दल कांग्रेस से अलग हो गया।

बंग-भंग के विरोध में आपने 'केसरी' और 'मरहट्टा' में क
तापूर्ण लेख लिखे थे। जिनको लेकर सरकार ने जून सन् १९०
आप पर फिर राजद्रोह का अभियोग लगाया। और आपको ६ व
निर्वासन एवं १०००) रु० जुर्माने की सज़ा दे दी। १९०८
१४ तक आप मांडले (बर्मा) जेल में रहे। वहाँ अनेक कठिनाइय
सामना करके निरुद्वेग होकर शान्त-चित्त से गम्भीर अध्यय
रहे। वहाँ पर ही आपने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीता-रहस्य
ला, जिसमें कर्मयोग की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। तभी १९१२
की पत्नी का देहान्त हो गया।

जेल से छूटने के बाद १९१४ के महायुद्ध के प्रारम्भ में लोकमान
देश में 'स्वराज्य' का नारा बुलन्द किया। देवी एनी बेसेण्ट
मिलकर 'होमरूल' आंदोलन में स्वराज्य-संघ की स्थापना की औ
के कोने-कोने का दौरा करके राष्ट्र की सोई हुई शक्ति को झकझो
जगाया। उस समय आपकी ललकार—"स्वराज्य मेरा जन्मसि
धिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा"—समस्त देश में गूँज उ
। इसी बीच महायुद्ध में सरकार को सहायता देने के विषय
पका गान्धीजी से मतभेद पैदा हो गया था। गान्धीजी कहते थे
संकट के समय बिना शर्त के सरकार की सहायता करनी चाहि
न्तु आपका कहना था कि यदि सरकार हमें स्वराज्य देने का व
तो हम सरकार की सहायता कर सकते हैं। इसी समय उन्हो
ी जी से कहा था—"इस सरकार की नीयत का भरोसा नहीं

को समझकर एवं परिस्थिति से तथ्य निकालकर भविष्य में होने वाली बातों का आभास पाने की अपूर्व शक्ति विद्यमान थी। महायुद्ध के पश्चात् उनके इस वाक्य—सरकार की नीयत का भरोसा नहीं—की सत्यता गान्धी जी को भी माननी पड़ी। तिलक दूरदर्शी थे और परिस्थिति से लाभ उठाना जानते थे।

जब आप मांडले जेल में थे, तब सर वैलेण्टाइन शिरोल ने 'इण्डिया अनरेस्ट'(भारतीय अशान्ति) नाम की पुस्तक लिखी थी और उसमें आप पर भी अपमानजनक आक्षेप किये गए थे। इस पुस्तक से विदेशों में भारतीय राष्ट्रीय-दल के सम्बन्ध में गलतफहमी फैलने की सम्भावना थी। अतः १६१८ में लोकमान्य ने इंग्लैंड जाकर शिरोल पर मानहानि का मुकदमा चलाया। भारत-सरकार ने इसमें इतनी दिलचस्पी ली कि शिरोल की सहायता के लिए यहाँ से तमाम सरकारी कागजात लेकर एक विशेष अफसर विलायत भेजा गया। अंग्रेजों ने इसे अपनी और अपने देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। फलस्वरूप मुकदमे का फैसला लोकमान्य के विरुद्ध हुआ। मुकदमे से निपटकर वे इंग्लैंड में भारतीय स्वराज्य का आन्दोलन करने लगे। आपने भारत की सच्ची परिस्थिति का रहस्य प्रकट करके इंग्लैंड की जनता का मत भारत के अनुकूल बनाने का सद्प्रयत्न किया। माण्टेगू चेम्सफोर्ड-शासन-विधान में आवश्यक सुधार करने के लिए भारी आन्दोलन किया। भारतीय कांग्रेस की लन्दन-शाखा को सुव्यवस्थित करके वहाँ की लेबर-पार्टी के नेताओं की भारत के साथ विशेष दिलचस्पी उत्पन्न की और उस पार्टी को भारत के लिए आन्दोलन करने के लिए २० हजार रुपये दिये। उन्हीं दिनों भारत में उनकी ६० वीं वर्षगाँठ धूम-धाम से मनाई गई। इंग्लैंड की जनता ने इस अवसर पर एक लाख रुपये की थैली भेंट करके

सन् १९१८ में दिल्ली-कांग्रेस के आप सभापति चुने गए, किन्तु इंग्लैंड चले जाने के कारण सभापति न बन सके। १९१९ में आप अमृतसर-कांग्रेस में शामिल हुए थे। आपने सरकारी सुधारों को अपूर्ण असन्तोषप्रद एवं निराशाजनक बताया। आपका विचार था कि कांग्रेस प्रजावादी-दल की स्थापना करके शिक्षा, आन्दोलन एवं संगठन द्वारा स्वराज्य प्राप्त किया जाय। परन्तु भारत के दुर्भाग्य से आप विशेष कुछ कर न सके।

१९२० में माण्टेगू-सुधार-योजना के सम्बन्ध में कार्य-शैली स्थिर करने के लिए आपने 'डेमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी' बनाई। इसी समय जून मास के अन्त में आपको किसी मुकदमे के सम्बन्ध में बम्बई जाना पड़ा। वहाँ जाकर ऐसे बीमार पड़े कि फिर न उठ सके और ३१ जुलाई १९२० को रात के १२ बजकर ४० मिनट पर राष्ट्रीयता के इस प्रथम सूत्रधार ने अपना दूसरा चोला बदल लिया। जनता का प्रिय नेता सदैव के लिए उससे अलग हो गया। समस्त देशवासी—क्या हिन्दू, क्या मुसलमान—इस दुःखद घटना से चिन्ता, व्यग्रता और उद्विग्नता के सागर में डूब गए। ऐसा सार्वजनिक शोक इससे पहले कभी नहीं मनाया गया था। अपने को जनता में ओत-प्रोत करके 'लोकमान्य' और 'हृदय-सम्राट्' शब्दों को सार्थक करने वाले भगवान् तिलक के लिए वैसा होना स्वाभाविक ही था। आपकी मृत्यु के साथ देश के राष्ट्रीय क्षितिज का देदीप्यमान सूर्य अस्त हो गया और इसका स्थान सोलह कलाओं से पूर्ण गान्धी रूपी चन्द्रमा ने ग्रहण कर लिया।

★

: ४ :

स्वामी श्रद्धानन्द

[जन्म सन् १८५६ : मृत्यु सन् १६२६]

"यदि जाति को स्वतन्त्र देखना चाहते हो तो स्वयं सदाचार की मूर्ति बनकर अपनी सन्तान के सदाचार की बुनियाद रख दो। जब सदाचारी, ब्रह्मचारी शिक्षक हों, और शिक्षा-पद्धति राष्ट्रीय हो, तभी जाति की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले नौजवान मिलेंगे। नहीं तो इसी तरह आपकी सन्तान विदेशी विचारों और विदेशी सभ्यता की गुलाम बनी रहेगी।"

लम्बा कद, भव्य मूर्ति, संन्यासी के वेश में बहुत उमर हो जाने पर भी बिलकुल सीधी देह-यष्टि, चमकती आँखें; और चेहरे पर कभी-कभी दूसरों की कमज़ोरियों के कारण चमक जाने वाली चिड़चिड़ाहट या गुस्से की छाया का गुज़रना: हम इस सजीव तस्वीर को कैसे भूल सकते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द में निडरता की मात्रा आश्चर्यजनक थी। उन्होंने दिल्ली को अपनी कर्मभूमि चुनकर बे-जान शिला-खण्डों में राष्ट्रीयता के अंकुर बोने का एक अनहोना-सा स्वप्न लिया था। वह स्वप्न उस तपस्वी की साधना ने सत्य कर दिया, जनता की सोई हुई आत्मा उनके चमत्कारी जादू से जाग उठी।



अनथक उद्योग का हाथ था वहाँ उनकी लौह-लेखनी से लिखे लेखों का भी कुछ कम भाग न था।

स्वामी श्रद्धानन्द की याद आते ही १९१९ का वह दृश्य हमारी आँखों के सामने सहसा घूम जाता है, जब सरकारी सिपाही दिल्ली के घण्टाघर के सामने फायर करने की तैयारी में थे, और स्वामी जी ने छाती खोलकर उन्हें ललकाते हुए कहा था—"लो चलाओ गोलियाँ।" उनकी इस वीरता से कौन मुग्ध नहीं हो जायगा।

स्वामीजी का जन्म सन् १८५६ को तलवन (जालन्धर) में हुआ था। उनके पिता का नाम ला० नानकचन्द था। गदर के दिनों में पैदा होने के कारण उस वातावरण की छाप उनके जीवन पर भी पड़नी अनिवार्य थी। ला० नानकचन्द उन दिनों शहर-कोतवाल थे। बाद में उन्हे रिसालदार बनाकर सहारनपुर भेज दिया गया। सहारनपुर से आप मेलाघाट की लड़ाई पर नैपाल की तराई में भेजे गए। वहाँ ही आपको स्वामी श्रद्धानन्द के जन्म की सूचना भेजी गई थी। लड़ाई से लौटने पर आपको बरेली में पुलिस-इन्सपैक्टर बना दिया गया था। जन्म के बाद उनके पारिवारिक पुरोहित ने बच्चे का नाम 'बृहस्पति' निकाला, जो व्यवहार में नहीं आया। पिता ने उनका नाम मुन्शीराम रखा और संन्यास न लेने तक आप मुन्शीराम कहलाये। गुरुकुल खोलने पर गान्धी जी ने आपके नाम के साथ 'महात्मा' और जोड़ दिया था, जिसका विस्तृत वर्णन आगे की पंक्तियों में किया गया है।

बरेली में स्थायी नियुक्ति हो जाने पर उनके पिता जी ने परिवार को तलवन से बरेली में ही बुला लिया। स्वामीजी की प्रारम्भिक शिक्षा फारसी से प्रारम्भ हुई, क्योंकि उन दिनों पुलिस-विभाग में फारसी

ालक मुन्शीराम की शिक्षा के लिए एक हिन्दी-अध्यापक लग
ा; परन्तु बाद में इसे सन्तोष-जनक न समझकर उन्हें स्कूल
ख़ल करा दिया। बाद में म्योर सेण्ट्रल कालिज प्रयाग में आपक
ा हुई; किन्तु अधिक काल तक आपका अध्ययन चल न सक
उनका विवाह हो गया।

संवत् १६३७ में मुन्शीराम जी लाहौर पहुँचे और वहाँ 'कानून
ी में भरती हो गए। लाहौर में उनका सम्पर्क सभा-संस्थाओं
ा आरम्भ हुआ। शिक्षा के बाद उन्होंने जालन्धर में जाकर वकाल
: कर दी। लाहौर में ही उन्हें आर्यसमाज में आने-जाने का चस्क
ा था, उन्होंने वहाँ पर समाज के प्रायः सभी ग्रन्थ भी देख डा
परिणाम स्वरूप आर्यसमाज पर आपकी श्रद्धा दिनानुदिन बढ़
ी गई। पंजाब में मांसाहार का अधिक रिवाज है। ऋषि दयानन्
ा मांसाहार का प्रबल विरोध किये जाने पर भी बहुत-से आर
ाज के सभासद् अपनी निर्बलता के कारण मांस का त्याग न क
। जिसका परिणाम यह हुआ कि एक प्रबल विरोध उठ खड़
ा। उन्हीं दिनों महात्मा हंसराज जी ने ऋषि दयानन्द की स्मृ
डी० ए० वी० कालिज की स्थापना की। उससे वैदिक सिद्धान्तों
तथा संस्कृत के द्वारा सम्भव न हो सका। आपने मन-ही-मन वैदि
द्धान्तों की शिक्षा मातृभाषा में देने के लिए गुरुकुल की स्थाप
ने का संकल्प किया और उचित अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे
स्थ-जीवन के जंजाल से निकलने का उन्होंने दृढ संकल्प कर लिया।

गृहस्थ-धर्म जीवन का वह स्वर्ण मन्दिर है, जिसके नष्ट होने
ुष्य कभी कल्पना ही नहीं कर सकता। आश्चर्य यह है कि दूस

फल समझते हैं। मुन्शीराम जी का गृहस्थ भी इसका अपवा
ा था। अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शिवदेवी जी को अनुकूल बना
लिए उन्होंने विशेष परिश्रम किया था। उनको शिक्षित बनाव
के रहन-सहन को सुधारने और वैदिक धर्म में उनका गहरा अनुरा
करने का भी उन्होंने विशेष परिश्रम किया था। ऐसे परिश्रम
र किये गए इतने उत्तम गृहस्थ के अलौकिक आनन्द के दूट
मुन्शीराम जी को कोई कल्पना भी नहीं थी कि उनकी पत्न
सा बीमार पड़ गईं

घर में और आत्मीय जनों के हृदयों में तो पाँचवीं सन्तान पैद
की सुमधुर कल्पनाएं हिलोरें मार रही थीं। उनको क्या मालू
कि बादलों के बरसने के बाद बिजली टूटने वाली है। संवत् १९४
श्रावण के अन्त में सन्तान के पैदा होने के समय शिवदेवी को बहु
ा हुई। डाक्टरों की सहायता भी ली गई। लड़की हुई और हो
अगली कल्पनातीत और दुःखभरी घटना की ओर संकेत करके चल
। शिवदेवी जी बहुत दुर्बल हो गईं। मुन्शीरामजी को धर्मशाल
ाज के वार्षिकोत्सव में जाना था। विचार किया कि उनको भी सा
जायेंगे। १५ भाद्रपद की तिथि भी नियत हो गई। १२ भाद्रप
शाम को एकाएक दस्त और उल्टियाँ आरंभ हुईं और ला
त्न करने पर भी २१ अगस्त १८९१ को प्रातः ५ बजे शिवदेवी
सदा के लिए आँखें बन्द कर लीं।

दूसरे दिन मुन्शीरामजी शिवदेवी जी का सब सामान सम्भाल
तो उनकी बड़ी बेटी वेदकुमारी ने माता जी का लिखा हुआ ए
ाज़ लाकर दिया। उसमें लिखा था—"बाबू जी, अब मैं चली
: अपराध क्षमा करना। आपको तो मुझसे भी अधिक रूपव

शिथिलता सब दूर हो गई। बच्चों के लिए माता का स्थान भी स्वयं पूरा करने का दृढ़ संकल्प किया। ऋषि दयानन्द के उपदेश और वैदिक आदेश को पूरा करने के लिए पत्नी के इस सन्देश से उन्हें विशेष बल मिला। धीरे-धीरे वकालत से भी उनका मन हटने लगा। संवत् १९४ पंजाब-आर्य-प्रतिनिधि-सभा के प्रधान होने के बाद यह बन्धन ढीला होना शुरू हो गया और वह समय भी आया, जब कि मुन्शीराम ने उससे भी पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर ली।

ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए संवत् १९५६ में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। जिस समय अंग्रेजी शासन में पोषित पाश्चात्य भाषा और संस्कृति सरकारी शिक्षणालयों में प्रसारित हो रही थी; उन्होंने अपना सर्वस्व दान करके गुरुकुल की स्थापना की थी और देश के बच्चों को पाश्चात्य विचारों से पृथक् करके शुद्ध भारतीयता व राष्ट्रीयता के विचारों को उत्पन्न करके शिक्षा-क्षेत्र में एक नूतन पथ- निर्माण किया था। गुरुकुल कांगड़ी उनके शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों का ज्वलन्त प्रतीक है।

इसके अतिरिक्त वे सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भी पल्ले के साथ आए। देश के उद्धार और जाति के उत्थान का कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता न रहा। राजनीति, समाज-सुधार, हिन्दू-रक्षा, अनाथ-रक्षा, अकाल, बाढ़, दीन-रक्षा, अछूतोद्धार आदि सभी कार्यों में स्वामी जी सबसे आगे दिखाई देते थे। उनका समग्र जीवन एक कर्मठ योगी के समान बीता। अपने संन्यास-जीवन से पूर्व वे 'महात्मा मुन्शीराम' के रूप में जाने जाते थे। उनकी भव्य मूर्ति उनके ही योग्य थी। श्री रैम्जे मैकडोनल्ड महोदय ने एक स्थान पर

ाने के लिए बढ़ती है। आधुनिक चित्रकार ईसा मसीह
चित्र बनाने के लिए उसको अपने सामने रख सकता है औ
यकालीन चित्रकार उसे देखकर सेण्ट पीटर का चित्र बन
ता है। यद्यपि उस मछियारे की अपेक्षा यह मूर्ति कह
धिक भव्य और अधिक प्रभावोत्पादक है।"

उनके जीवन-काल में उन-जैसे मेधावी क्रान्तिकारी को बहुत कम
समझ पाये। वे वस्तुतः समय से बहुत आगे थे। जब लो
ी महान् परिवर्तन की कल्पना भी न कर पाते थे, तब वे क्रान्ति
ी कदम उठाकर लोगों को चकित कर देते थे। सामाजिक क्षेत्र
पृश्यता-निवारण के लिए उन्होंने सबसे पहला कदम उठाया
त-पात तोड़ने के औचित्य पर लोग विचार कर रहे कि 'महात्म
शीराम' ने जात-पात तोड़कर अपनी लड़की का विवाह क
या। लोग अभी उच्च शिक्षा को मातृ-भाषा में देने का स्वप्न
लेने पाये थे कि स्वामी जी ने विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि आधुनि
षयों की उच्च शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा हिन्दी को कर दिया
त्मा गान्धी के सामने अस्पृश्यता-निवारण को कांग्रेस के का
में लाने का सुझाव स्वामी श्रद्धानन्द ने ही दिया था। राजनी
धर्म और नैतिकता के समावेश को शायद अव्यावहारिक औ
ावश्यक समझा जाता था, किन्तु 'अमृतसर-कांग्रेस' में स्वागताध्य
पद से वेद मन्त्र का उच्चारण करते हुए ब्रह्मचर्य, नैतिकता, चरि
र अस्पृश्यता-निवारण आदि का उपदेश देने वाले वही प्रथम ने
। पंजाब मे हिन्दी-प्रचार के जन्मदाता भी वही थे। 'सद्धर्म प्रचार

दार अपील भी पहली ही बार की गई थी। केवल इतना ही न
ुल कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष-पद से दिया गया वह पहला हिन्द
षण था जिसमें हिन्दी को राष्ट्रभाषा का रूप देने का प्रयत्न कि
था। उनकी उस भाषण की यह पंक्तियाँ अब भी रह-रह कर हम
ों में गूँज रही है:—

"मैं आप सब बहनों व भाइयों से एक याचना करूँगा
पवित्र जातीय मन्दिर में बैठे हुए अपने हृदयों को मातृ-भूि
ेम-जल से शुद्ध करके प्रतिज्ञा करो कि—'आज से साढ़े छ
ड़ हमारे लिए अछूत नहीं रहे, बल्कि हमारे भाई-बहन हैं
...हे देवियो और सज्जन पुरुषो! मुझे आशीर्वाद दो ि
मेश्वर की कृपा से मेरा यह स्वप्न पूरा हो।"

गान्धी जी से सर्व प्रथम स्वामी जी के कार्य का परिचय कराने वा
बन्धु श्री सी. एफ. एण्ड्रूज़ थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका
ल-सत्याग्रह में व्यस्त गान्धी जी के दिव्य गुणों का वर्णन कि
। उस समय स्वामी जी भी केवल 'मुन्शीराम जी' थे और महात्
धी जी भी 'महात्मा' की उपाधि से विभूषित नहीं हुए थे। ब
दोनों का पुण्य-स्मरण 'महात्मा' नाम से होने लगा। यह नामकर
दोनों ने परस्पर ही किया। गान्धी जी ने मुन्शीराम जी
ात्मा' नाम से सम्बोधित करते हुए २१ अक्तूबर १९१४ को
लिखा था उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं:—

"प्रिय महात्मा जी,

एण्ड्रूज साहब आपकी चर्चा करते हुए आपके लिए इसी शब्द का प्रयोग करते हैं।.....उन्होंने मुझे आपकी संस्था गुरुकुल को देखने के लिए अधीर बना दिया है।

—आपका मोहनदास गान्धी।

इस पत्र के लिखने के लगभग ६ महीने बाद गान्धी जी भारत में आये तो आप गुरुकुल पधारे। वहाँ गुरुकुल की ओर से उन्हें जो मानपत्र ८ अप्रैल १६१५ को दिया गया, उसमें गान्धी जी को भी 'महात्मा' नाम से सम्बोधित किया गया था। दोनों का जीवन धार्मिकता से ओत-प्रोत था। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि स्वाधीनता के धर्म युद्ध की पुकार होते ही दोनों सेनापति एक ही रण-क्षेत्र में आकर मिल जाते। आपने १५ वर्ष तक गुरुकुल की सेवा की और सन् १६१७ में संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द कहलाये।

सारांशतः स्वामी जी का जीवन एक अद्भुत कर्मयोगी का जीवन था और अन्त में जिस समय साम्प्रदायिकता अपने 'सुरसा' रूप में देश में फैल रही थी और राष्ट्र एक संकट काल से गुजर रहा था, उस समय, जिस प्रकार वृत्रासुर पर विजय पाने के लिए इन्द्र को वज्र बनाने के लिए दधीचि की अस्थियों की, संसार को प्रेम व पवित्रता का मार्ग दिखलाने के लिए महात्मा ईसा को शूली पर चढ़ने की, बुद्धि और ज्ञान का मार्ग दिखाने के लिए यूनान के तत्त्वदर्शी सुकरात और स्वामी दयानन्द सरस्वती को विष का प्याला पीने की आवश्यकता थी, उसी प्रकार अपने देश से मतान्धता का अन्त करने

स्वामी जी अपने जीवन में महात्मा थे—और स्वर्गवास के समय पर भी उनके सिर पर बलिदान का पवित्र मुकुट रखा गया। स्वामी जी की उदारता का परिचय हमें उनके उन अन्तिम क्षणों में मिलता है, जिनमें उन्होंने अपने वधिक को ठण्डा पानी पिलाकर प्यास बुझाई और अन्त में अपना रक्त तक उसे प्रदान किया, ताकि उसकी प्यास बुझ सके।

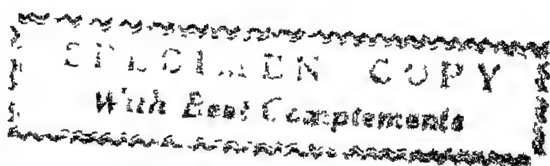
उनके बलिदान पर पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय ने निम्न उद्‌गार प्रकट किये थे :—

"स्वामी जी की हड्डियों से यमुना के तट पर एक विशाल वृक्ष उत्पन्न होगा—जिसकी जड़ें पाताल में पहुँचेंगी। शहीदों के खून से नये शहीद पैदा होते हैं।"





मोतीलाल नेहरू



: ५ :

मोतीलाल नेहरू

[जन्म सन् १८६१ : मृत्यु सन् १९३१]

"मैं रोग से लड़ूँगा, मैं मृत्यु से लड़ूँगा, मैं दासता रूपी दानव से लड़ूँगा।......भारत के भाग्य का निर्णय 'स्वराज्य-भवन' में करो। मेरी मातृ-भूमि के अन्तिम सम्मानपूर्ण समझौते में मुझे भी भाग लेने दो। यदि मुझे मरना ही है तो मैं स्वतन्त्र भारत की गोद में मरूँ। मैं अपनी नींद स्वतन्त्र देश में सोऊँ, पराधीन में नहीं।"

लम्बा और इकहरा बदन, देश-प्रेम के प्रकाश के साथ खेलती हुई सतेज आँखें, दृढ़ता-वर्द्धक ठुड्डी, कभी न झुकने वाले स्वभाव के रूपक भली-भाँति मिले हुए ओठ, इन सबको पास में रखने वाला चौड़ा ललाट : और इन सबके ऊपर राजनीतिक प्रतिभा, क्षमता, त्याग एवं कुशलता का भण्डार तथा बहुरंगे अनुभवों का अस्त्रागार सारे शरीर पर शासन करने वाला उनका अद्भुत मस्तक। राष्ट्र की पुण्य वेदी पर अपने जीवन का सब-कुछ उत्सर्ग कर देने वाले इलाहाबाद के नवाब पण्डित जी—भारत जननी के अनमोल मोती थे। एक व्यक्ति जिसके विलास और वैभव की कहानियाँ कही जाती हों, जिसके देखने से ऐसा मालूम होता हो, मानो ...

ों की घनिष्ठता में आराम-आलाइश की जिन्दगी बसर करने वाल
वही, हाँ वही, यदि सहसा इन सब वैभवों को ठुकराकर देश
ए फकीर बन गया, तो फिर उस असाधारण पुरुष के सम्बन्ध
ा लिखा जाय ? उसके जीवन में कोई अतीत नहीं है—सब वर्तमा
ज है, आज-ही-आज है।

उनकी राजनीति उनके अद्भुत व्यक्तित्व में थी। जिस वातावर
उनका लालन-पालन हुआ था, वह राजसी था। इसलिए हुकूम
र अधिकार उनके लिए स्वाभाविक हो गए थे। उनको देख ले
ऐसा जान पड़ता था, मानो एक असाधारण पुरुष को देखा है
में राजपूती शान थी। निर्भीकता उनकी दैवी देन थी। उनक
स्विता उनका एक अंग बन गई थी, वे झुकना नहीं जानते थे
का नेतृत्व प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव डालने वाला था। वे ए
सद्ध वकील और वक्ता थे और प्रथम कोटि के नेता थे। इसलि
स्वाभाविक था कि वह जहाँ जाते थे, सबसे आगे की श्रेणी
ा थे। उनकी तीव्र प्रतिभा, सम्भाषण-पटुता और युद्ध-कला
ुणता ऐसी थी कि ब्रिटिश सरकार उन्हें अपना एक खतरना
ोधी समझती थी।

राजसी ठाठ, भोग-विलास और ऐश्वर्य को ठोकर मारकर मा
ा के लिए फकीर बन जाने वाले पं० मोतीलाल नेहरू का जन्म स
६१ में दिल्ली में हुआ था। इनके पिता गंगाधर नेहरू दिल्ल
शहर-कोतवाल थे। माता की गर्भावस्था में ही पिता की मृत्यु ह
थी। आपका पालन-पोषण बड़े भाई नन्दलाल जी की छत्रछाया
हुआ। कौन जानता था कि इस पितृ-हीन मोती का जवाहर ए

सआदतखाँ के किनारे रहते थे, इसलिए नेहरू कहलाए; और अ
नेहरू वंश तमाम दुनिया में प्रसिद्ध है।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा दिल्ली में एक इस्लामी मकतब
हुई। सन् १८७६ में कानपुर के एक सरकारी स्कूल से एण्ट्रेंस पा
करके इलाहाबाद के म्योर कालिज में दाखिल हो गए। आप ब
प्रतिभाशाली और प्रखर बुद्धि के थे। सन् १८८२ में आपने वकाल
की परीक्षा पास की और २२ साल की अवस्था में पहले कानपुर
और फिर इलाहाबाद में वकालत शुरू की। कुछ ही दिनों में आपक
वकालत ऐसी चमकी कि हिन्दुस्तान के प्रथम श्रेणी के वकीलों में आपक
गणना होने लगी: और पं० सुन्दरलाल की मृत्यु के पश्चात् इलाह
बाद में आपकी टक्कर का कोई वकील न रह गया। वकालत
आपने खूब पैसा कमाया और जिस ठाठ से कमाया, उसी ठाठ से उ
उड़ाया भी। उन्हीं दिनों आपने वह बंगला खरीदा था, जिसका पहल
नाम 'आनन्द-भवन' और अब 'स्वराज्य-भवन' है। जज तक अप
फैसलों में आपकी योग्यता और अकाट्य दलीलों की प्रशंसा किय
करते थे। १८९६ में आप इलाहाबाद में एडवोकेट नियुक्त किये गए
और वकील-एसोसियेशन के सभापति बनाये गए।

सन् १८८८ में इलाहाबाद में आप कांग्रेस के चौथे अधिवेशन
सर्वप्रथम सम्मिलित हुए थे। १८९२ में फिर इलाहाबाद में कांग्रेस
। जो अधिवेशन हुआ उसके आप स्वागताध्यक्ष चुने गए थे। १९०६
कांग्रेस में नरम और गरम नाम से दो दल बन चुके थे। आपने
नरम दल का साथ दिया और अपने प्रयत्न से कांग्रेस को नरम दल
हाथों में ही रखा। १९०७ और १९१३ में आप प्रान्तीय ...

समाज-सुधार-सम्मेलन का सभापतित्व भी आपने किया था। १९०९
आपने 'लीडर' नाम से एक प्रसिद्ध पत्र निकाला।

आपका स्वाभिमान भी उच्च कोटि का था। १९१७ में रुड़की कालिज के एक गोरे प्रिंसिपल ने भारतीय विद्यार्थियों का अपमान किया, आपने उसके प्रतिवाद-स्वरूप कौंसिल में प्रिंसिपल की निन्दा का प्रस्ताव पेश किया। सरकार ने आपको विवाद का प्रत्युत्तर देने का मौका नहीं दिया। इस पर आप कौंसिल से उठकर चले आये। कई दिनों तक आप कौंसिल में नहीं गये: बाद में जब गवर्नर और सर सुन्दरलाल ने बहुत आग्रह किया, तब जाना स्वीकार किया।

१९१८ में आपने माण्टफोर्ड-सुधारों का घोर विरोध किया था। होमरूल-आन्दोलन के आप पूरे समर्थक थे, तभी 'पायोनियर' ने आपको 'होमरूल का ब्रिग्रेडियर' लिखा था। १९१८ में आपने "इण्डिपेण्डेण्ट' नाम से एक बहुत निर्भीक और शानदार दैनिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया। अपनी निर्भीकता और स्पष्टवादिता के कारण 'इण्डिपेण्डेण्ट' की चारों ओर धूम मच गई। सरकार इसे कब सहन करने वाली थी, अतः प्रेस जब्त कर लिया गया। किन्तु फिर भी अखबार हाथ से लिखकर निकाला जाने लगा था।

सन् १९१९ में देश में जो उत्तेजनात्मक घटनाएं हुईं उन्होंने आपकी मनोवृत्ति को भी बदल डाला। महायुद्ध की सेवाओं के बदले में दिया गया सरकार का पुरस्कार रौलट-एक्ट; उसके विरोध में की गई सत्याग्रह की घोषणा और पंजाब में जारी किये गए फौजी शासन के अत्याचार ने आपका हृदय भी उद्वेलित कर दिया और

पके हाथों में ही रही। आपकी अध्यक्षता में कांग्रेस की ओर
ाब-हत्याकांड के लिए एक जाँच-कमेटी नियुक्त की गई थी। आप
ाब के पीड़ितों की सच्ची लगन से सेवा की, जिसका आभार मान
उस वर्ष अमृतसर-कांग्रेस का सभापति आपको ही चुना गया
अधिवेशन केवल इस दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण न था कि इसी व
ृतसर में जलियाँ वाला बाग का हत्याकांड हुआ था और पंजाब क
मे मार्शल-ला के अत्याचारों से पीड़ित हो चुकी थी, बल्कि इस
धिवेशन ने महात्मा गान्धी को भारतीय राजनीति का पथ-प्रदर्श
ा दिया था। १९१८ मे भी पंडित जी को यह सम्मान सौंपा गय
, किन्तु अस्वस्थ होने के कारण आपने उसे स्वीकार नहीं किया था
पि राजनीतिक दृष्टि से आपके स्वभाव में उग्रता और गर्मी आ ग
, तथापि आपने शुरू-शुरू में असहयोग का विरोध किया। कलकत्त
कांग्रेस के विशेषाधिवेशन में जो असहयोग का प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ
पने उसका विरोध किया था। नागपुर-कांग्रेस में भी आप उसक
ोधी बनकर गए थे, किन्तु समर्थक बनकर लौटे और उसके बा
में असहयोग का जो प्रचण्ड आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उसमें आप
महान् शक्ति के रूप में प्रकट हुए। आपका जीवन ही बदल गय
र बदला भी सिनेमा के चित्रपट की भाँति एकदम। हजारों क
सिक आय तथा फलती-फूलती वकालत को आपने राष्ट्र का आद
रोधार्थ कर तुरन्त त्याग दिया। यह कोई मामूली बात नहीं थी
कमरे जो विदेशी सिल्क और मखमल से सजे रहते थे, अब खद्दर
ी बन गए। स्वयं गान्धी जी ने एक बार गर्व से कहा था कि पंडि
डत मोतीलाल नेहरू को खादी पहनाकर मैंने एक बहुत बड़ा काम

और स्वयं-सेवकों के दल गैर-कानूनी घोषित कर दिये गए, इस प पंडित जी ने अपने परिवार के सब लोगों के साथ अपना नाम स्वयं सेवकों में लिखवा लिया। जिसके परिणाम स्वरूप आप ६ दिसम्बर को गिरफ्तार कर लिये गए। १९२२ में आप जेल से बीमार होकर निकले। इस अवस्था में भी आपसे चुप नहीं बैठा गया और कांग्रेस के प्रधान मंत्री का कार्य-भार तुरन्त सँभाल लिया।

१९२२ में गोरखपुर में चौरी-चौरा की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना घटित हो गई। सर्वत्र हिंसा के चिह्न दिखाई देने लगे। थानों में आग लगाई गई और इधर-उधर मार-पीट की नौबत भी आई। इससे गान्धी जी को घोर निराशा हुई और उन्होंने असहयोग-आन्दोलन शुरू कर दिया। उधर सरकार ने गान्धी जी को राजद्रोहात्मक लेख लिखने का अपराधी ठहराकर ६ साल के लिए जेल भेज दिया। आन्दोलन में शिथिलता पैदा हो गई। ७ जून १९२२ को लखनऊ में कार्य-समिति की बैठकें हुईं, जिनमें निश्चय किया गया कि एक सत्याग्रह-जाँच-कमेटी बनाई जाय, जो यह जाँच करे कि देश सत्याग्रह के लिए कहाँ तक तैयार है। अतः पण्डित जी की अध्यक्षता में सत्याग्रह-जाँच-कमेटी बनाई गई। उसने जाँच की; परन्तु सदस्यों के निर्णय सर्व-सम्मत नहीं हुए और कांग्रेस में दो पार्टी बन गईं। आधे सदस्यों ने यह निर्णय किया कि देश सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है। इस पार्टी के मुख नेता पंडित जी, श्री विट्ठलभाई पटेल तथा देशबन्धु दास थे। स पार्टी ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव भी पेश किया कि सरकार ी दमन-नीति का मुकाबला करने और उसके काम में अड़ंगा डालने लिए कौंसिलों में कांग्रेस के सदस्य अधिक-से-अधिक संख्या में े जायं। दूसरी पार्टी ने, जिसके प्रमुख नेता श्री

० गान्धे

आदि थे, इसका विरोध किया। जिसके परिणाम-स्वरूप दोनों पार्टियों में संघर्ष चलने लगा।

सन् १९२२ में गया में देशबन्धु दास के सभापतित्व में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें उक्त रिपोर्ट स्वीकृत हुई। फिर आपने देशबन्धु दास के साथ मिलकर कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज्य-पार्टी बनाई। चौधरी खलीकुज्जमा पंडित जी के असिस्टेंट थे। दूसरी पार्टी ने स्वराज्य-पार्टी का विरोध किया और कुछ दिनों तक यह खींचा-तानी चलती रही। अन्त में सन् १९२३ में दिल्ली में मौलाना आजाद के सभापतित्व में कांग्रेस का एक विशेषाधिवेशन हुआ, जिसमें दोनों पार्टियों में समझौता हो गया और स्वराज्य-पार्टी के निर्णय का समर्थन किया गया और पंडित जी असेम्बली के लिए निर्विरोध चुन लिये गए। आपने स्वराज्य-पार्टी के अन्य उम्मीदवारों के लिए भी विशेष आन्दोलन किया। आपकी प्रतिभा, योग्यता, दृढ़ता तथा अनुशासन-शक्ति के कारण स्वराज्य-पार्टी ने असेम्बली में अपने संगठन और कार्य-क्षमता का अद्भुत परिचय दिया। स्वराज्य-पार्टी की ओर से राज-बन्दियों को रिहा कर देने और राउण्ड-टेबुल-कान्फ्रेंस करके शासन-व्यवस्था में सुधार करने आदि के प्रस्ताव पेश किये गए; जो पास हुए। इन प्रस्तावों के विरोध में सरकारी पक्ष को बड़ी करारी हार खानी पड़ी थी। इस प्रकार कौंसिलों में स्वराज्य-पार्टी की बड़ी धाक जम गई थी।

आप साम्प्रदायिकता के रंग से कोसों दूर थे। उस समय देश में हिन्दू-मुस्लिम-उपद्रव बड़े जोरों से हुए; किन्तु आप उस भयंकर तूफान में राष्ट्रीयता की चट्टान की भाँति दृढ़ रहे और अपने आचार-विचार का उच्चार में [illegible]

हुआ। इससे प्रकट होता है कि उस समय में भी हिन्दू और मुसलमानों का आप पर एक-सा विश्वास था।

सन् १९२६ में पं० मदनमोहन मालवीय तथा ला० लाजपतराय ने स्वराज्य-पार्टी से रूठकर नेशनलिस्ट-पार्टी के नाम से अपनी अलग पार्टी बनाई और असेम्बली के चुनाव में स्वराज्य-पार्टी के विरोध में अपने उम्मीदवार खड़े किये थे। उन्होंने हिन्दू-महासभा को भी अपने पक्ष में ले लिया था। हिन्दू-महासभा वालों ने पंडित जी पर बहुत कीचड़ उछाली, किन्तु आप तनिक भी विचलित नहीं हुए और अपने उद्देश्य पर अटल रहे। इस चुनाव में दोनों पार्टियों में डटकर मुकाबला हुआ और स्वराज्य-पार्टी को केन्द्र में अच्छी सफलता मिली, किन्तु प्रान्तों में केवल सी० पी० को छोड़कर सब जगह पराजय हुई। फिर भी असेम्बली में आपकी पार्टी की खूब धाक थी।

सन् १९२७ में आप एक मुकदमे की पैरवी करने विलायत गये। उन्हीं दिनों साइमन-कमीशन भारत आने वाला था। साइमन-कमीशन के अध्यक्ष साइमन साहब से मिलने के लिए आपको निमंत्रित किया गया, किन्तु आपने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया, क्योंकि भारत में साइमन-कमीशन का विरोध किया गया था। सोवियत् सरकार के निमंत्रण पर आप उसके दसवें वार्षिकोत्सव में शामिल होने के लिए रूस गये थे।

सन् १९२७ में मद्रास-कांग्रेस में भारत के लिए एक आदर्श-विधान बनाने के लिए आपके नेतृत्व में एक कमेटी बनाई गई। तभी दिल्ली में सर्व-दल सम्मेलन के अधिवेशन हुए। साम्प्रदायिक संस्थाओं ने शासन-विधान के कार्य में खूब अड़ंगा लगाया, किन्तु फिर भी आपने

धीनता के विरुद्ध 'नेहरू-कमेटी' ने औपनिवेशिक स्वराज्य के आध
शासन-योजना तैयार की थी। कलकत्ता में जब आपके सभापति
कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ, तब इस आधार पर कि 'नेहरू
ोर्ट' मद्रास-अधिवेशन में स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के सिद्धान्त
कूल तैयार की गई है, उसका विरोध किया गया। अपने पूज
ा की अध्यक्षता में तैयार की गई इस आयोजना के विरोधी नेह
ाहरलाल ही थे। बाप-बेटे की यह सैद्धान्तिक लड़ाई, देखने
य थी। बहुमत पं० मोतीलाल के पक्ष में था, इसलिए कांग्रे
ा यह योजना स्वीकृत हो गई। कांग्रेस ने उस रिपोर्ट को राष्ट्री
व के रूप में सरकार के सामने पेश किया और सरकार को उस प
ार करने के लिए एक वर्ष की मोहलत दी। १९२९ में उसक
र समस्त देश में खूब जोरों का आन्दोलन हुआ और साइमन
ीशन का पूरा बहिष्कार किया गया। लाहौर-कांग्रेस से पहले सरक
आपको तथा गान्धी जी को वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण दिय
न्तु इस मुलाकात का कुछ परिणाम न निकला। लाहौर-कांग्रेस
वर्ष की अवधि पूरी होने पर ३१ दिसम्बर की आधी रात क
ना ध्येय पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दिया। पूर्ण स्वाधीनता
घोषणा जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में की गई थी। पू
ाधीनता की घोषणा होने पर कौंसिलों में कांग्रेसियों का रह
म्भव था, अतः कौंसिलें खाली कर दी गईं और स्वराज्य-पा
भंग हो गई। २६ जनवरी १९३० को सारे देश ने स्वाधीनत
वस मनाकर सत्याग्रह का श्री गणेश किया। गान्धी जी ने दांड
त्रा को पूर्ण करके नमक-कानून भंग किया ही था कि १४ अप्रैल

ने एक महान् सेनापति के समान इस भार को सहर्ष अपने ऊपर लिया और सत्याग्रह का संचालन किया। आपने अपने हाथों से नमक बनाया और बार-बार बनाया। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और देशी मिलों को भी पूरी तरह स्वदेशी बनाने का आपने सफल आन्दोलन किया। सरकार का दमन-चक्र भी जोरों पर था। पुलिस वाले सत्याग्रहियों पर भीषण अत्याचार करते थे। कार्य-समिति ने आपकी अध्यक्षता में पुलिस और फौज वालों का स्वदेश के प्रति कर्तव्य-पालन करने के लिए आह्वान किया, जिस पर आपको गिरफ्तार करके ६ मास की सजा दे दी गई। जयकर-सप्रू ने सन्धि की चर्चा शुरू की। आपको और जवाहरलाल को विशेष रूप से नैनी जेल से यरवदा जेल ले जाया गया; किन्तु सन्धि न हुई।

जेल की कठिनाइयों को आपका वृद्ध शरीर सहन नहीं कर सका और आप बीमार हो गए। दमा और ज्वर जोर पकड़ गया, थूक में खून आने लगा, इस पर आपको रिहा कर दिया गया। औषधोपचार के लिए कलकत्ता गये, फिर विश्राम के लिए मसूरी गये, किन्तु आपके हृदय को कहीं शान्ति नहीं मिली। ऐसी अवस्था में भी आप चुप नहीं बैठे रह सके। पहले विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार में लगे रहे, फिर बंगाल के कांग्रेसियों में सुलह कराने का प्रयत्न किया और बाद को आन्दोलन को जीवित रखने की चिन्ता करते रहे। आपका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता ही गया। आपकी बीमारी के कारण जवाहरलाल को भी छोड़ दिया गया और गान्धी-इर्विन समझौते के लिए अन्य नेता भी छोड़ दिये गए। गान्धी जी सीधे आपके पास गए। ४ फरवरी को एक्सरे-परीक्षा के लिए आपको मोटर द्वारा लखनऊ लाया गया।

लाया गया। त्रिवेणी पर शाम को ६॥ बजे दाह-संस्कार हुआ। महात्मा गान्धी ने चिता की ओर संकेत करके कहा था—"यह चिता नहीं, राष्ट्र-यज्ञ का हवन-कुण्ड है।" वास्तव में भारत का स्वतन्त्रता-आन्दोलन एक बृहद् यज्ञ ही था और उसमें एक महापुरुष का आत्मोत्सर्ग एक महान् अनुष्ठान था।

महापुरुषों का व्यक्तित्व जीवन की अपेक्षा मृत्यु के बाद अधिक चमकता है। पंडित जी के देहावसान के बाद भारत में ही नहीं, विश्व के कोने-कोने में शोक मनाया गया। ऐसा विश्व-व्यापी शोक उससे पहले किसी भारतीय के लिए नहीं मनाया गया था।



: ६ :

मदनमोहन मालवीय

[जन्म सन् १८६१ : मृत्यु सन् १९४६]

"हमारे देश का सुखद भविष्य हमारी एकता में निहित है। हमें अपने मतभेदों को दूर कर देना चाहिए और सभी उत्साही देश-भक्तों को, देश के सच्चे प्रेमियों को, देश-भर में सर्व सम्मति से स्वीकृत उपायों द्वारा अपने सम्मिलित ध्येय की प्राप्ति के लिए किये गए सम्मिलित प्रयत्न मे एक होकर लग जाना चाहिए।"

ऊपर से नीचे तक स्वच्छ धवल वस्त्रों से सज्जित, सिर पर वही पेटेण्ट साफा, ब्राह्मण का विनम्र परन्तु प्राचीनता से दबा हुआ रूढ़ि-ेमी मुख, ललाट पर सुन्दर चन्दन की बिन्दी, इकहरा बदन, जैसे ाचीन युग का कोई सात्विक ब्राह्मण युग-युग से संचित हिन्दू संस्कृति गुण-दोष दोनों का भार सँभाले ऊँचा उठा हुआ मस्तक, सौम्यता ं शालीनता की साक्षात् मूर्ति—महामना पं० मदनमोहन मालवीय ! ीसवीं सदी के शंकर ! प्राचीन हिन्दू संस्कृति और सभ्यता के पुजारी, तीत के प्रेमी, प्राचीन युग की एक स्मृति की भाँति, इस टूटते-गिरते र फिर बनते हुए जन-रव और



मदनमोहन मालवीय

दिव्य चरित्र, जो दिव्य वाणी और ज्ञान एवं पाण्डित्य का जो वैभव दिया था, उसमें जो लगन और त्याग का भाव था, वह संसार के बहुत कम लोगों में पाया जाता है। तपस् की दीर्घ साधना, अभिप्राय की उच्चता और पांडित्य की विविधता ने आपको मानवता के स्तर से कहीं ऊँचा उठाकर देवत्व के आसन पर बिठा दिया था।

मालवीय जी का जीवन अनुकूल तथा प्रतिकूल दिशाओं में बहने वाली विरोधी धाराओं का सम्मिश्रण था। आपका दिल गरम और दिमाग ठण्डा था। जब दिल बोलता, तो आप आग बरसाने लगते, और जब दिमाग बोलता तो आप आगे बढ़ते हुए राष्ट्र या समाज के 'ब्रेक' बन जाते। जब आपका दिल दिमाग को जीत लेता तब आप स्वयं रोते, औरों को रुलाते और अपने सर्वस्व की बाजी लगाकर सैंकड़ों-हज़ारों के सिर हथेली पर रखवाकर आत्मोत्सर्ग का होम रचा डालते थे, और जब दिमाग दिल को हरा देता, तब आप किन्तु-परन्तु के चक्कर में पड़कर प्रगति की ओर बढ़ते हुए राष्ट्र को भी पीछे घसीटने में लग जाते। फिर भी आपकी महानता निर्विवाद, लोक-सेवा उत्कृष्ट, देशभक्ति असंदिग्ध, व्यक्तित्व वन्दनीय, जीवन अनुकरणीय और चरित्र निष्कलंक था।

मालवीय जी का जन्म २५ दिसम्बर १८६१ को इलाहाबाद में हुआ था। आपके पूर्वज मालवा से आकर इलाहाबाद में रहने लगे थे। वे संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। आपके पिता पं० ब्रजनाथजी ने संस्कृत में कई ग्रन्थों की रचना की थी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सर्वज्ञानोपदेश संस्कृत पाठशाला में तथा धर्मवर्द्धिनी सभा की पाठशाला में हुई थी। गवर्नमेंट हाईस्कूल में पढ़कर आपने १८७९ में कलकत्ता

और गवर्नमेंट स्कूल में ५०) रु० मासिक पर नौकरी कर ली। बाद में ७५) रु० मिलने लगे।

आरम्भ से ही आप में स्वदेश एवं समाज की सेवा करने का भाव विद्यमान था। कालिज-जीवन में ही आपने कुछ मित्रों की सहायता से इलाहाबाद में 'लिटरेरी-इन्स्टिट्यूट' (साहित्यिक-सभा) और 'हिन्दू-समाज' की स्थापना की थी।

१८८६ में कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में कलकत्ते में हुआ। आप अपने गुरु श्री आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ उसमें सम्मिलित हुए। वहाँ आपका परिचय कालाकाँकर (अवध) के राजा रामपालसिंह से हुआ। राजा साहब ने उन्हीं दिनों अपने यहाँ से हिन्दी का दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' निकालना आरम्भ किया था। आपकी योग्यता एवं सत्यप्रियता पर मुग्ध होकर राजा साहब ने आपको 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक बना दिया। और २५०) मासिक मिलने लगे। गरीब हिन्दी के गरीब सम्पादकों को इससे अधिक मिलता ही कब है। आपकी वक्तृत्व-शक्ति और प्रतिभा को देखकर आपके मित्रों एवं गुरुजनों ने आपको वकालत पढ़ने के लिए प्रेरित किया। सम्पादकी करते हुए आपने १८९१ में वकालत पास करके १८९३ में वकालत शुरू कर दी। अच्छे-अच्छे मुकद्मों को हाथ में लेकर अच्छी आमदनी कर लेने पर भी आपने अपने को वकालत के साथ तन्मय नहीं किया। आपका हृदय तो देश की दुर्दशा पर तड़प रहा था। वकालत को तो आपने सार्वजनिक जीवन और देश-सेवा को निबाहने के लिए केवल साधन रूप में अपनाया था।

कांग्रेस में आप प्रथम बार १८८६ के कलकत्ता अधिवेशन में

था:—"जिस भाषण के लिए कांग्रेस में कई बार तालियाँ बजीं, और जिसको जनता ने बहुत उत्साह के साथ सुना वह पंडित मदनमोहन मालवीय का भाषण था। पंडित जी की गौरवपूर्ण मूर्ति और हृदयग्राही भाषण ने वहाँ बैठे हुए सभी के चित्त को अपनी ओर आकर्षित किया।" इसके बाद आप कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में सम्मिलित होते रहे। आपके ओजस्वी भाषण कांग्रेस-मंच की जान थे। १९०७ में सूरत-कांग्रेस में नरम और गरम दल का जब झगड़ा हुआ, तो यह समझा जाता था कि आप गरम दल का साथ देंगे। पर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि आप नरम दल की ओर रहे। सूरत के बाद मद्रास में कन्वेन्शन-कांग्रेस होने के बाद १९०९ में लाहौर में जो नरमदली कांग्रेस हुई, उसके आप सभापति हुए। उस समय आपने अध्यक्ष पद से बड़ा ही प्रभावशाली भाषण दिया था। आप बराबर तीन घण्टे तक मौखिक व्याख्यान देते रहे। उस भाषण में मिण्टो-मार्ले-सुधारों की आलोचना की गई थी। १९०८ में लखनऊ में होने वाली प्रान्तीय-कांफ्रेंस भी आपके सभापतित्व में हुई थी। कांग्रेस के साथ आपका सम्बन्ध तब से बराबर चला आ रहा है और सेवक, नेता, कर्ता-धर्ता, सहयोगी, असहयोगी, सत्याग्रही आदि सभी रूपों में आपने पूरे उत्साह से उसकी सेवा की। मतभेद हो जाने पर भी आपने कांग्रेस का साथ नहीं छोड़ा और उसकी ममता को बनाये रखा। १९१८ में दिल्ली में हृदय-सम्राट् लोकमान्य की अनुपस्थिति में आपको ही सभापति बनाया गया था। १९३२ तथा ३३ में दिल्ली तथा कलकत्ता के सरकार द्वारा निषिद्ध अधिवेशनों का सभापतित्व करने के लिए आप की

बहुत दिनों तक आप इलाहाबाद नगर बोर्ड के वाइस चेयरमैन भी रहे थे। आपने इलाहाबाद की काया-पलट कर दी थी। इन्हीं दिनों इलाहाबाद में जब पहली बार प्लेग फैला, तब आपने जनता की जो सेवा की वह देखने ही योग्य थी। १६०२ में आपको सरकार ने प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभा का सदस्य चुना। १६१० में आप इम्पीरियल कौंसिल के सदस्य चुने गए। तब से १६२६ तक आप बराबर इसके सभासद् रहे। धारा-सभाओं में आपका जीवन और कार्य कांग्रेस-सेवा की भाँति महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली रहा है। आपने समय-समय पर दृढ़ता के साथ जनता के पक्ष का समर्थन किया। सरकार का विरोध या आलोचना करने में आप कभी नहीं चूकते थे। रौलट-एक्ट का विरोध और पंजाब के फौजी शासन पर रोष प्रकट करते हुए आपने जो भाषण दिये थे, वे इतिहास में सदा ही स्मरण रहेंगे। १६२२ में रौलट-एक्ट के विरोध में अन्य सदस्यों के साथ आपने भी इम्पीरियल कौंसिल से इस्तीफा दे दिया था। इसके बाद फौजी-शासन की मार से घायल पंजाब की भी आपने बड़ी सेवा की थी।

१६२० में कांग्रेस के साथ आपका घोर मतभेद हो गया। १६१६ में अमृतसर के कांग्रेस के अधिवेशन में आप मान्टफोर्ड-सुधारों को स्वीकार करके सरकार को सहयोग देने के पक्ष में थे, जब कि कांग्रेस ने इसका विरोध किया था। इस समय देश में एक नवीन वातावरण की लहर दौड़ रही थी। गान्धी जी ने सरकार के साथ असहयोग करने की ठानकर समस्त देशवासियों में स्वावलम्बन की भावना फूँकनी शुरू कर दी थी। कांग्रेस के अधिकांश नेता भी उनके साथ थे, किन्तु उस समय भी आपका सरकार पर पूरा विश्वास और भरोसा बना रहा था।

ोतीलाल जी, देशबन्धु व मौलाना आज़ाद-जैसे नेता जेलों में बन्द
दी गए, किन्तु मालवीय जी ने युवराज को हिन्दू विश्वविद्यालय में
बुलाकर उनका सत्कार किया। यह था आपके दिल और दिमाग का
संघर्ष। दिल उस समय दिमाग के आधीन था। समस्त देश एक
ओर था और आप दूसरी ओर। माण्टफोर्ड सुधारों के अनुसार बनी
हुई कौंसिलों का बहिष्कार किये जाने पर भी आप उसमें गये थे।
१९२१ से १९३० तक आप बराबर अपने ढंग से असेम्बली में बने रहे।
इसमें सन्देह नहीं कि आपने वहाँ सदैव निर्भीक, साहसी और राष्ट्रीय
वृत्ति का परिचय दिया। १९२६ में चुनाव के समय लाला लाजपत-
राय के साथ और १९३४ में श्री अणे के साथ मिलकर आपने नेशन-
लिस्ट पार्टी बनाई और कांग्रेस के विरुद्ध चुनाव लड़ा था। १९३६
में हुए प्रान्तीय चुनाव के अवसर पर भी आप नेशनलिस्ट पार्टी के
साथ रहे। युक्तप्रान्त में कांग्रेस के साथ समझौता कर लेने पर भी
पंजाब में आपने पार्टी के उम्मीदवार का समर्थन किया था।

मालवीय जी के दिल और दिमाग का संघर्ष वास्तव में एक
मनोरंजक पहेली है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि युवराज
का स्वागत करने वाले मालवीय जी १९२८ में साइमन-कमीशन के
बहिष्कार में सबसे आगे रहे थे? और फिर वही मालवीय जी कांग्रेस
द्वारा पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने के पश्चात्
देश में सत्याग्रह-आन्दोलन की जबर्दस्त लहर पैदा होने पर भी
उससे अलग रहे और कुछ समय तक केन्द्रीय असेम्बली में ही
डटे रहे। बात यह है कि जो आपको उचित जान पड़ता था, उसे
करने में आप कभी नहीं हिचकिचाते थे। चाहे सारा देश ही विरोधी
क्यों न हो, किन्तु आप अपने निश्चय पर अकेले ही दृढ़ता के साथ
डटे रहते थे। १९२९ में [illegible]

र दीखने लगा। जहाँ-तहाँ हिन्दू-मुस्लिम-दंगे होने लगे। मालवीय
में हिन्दू आस्तिकता कूट-कूट कर भरी हुई थी । आपमें जन्म
दण के साथ हिन्दुत्व के प्रबल संस्कारों का जो रंग चढ़ा हु
, वह उग्र राष्ट्रीयता छा जाने पर भी कभी धीमा या फीका न
। आपके उसी स्वरूप ने आपको हिन्दू-महासभा की ओर खीं
या। आपका एक पैर कांग्रेस में रहा, तो दूसरा हिन्दू-महासभा मे
२२ में आप पूरी तरह हिन्दू-महासभा के साथ तन्मय हो गए
वर्षों तक आप उसके सर्वेसर्वा रहे। १९२६ में आपने औ
ला लाजपतराय ने नेशनलिस्ट पार्टी की ओर से जो चुनाव ल
में हिन्दू-महासभा को ही अपना साधन बनाया और हिन्दू-महास
नाम पर हिन्दुओं के मत प्राप्त किये। इसका यह परिणाम हुआ
दू-महासभा समाज-सुधारक संस्था न बनकर एक साम्प्रदायि
था बन गई। जिसका एक-मात्र लक्ष्य हिन्दुओं के नाम से चुना
लड़ाई लड़ना ही रह गया। १९३४ में आप हिन्दू-महासभा
-अधिवेशन के सभापति बने थे ।

मालवीयजी की देश को सबसे बड़ी देन काशी का 'हिन्दू-विश्व
ालय' है। १९०४ में ही आपने उसके लिए आन्दोलन शुरू क
ा था। १९११ में आपने उसके खोलने का दृढ़ निश्चय क
या। उसके लिए एक योजना बनाकर गले में भिक्षा की झोल
ल, आप घर से निकल पड़े। साधारण लोगों से लेकर बड़े-ब
ा-महाराजाओं तक का सहयोग आपको मिला और पाँच
ों में आपने एक करोड़ रुपया जमा कर लिया। ४ फरवरी १९१
शुभ मुहूर्त में शास्त्रोक्त नीति से हिन्दू-विश्वविद्यालय क
पना हुई। तात्कालिक वायसराय लार्ड हार्डिंग ने उसकी नीं

भी न किया होता, तो भी अकेला हिन्दू-विश्वविद्यालय ही आपके नाम को अजर-अमर बनाने को काफी था।

हिन्दू-समाज के साथ-साथ आपने हिन्दी-भाषा की भी उल्लेखनीय सेवाएं की हैं। अपने विद्यार्थी-जीवन में ही आपने इलाहाबाद में 'प्रयाग-साहित्य-सभा' की स्थापना की थी, जिसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। १९०२ में आपने 'अभ्युदय' और १९१० में 'मर्यादा' मासिक पत्रिका निकालनी शुरू कर दी थी। अदालतों में पहले सब काम उर्दू में ही होता था। १९०० में आपने अदालतों में उर्दू के साथ हिन्दी को भी स्थान दिलवाया। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भी आप जन्मदात्ताओं में से एक थे और उसके दो बार सभापति बन चुके थे। पंडित अयोध्यानाथजी द्वारा संचालित 'इंडियन यूनियन' पत्र के आप कई वर्ष तक सम्पादक रहे। इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध पत्र 'लीडर' के संस्थापक होने का गौरव भी आपको प्राप्त है।

अछूतों के लिए भी आपने बहुत कार्य किया। उनको मन्त्र-दीक्षा देने, मन्दिरों में देव-दर्शन का अवसर देने, और स्कूलों, कुओं, तालाबों, उत्सवों, सभाओं आदि में स्पर्शास्पर्श न मानने का आपने घोर आन्दोलन किया था। १९२९ मे श्री जमनालाल बजाज के उद्योग से इस कार्य के लिए जो कमेटी बनाई गई थी उसके आप सभापति थे। जब हिन्दू-समाज से हरिजनों को अलग करने की सलाह की कूटनीति के विरोध में सितम्बर १९३२ में गांधीजी ने यरवदा जेल में आमरण अनशन करने का निश्चय किया था, तब पूना जाकर आपने पूना-पैक्ट करवाने का यत्न किया था। उसी समय बम्बई में आपके सभापतित्व में हिन्दुओं की एक विराट सभा हुई थी, जिसमें

स्त्री-सुधार के भी आप समर्थक थे; किन्तु भारतीय सभ्यता की सीमा तक ही आप परदे के पक्षपाती न थे। विधवा-विवाह में भी आपको कोई आपत्ति नहीं थी। स्त्रियों के लिए आपके हृदय में अपूर्व श्रद्धा थी। गो-रक्षा और गो-सेवा आन्दोलन के तो आप प्राण थे। इलाहाबाद की सेवा-समिति आपके सेवा-भाव की जीती-जागती निशानी है।

१९३०—३२ के आन्दोलनों में आपने पूरा भाग लिया। यहाँ तक कि कई बार जेल भी गये और आन्दोलन का आपने स्वयं संचालन किया। २७ अगस्त १९३० को दिल्ली में कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक में आप सम्मिलित हुए। वहाँ अन्य नेताओं के साथ आप भी गिरफ्तार कर लिये गए।

गांधी-इर्विन समझौते में आपका भी मुख्य हाथ था। इसके पश्चात् आप कराची-कांग्रेस में सम्मिलित हुए। १९३१ में गोल मेज कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए गान्धीजी के साथ आप भी विलायत चले गए थे। वहाँ आपके बड़े मार्मिक भाषण हुए। १४ जनवरी १९३२ को जब आप स्वदेश लौटे, तब यहाँ सत्याग्रह-आन्दोलन ज़ोरों पर था और सब नेता तथा कार्यकर्ता जेलों में बन्द किये जा चुके थे। १९३२ में दिल्ली में और १९३३ में कलकत्ता में कांग्रेस के जो निषिद्ध अधिवेशन हुए, उनका सभापतित्व करने के लिए जाते हुए पहली बार दिल्ली में और दूसरी बार आसनसोल में आप गिरफ्तार किये गए थे। पाँच-सात दिन जेल में रखकर आपको छोड़ दिया गया।

नवम्बर १९३२ में आपने पुनः एक बार हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिए प्रयत्न किया...

ली गई थी और सिन्ध का प्रश्न भी हल हो जाता, किन्तु सरकार की कूटनीति ने आपका वह यत्न असफल कर दिया। १९२४ में साम्प्रदायिक बँटवारे के सम्बन्ध में कांग्रेस की उदासीन नीति को देखकर आपका कांग्रेस के साथ फिर भी मतभेद होगया। समझौते की सभी चेष्टाएं व्यर्थ सिद्ध हुईं और आपने पुनः नेशनलिस्ट पार्टी का संगठन किया। असेम्बली के चुनाव कांग्रेस के विरुद्ध नेशनलिस्ट के नाम से लड़े, परन्तु सफल नहीं हुए। इतना मतभेद होने पर भी १९३६ में फैजपुर में होने वाली कांग्रेस में आप सम्मिलित हुए और अत्यन्त ओजस्वी भाषण दिया।

इसके पश्चात् वृद्धावस्था आ जाने के कारण आपका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरने लगा। शरीर जीर्ण होने लगा। यद्यपि आपकी अवस्था अब सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने योग्य न रही थी, किन्तु फिर भी जिसने देश के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, जिसने देशवासियों के दुख-दर्द तथा मुसीबतों में अपने को भुला दिया, जिसका सम्बन्ध एक व्यक्ति से न होकर पैंतीस करोड़ देशवासियों से हो गया, वह उनसे अलग कैसे हो सकता था? रुग्णावस्था में भी आप देश-सेवा एवं समाज-सुधार के कार्यों में बराबर भाग लेते रहे। हाँ, राजनीतिक झंझटों का भार अब आपका शरीर सहन करने में असमर्थ था। फिर भी आपकी सहानुभूति सदैव राष्ट्र-नायकों के साथ रही। गांधी और जवाहर के साथ मतभेद रखकर भी सन् १९४२ के प्रस्ताव का समर्थन करके आपने उन्हें आशीर्वाद दिया। उस महर्षि को धन्य है!

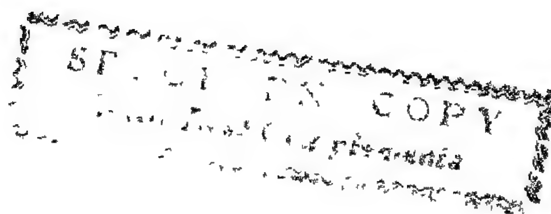
सन् १९४२ में बंगाल में महा भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। लाखों, करोड़ों व्यक्ति पिशाचिनी भूख की ——

कंकाल हाथ में टूटा प्याला लेकर दर-दर भीख माँगने लगे। मालवीय जी के हृदय पर इसका बड़ा गहरा आघात पहुँचा। उनकी आत्मा रो उठी, हृदय पिघल उठा। उन्होंने अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए भरसक प्रयत्न किया। लोगों को उनकी सहायता करने के लिए मार्मिक अपीलें निकालीं। इस अवस्था में आपके कोमल हृदय पर यह एक भीषण आघात था।

आपके हृदय पर दूसरा घातक आघात, जिसने आपको हमेशा के लिए हमसे छीन लिया, १९४६ का बंगाल का भीषण नर-संहार था। कलकत्ता में जो हत्याकाण्ड हुआ, नोआखाली में जो लोमहर्षक हृदय-विदारक घटनाएँ घटीं, हजारों निरीह एवं निर्दोष हिन्दुओं को गुण्डों ने देखते-ही-देखते मौत के घाट उतार दिया, माँ-बहनों का सतीत्व लूटा गया, बलात्कार की अमानुषिक घटनाएं हुईं, इन सबको देखकर या सुनकर आप कैसे जीवित रह सकते थे? उस समय रोग-शय्या पड़े हुए आपने हिन्दुओं को जो अन्तिम सन्देश दिया, वह याद रखने योग्य है। आपने कहा था—"कई वर्ष से हिन्दू-मुस्लिम-संगठन के लिए हिन्दुओं ने काफी सहिष्णुता का परिचय दिया है। किन्तु इस सहनशीलता को कमजोरी समझा जा रहा है। अधिकांश मुसलमानों में सहयोग की भावना का अभाव है। जब तक हिन्दू एक जाति के रूप में अपने अस्तित्व का परिचय नहीं देंगे, तब तक हिन्दू-मुस्लिम-समस्या पूरे खतरे के साथ बनी रहेगी। हिन्दू नेताओं का मातृभूमि के अतिरिक्त अपने धर्म, संस्कृति और अपने हिन्दू भाइयों के प्रति भी कर्तव्य है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि हिन्दू संगठित हों, एक साथ काम करें, निस्वार्थी देश-भक्त

आदर्शों, संस्कृति और हिन्दुओं की रक्षा के लिए अधिकतम कोशिश करें।" कितनी हृदयग्राही और आत्मा को ऊपर उठाने वाली अपील है। इस प्रकार अपना अन्तिम सन्देश देकर १२ नवंबर १९४६ को दिन के ४ बजे यह महान आत्मा स्वर्ग को प्रयाण कर गई। आपकी मृत्यु के साथ ही भारतीय राजनीति के उस लम्बे अध्याय का उपसंहार होगया, जो भारत की आज़ादी की लड़ाई का सबसे अधिक घटना, महत्त्व एवं परिवर्तनपूर्ण रहा है।





: ७ :

रवीन्द्रनाथ टैगोर

[जन्म सन् १८६१ : मृत्यु १९४१]

"मैं जीवन में तभी तक विश्वास करता हूं जब तक इसमें विश्व-बन्धुत्व की भावना है। मैं दानवी शक्ति से मनुष्य की मुक्ति का प्रचार करता हूं। मैं ज्ञान का शत्रु नहीं बन सकता, क्योंकि मैं ऐतिहासिक मानव का समर्थक हूं, जो पशुता को ललकारता है और अन्त में विजयी होता है।"

ओजस्वी ललाट, विशाल आँखें, शानदार श्वेत दाढ़ी, खुला सिर, उन्नत नासिका—इन रेखाओं से उस मुख-चित्र की योजना होती है, जो बीसवीं शताब्दी में भी वैदिक काल के ऋषि-जैसा ही शान्त, सभ्य और प्रसन्न था। टैगोर की वह प्रभावशालिनी मूर्ति देखते ही प्रत्येक व्यक्ति का मस्तक नत हो जाता था और वह गुरुदेव को एक शिष्य के समान प्रणाम किये बिना न रह सकता था। उनके शरीर के प्रत्येक रोम से भारतीयता टपकती थी। वे सही अर्थ में एक भारतीय प्रतिभा थे।

गुरुदेव टैगोर का जन्म ८ मई सन् १८६१ को हुआ था। [illegible]

[illegible]

रवीन्द्रनाथ टैगोर

ई
ा
ग्र
मृ
ा र
ै र
द्रना
ठाकुर
ो थे।
श मे
। था।
जाकर
द्रनाथ
े कट्टर
उनकी
ार्थना,
ँ बातें

गत में
साथ ही
ो अपने
रवीन्द्र
। उनका

गर लोगों में यह एक जो भ्रम-सा छाया हुआ है कि रवीन्द्रनाथ कुर क्षत्रिय वंश से सम्बन्धित हैं, निमूल है। समाज में सम्मानित ने के कारण उनका ंश ठाकुर कहलाने लगा। टैगोर तो अँग्रेज प्रभाव में कहा जाने लगा है। यह टैगोर वंश प्रतिष्ठा, समृद्धि ला-मर्मज्ञता और विद्वत्ता में बहुत समय से ख्यात चला आ रह । सामाजिक और सांस्कृतिक सुधारों में भी यह वंश पीछे नहीं रह । रवीन्द्रनाथ के पितामह द्वारिकानाथ ठाकुर और पिता देवेन्द्रनाथ कुर ब्रह्म समाज के लब्धप्रतिष्ठ नेताओं में से थे। द्वारिकानाथ ठाकु अन्ध-परम्पराओं और सामाजिक कुरीतियों के कट्टर शत्रु ही थे ने तो उनका वंश इसके लिए भी प्रसिद्ध रहा है कि इसी वंश ं मुसलमानों के साथ भोजन करके जाति-बन्धन के नियम को तोड़ा था न्तु द्वारिकानाथ ठाकुर ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने इंग्लैण्ड जाकर ति की विदेश-गमन सम्बन्धी पाबन्दी को तोड़ा था। देवेन्द्रनाथ कुर अपने पिता की भाँति सुधारवादी तो अवश्य थे,परन्तु उतने कट्टर हीं हो सके। अध्यात्म, प्रार्थना और तपस्या की ओर क्रमशः उनकी वृत्ति बढ़ती गई। रवीन्द्रनाथ ने अपने पिता से ध्यान, प्रार्थना कान्त प्रेम, शान्ति और उपासना-जैसी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें सीखी थीं।

रवीन्द्रनाथ की माता का नाम शारदा देवी था। बाल्यकाल ं । उनकी माता का स्वर्गवास हो गया था। माता की मृत्यु के साथ ही पिता की अध्यात्म-प्रवणता की वृद्धि ही हुई और रवीन्द्रनाथ को अपने बचपन में माता-पिता का पूर्ण सुख प्राप्त न हो सका। बालक रवीन्द्र ायः नौकरों के संरक्षण में ही रहे। प्रारम्भिक पाठशाला में ही उनका

ोपवीत-संस्कार किया गया, उसी वर्ष उन्होंने 'पृथ्वीराज-पराज
ाक पहला नाटक लिखा।

क्रमशः वे कविता-कहानी भी लिखने लगे। दो वर्ष बाद १८७
उन्होंने शेक्सपियर के 'मेकबेथ' नाटक का बँगला में अनुवाद किया
प्रकार अपनी पन्द्रह वर्ष की अवस्था से भी पूर्व ही वे लिखने ल

प्रतिभा का वरदान उनको नियति और निसर्ग ने ही दिया था
की प्रारम्भिक रचनाएं भी अत्यन्त उत्कृष्ट होती थी। यद्यपि उन
ु के विकास के साथ ही उनकी रचनाओं की शैली में भी विका
ा गया; परन्तु यह एक निर्विवाद बात थी कि वे एक जन्मजा
ा थे।

अपनी बौद्धिक प्रतिभा के साथ ही पिता के संसर्ग से उन
ध्यात्मिकता का भी विकास होता रहा। विचारों की एक गम्भ
ा उनके मानस में पनप रही थी। उनके 'कवि' के साथ ही उन
र्शनिक' भी उद्‌बुद्ध हो रहा था। कहा जाता है कि उनको ए
य प्रकाश प्राप्त हुआ था। प्रकृति की प्रेममयता का अभ्यास उन
भ हो गया था। सारा चेतन जगत् उनको प्रेममय प्रतीत होने लग
। विश्व को वे सौन्दर्य और प्रकाश से परिपूर्ण देखने लगे थे
ड़ित मानवता के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति का उदय उनके हृद
हो गया था। पिता के साथ हिमालय की कवित्वमयी-शृङ्खला
विचरते-विचरते बालक रवीन्द्र का कवि तो मुखरित हो ही गय
दार्शनिक भी सजग हो रहा था।

त्मनता एवं दृढ़ता लाने के कारण एक महत्त्वपूर्ण घटना ही कह ायगी। प्रत्येक कवि के जीवन में उसके व्यक्तिगत प्रणय का एक वेशिष्ट स्थान रहता है। सन् १८८३ में उनका परिणय मृणालिनी वी के साथ सम्पन्न हो गया। विवाह के बाद से वे साहित्य-रचना में सर्वतोभावेन तल्लीन हो गए। वृद्ध पिता के कहने के अनुसार कलकत्ता छोड़कर वे अपनी जमींदारी के गाँव स्यालदा में चले गए। वहाँ के शान्त और एकान्त वातावरण में उनको अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। गंगा के कछार, लम्बे रेतीले मैदान, शस्य श्यामल खेत, सुन्दर लहरें, पक्षियों के कलरव, सुनहले धान और न जाने ऐसे कितने ही प्रकृति के मनोरम उपादान उनके हृदय के आकर्षण के साधन बन गए। उन्होंने प्रकृति के इस एकान्त एवं चिर-परिचय के कारण उससे तादात्म्य स्थापित कर लिया।

प्रसिद्धि उनकी लेखनी की दासी थी। कुछ ही समय में लोग उनकी तुलना अँग्रेजी महाकवि शैली से करने लगे। अपने ग्राम-निवास काल में उन्होंने अच्छे-अच्छे निबन्धों और नाटकों का तो ढेर लगा दिया, उत्कृष्ट कहानियों और कविताओं की भी परम्परा खड़ी कर दी। मानसी, बलिदान, चित्रांगदा, सोनार तरी, चित्रा और उर्वशी अपनी छटा से दिग्दिगन्त को चमत्कृत कर उठीं।

शान्ति-निकेतन टैगोर का सबसे बड़ा स्मृति-चिह्न है। इस विद्यालय को गुरुदेव के आदर्शों का मूर्त रूप ही कहा जायगा। १९०१ में इसका शिलान्यास हुआ। विद्यालय का उद्देश्य पश्चिमी शिक्षा-प्रणाली के कुछ उपयोगी अंश में ग्रहण करते हुए भी प्राचीन आदर्शों का रक्षण था। एक कवि का वह स्वप्न लोक में सम्मानित हुआ। विदेशों

ाभिन्न देशों मे प्रतिभाएं आकर वहाँ एकत्र हुईं और टैगोर को अपना
वप्न साकार करने में विशेष सफलता हुई। दीनबन्धु एण्ड्रूज एवं
ोयर्सन के नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

अपने जीवन के दूसरे अध्याय में प्रिय-परिजनों के आकस्मिक वियोग
ः कारण टैगोर का जीवन अत्यन्त दुखमय हो गया। विद्यालय को
ारम्भ हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि कवि-पत्नी श्री०
ृणालिनी देवी का स्वर्गवास हो गया। सब प्रकार से सहचरी एवं
ानुकूल सह-धर्मचारिणी पत्नी का मिलन के नौ वर्ष बाद ही आ पड़ने
ाला यह वियोग कविवर के लिए दुःसह हो गया। मृत्यु-शय्या पर
न्होंने उनकी बड़ी शुश्रूषा की, परन्तु उनके हृदय की पुकार भी इस
ोर-वियोग के दुर्दिन को दूर न कर सकी। कवि को मर्मान्तक
ीड़ा हुई।

इसके बाद भी उनको आघात-पर-आघात झेलने पड़े। दो वर्ष
ाद ही उनकी दूसरी कन्या की भी मृत्यु हो गई। इसके एक वर्ष
ाद ही उनके वृद्ध पिता भी उनका साथ छोड़कर चल दिए। इसके
एक ही वर्ष बाद अर्थात् सन् १९०६ में ही उनके बड़े पुत्र की, जिसको
वे बहुत प्यार करते थे, भी मृत्यु हो गई। इन भीषण प्रहारों के
कारण उनकी आत्मा जर्जर हो गई। उनके हृदय पर वेदना का साम्राज्य
छा गया। तत्कालीन रचनाओं पर इस वियोग-विषाद अथवा नियति-
विडम्बना की छाप पड़ना अनिवार्य ही था। 'स्मरण', 'नौका डूबी'
और 'खेवैया' रचनाएं कवि के संवेदनशील हृदय के उद्गारों से
ओत-प्रोत हैं।

तत्पश्चात् रुग्णता की दशा में उन्होंने इंग्लैण्ड को प्रस्थान किया।

कोने से उस कोने तक बढा दी। इंग्लैण्ड से वे अमेरिका ग
र फिर विश्व में सम्यक् ख्याति का अर्जन करने के पश्चात् १६१३
त लौट आए। तभी उनको विश्व-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना प
ने वाला प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार मिला। इस से उनकी ख्याति औ
बढ़ गई। कवि की ख्याति और सम्मान की वृद्धि के साथ ह
त की और बँगला भाषा की भी सम्मान-वृद्धि हुई। इस बीच
की अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएं भी प्रकाशित हो रही थीं। इनक
इट' की उपाधि भी दी गई तथा अन्य विविध प्रकार के सम्मा
को प्राप्त हुए।

शिक्षा की प्रणाली के विषय में कविवर टैगोर के जो स्वप्न
का मूर्त रूप तो शान्तिनिकेतन था ही, उनकी राष्ट्रीयता ए
तर्राष्ट्रीयता की भावनाओं को 'विश्व-भारती' में मूर्त रूप प्राप्त हुआ
व-संस्कृति का सामञ्जस्यपूर्ण अध्यापन इन संस्थाओं का प्रधा
य रहा है। विश्व-भारती की उन्नति के लिए टैगोर ने बहुत-कु
ा। नोबल पुरस्कार तथा अन्य पुस्तकों से प्राप्त होने वाली आयक
होंने विश्व-भारती के लिए ही व्यय किया। आज संसार के अने
ों के विद्यार्थी बन्धुत्व की भावना में बँधकर यहाँ रहते तथा संस्कृ
अध्ययन करते हैं। विदेशों के कुछ विद्वान् भी यहाँ आकर भारत
कृति का अध्ययन करते हैं। गुरुदेव टैगोर यहाँ ही एक अध्याप
रूप में रहते थे। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम चरण में अप
-कुछ विश्व-भारती को ही समर्पित कर दिया था।

गुरुदेव जीवन में नवीनता को बहुत चाहते थे। उनमें परिवर्त
प्यास भरी हुई थी। कमरे की सजावट को बदल देने में उन

वर्तित होते रहते थे। अपने निवास-स्थान के विषय में भी वे य
वर्तन का क्रम चलाया करते थे। यहाँ तक कि यात्राओं के क्र
भी सहसा परिवर्तन करने में उनको आनन्द आता था। इ
र परिवर्तन-प्रियता उनके जीवन में ओत-प्रोत थी। फिर
ने साथियों और विद्यार्थियों के प्रति उनके स्नेह में कोई परिवर्त
आता था।

गुरुदेव को राष्ट्र-निर्माण और समाज-सुधार के प्रयत्नों में
ेष रुचि थी। जलियानवाला बाग के हत्याकाण्ड पर दुःखी होक
होंने 'सर' की उपाधि छोड़ दी। राजनीति में गान्धीजी से आप
मतभेद था, परन्तु फिर भी आप उन पर विशेष श्रद्धा रखते थे
ने अंग्रेज मित्रों के असन्तुष्ट होने की चिन्ता बिना किये ही
जों की घृणित शासन-नीति की सदैव निन्दा किया करते थे
ाजिक कुरीतियों के दूर करने के प्रयत्न में वे अपनी वंश-परम्प
भाँति ही दृढ़व्रत थे। स्त्रियों और अछूतों को अपनाए बिना
ाजिक विकास को अपूर्ण ही मानते थे। वे अखिल मानवता
ी थे। युद्ध में विनष्ट होती हुई मानवता को देखकर उनको अत्यन
ब हुआ था। वे एक स्थान पर कहते हैं, "मनुष्य के प्रति विश्वा
देना पाप है, अतः उस विश्वास को मैं अन्तिम क्षण त
ा करूँगा।" विश्व-बन्धुत्व उनका मन्त्र था। वे प्रकृति के सच
ासक थे।

वे भारतीय संस्कृति की युग-मूर्ति थे। उनको साहित्य-सम्राट् क
ता है। साहित्य का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसे उन्होंने अप
ों से सौन्दर्य प्रदान न किया हो। पुनः एक बार भारत ने रवीन

खुले हाथों से अपनाया और प्राचीन संकीर्णताओं को अवश्य बहिष्कृत किया।

वे बहुमुखी प्रतिभा लेकर अवतरित हुए थे। सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की ही उनके ऊपर कृपा थी। वे भारतीय संस्कृति का चिर-सन्देश और विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं का लेखा-जोखा विश्व के सम्मुख उपस्थित करने आए थे। अपने स्मृति-चिह्नों एवं सिद्धान्तों को छोड़कर वे ८ अगस्त, १९४१ को इस लोक से चल दिए। उनको खोकर भारत तो निर्धन हो ही गया, विश्व की समग्र मानवता ने ही मानो सर्वस्व खो दिया।



: ८ :

लाला लाजपतराय

[जन्म सन् १८६५ : मृत्यु सन् १६२८]

"मेरा मजहब हकपरस्ती है, मेरी मिल्लत कौम परस्ती है, मेरी इबादत खलक परस्ती है, मेरी अदालत मेरा अन्तः करण है, मेरी जायदाद मेरी कलम है, मेरा मन्दिर मेरा दिल है, और मेरी उमगें सदा जवान हैं।"

पंजाब-केसरी लाला जी का स्मरण आते ही एक मझोले कद का गठा हुआ पंजाबी आँखों के सामने झूलने लगता है। वह चित्र जिस पर खून के अक्षरों में अंकित है—"मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफ़न की कील होगी।"

वह पंजाबी प्रकृति के प्रतीक थे। सरलता, दयालुता, जोश और शहादत की उद्वेलित करने वाली भावुकता सभी रंग-बिरंगी कुसुमावलियों का एक मोहक गुलदस्ता था उनका जीवन; और इसीलिए उनकी जीवन-धारा एक निश्चित मार्ग पर प्रवाहित होती नहीं दिखाई पड़ी। उनकी जीवन-धारा गंगा की ...



लाला लाजपतराय

पूर्ववर्ती के साथ परवर्ती और कल के साथ आज को ठीक-ठीक
ाने वाला आधुनिक राजनीति-क्षेत्र में लालाजी के अतिरिक्त औ
नहीं हुआ । इसी विशेषता के कारण वे जन-समाज में जिन्दा रहे
कहना चाहिए कि उनकी इस विशेषता ने ही उन्हें दास औ
ाक के समकक्ष कर दिया था । इसी के कारण उनमें एक ऐस
क प्रवाह उमड़ता था जो बड़े-बड़े जन-समूहों को हिला देता था
ा एक राजनीतिक नेता ही नहीं, अपितु समाज सुधारक भी थे । सेव
े की आपकी भूख कभी शान्त नहीं होती थी । दलितों और पीडित
लिए आपके हृदय में एक विशेष स्थान था । जहाँ कहीं दुःख औ
द्रता देखते आप वहीं दौड पड़ते थे । जिस कार्य मे जुटते, पूरी संलग्न
साथ । किसी भी कार्य को आप अधूरे मन से करना नहीं जानते थे

आपके पिता ला० राधाकृष्ण जिला लुधियाना (पंजाब) के जग
ाँ ग्राम के रहने वाले थे । वे स्कूलों के इन्सपैक्टर थे, इस कार
ः बाहर ही रहा करते थे । लाला जी का जन्म अपनी ननिहाल
ी नामक ग्राम में हुआ । आपके माता-पिता की सबसे बड़ी देश
ा यही थी कि उन्होंने देश को आप-जैसा रत्न दिया । जाति-प्रे
ा समाज-सेवा की भावना तो आपको अपने माता-पिता से विरास
ही मिली थी । बचपन से ही आप बड़ी प्रखर बुद्धि के थे । बाल्य
था में ही आपने समस्त धार्मिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकों
ध्ययन करके अपने विचारों को परिष्कृत करना आरम्भ कर दिया थ
भी से आपके हृदय में समाज-सुधार के अंकुर उत्पन्न हो चुके
न्होंने आगे चलकर राष्ट्रीयता का बृहत् रूप धारण कर लिया
रम्भिक शिक्षा पिता के पास ही प्राप्त की । १८८० में लुधियाना

ीक्षा पास करके आप प्लीडर बनकर हिसार गए और वहाँ 'प्रैक्टि
ने लगे। अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण आप थोड़े ही सम
विख्यात हो गए। वकालत के साथ-साथ आप समाज-सेवा के का
भी भाग लेते थे। आर्य-समाज की ओर आपके विचारों का झुक
रम्भ से ही था। दिनों-दिन आपकी लोक-प्रियता बढ़ने लगी। शी
आप हिसार की म्युनिसिपैलिटी के अवैतनिक मन्त्री बन गए। हिस
आप छः वर्ष तक रहे। लाला जी उस समय राजनीतिक, सामाजि
शिक्षा क्षेत्र में एक साथ ही बड़ी संलग्नता से कार्य करते थे।

१८९२ में आप लाहौर आकर वकालत करने लगे। १८८६
० ए० वी० कालिज की स्थापना हो चुकी थी। लाहौर आने
ले भी लाला जी उसकी थोड़ी-बहुत सेवा करते ही रहते थे, कि
हौर आने पर तो आपकी सेवाएं और भी अधिक बढ़ गईं। अ
के अध्यापक तथा अवैतनिक मन्त्री बन गए। १९०१ में आप
ाब की शिक्षा-समिति की नींव डाली और जगरावां में अपने पि
नाम पर राधाकृष्ण हाईस्कूल तथा पंजाब में अनेक स्थानों पर प्रा
स्कूल खुलवाये।

१८९६ में उत्तरी भारत में तथा १८९९ में राजपूताना में दुर्भि
। लाला जी अकाल-पीड़ितों की सेवा में जी-जान से जुट पड़े
से आपकी लोक-प्रियता और भी बढ़ गई। १९०७—८ में बिहार तथ
प्रान्त में दुर्भिक्ष पड़ा। इस समय भी आपने पीड़ितों की सेव
बहुत बड़ा कार्य किया। आपके बिहार-दुर्भिक्ष के कार्य की प्रशंस
कार ने भी की थी। १९०५ में आपने वालण्टियर कोर (स्वय
क-संघ) बनाकर कांगड़ा के भूचाल-पीड़ितों की सहायता की थी

ीत गाने प्रारम्भ किये तो लाला जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने
दू के 'कोहनूर' तथा कई अंग्रेजी पत्रों में सर सैयद पर खूब छींटा
शी की। १८८८ में आप प्रथम बार इलाहाबाद-कांग्रेस में सम्मि
ात हुए, जिसके अध्यक्ष जार्ज यूल थे। वहाँ आपने कौंसिल-सुधार
प्रस्ताव पर भाषण दिया, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई। आपने कांग्रेस
ा ध्यान शिक्षा और देशी उद्योग-धन्धों की ओर आकर्षित किया
सके परिणाम स्वरूप कांग्रेस की ओर से औद्योगिक प्रदर्शनियाँ होने
गीं। इसके पश्चात् आप प्राय कांग्रेस के सभी अधिवेशनों में
ामिल होते रहे और पंजाब के प्रमुख कांग्रेसी प्रतिनिधि माने जाने लगे

१९०६ में आप कांग्रेस-डेपुटेशन के सदस्य बनकर इंग्लैण्ड गए
सके पश्चात् १९११ में भेजे गए डेपुटेशन में भी आप तशरीफ ले
ए। इन डेपुटेशनों के अतिरिक्त स्वयं १९०२ में फिर १९१० में इंग्लैंड
ए और वहाँ लेखों, व्याख्यानों तथा मुलाकातों द्वारा भारत के लिए
ड़ा सराहनीय कार्य किया। १९१४ के महायुद्ध के समय आप इंग्लैण्ड
ही थे। उस समय आपको स्वदेश लौटने का पासपोर्ट नहीं मिला
ौर आप अमरीका चले गए। अमरीका जाकर आप चुपचाप नहीं
ैठे बल्कि वहाँ भी भारत के लिए बड़ा जबरदस्त प्रचार किया। आप
९२० तक अमरीका में रहे। वहाँ 'इण्डियन होमरूल लीग' तथा
ण्डियन इनफारमेशन ब्यूरो' नामक संस्थाएं स्थापित की। 'इण्डियन
मरूल लीग' के भारतीयों के अतिरिक्त एक सहस्र के लगभग
मरीकन सदस्य भी हो गए थे। दूसरी संस्था का उद्देश्य अमरीकन
नता को भारत तथा भारतीयों के सम्बन्ध में ठीक-ठीक ज्ञान कराना
ा। वहाँ से आपने 'यंग इण्डिया' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी
काला। ...

१६०७ में बंग-भंग आन्दोलन के कारण बंगाल में जो राष्ट्रीय जागृति हुई, उसका प्रभाव पंजाब पर भी पड़े बिना न रहा। पंजाब में भी राष्ट्रीय चेतना का उदय होने लगा और इधर-उधर कुछ असाधारण घटनाएं घटने लगीं। जिला मिन्टगुमरी की नई बस्तियों में लगान आदि के बारे में अनेक झगड़े खड़े हो गए। लाला जी ने इस जागृति में आगे बढ़कर भाग लिया। इस समय पंजाब की आँखें दो ही व्यक्तियों पर लगी हुई थीं—एक सरदार अजीतसिंह और दूसरे लाला लाजपतराय। लाला जी अब सरकार की नज़रों में भी खटकने लगे थे। अतः मई १६०७ में पंजाब-सरकार ने आपको गिरफ्तार करके मांडले (बर्मा) जेल में नज़रबन्द कर दिया। किन्तु ६ महीने पश्चात् ही आपको छोड़ दिया गया ११ नवम्बर १६०७ को आप जेल से निकले, तो देश का वातावरण बदल चुका था। कांग्रेस में गरम और नरम दलों का विरोध उग्र रूप धारण कर चुका था। इस समय 'लाल-बाल-पाल' के नाम से गरम दल के तीन नेता बड़े प्रसिद्ध हो रहे थे, इनमें लाला जी, लोकमान्य तथा विपिनचन्द्र पाल थे। दोनों दलों का विरोध बढ़ता ही गया और १६०७ में सूरत-कांग्रेस में बड़ा झगड़ा उठ खड़ा हुआ। यहाँ तक कि हाथा-पाई और मार-पीट पर नौबत आगई। गरम दल वाले आपको सभापति बनाना चाहते थे। परिणाम-स्वरूप लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में गरम दल कांग्रेस से अलग हो गया। लाला जी ने कांग्रेस के इन दोनों दलों में सुलह कराने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हुए। १६१२—१३ में गान्धी जी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह प्रारम्भ किया, उसके लिए लाला जी ने पंजाब से चालीस हज़ार रुपया इकट्ठा किया था।

१६२० में अफ्रीका ...

सभापति आप ही बनाये गए। गर्म विचार के होने के कारण असहयोग एवं सत्याग्रह में आपका अधिक विश्वास न था और अपने भाषण में आपने इस अविश्वास को प्रकट भी कर दिया—फिर भी जब नागपुर में कांग्रेस की ओर से उक्त प्रस्ताव को अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया गया तो आप भी पूरी श्रद्धा से उसमें भाग लेने लगे। यह थी आपकी उत्तम कार्य-प्रणाली। आप अपने ही विचारों को दूसरों पर जबर्दस्ती लादना नहीं चाहते थे। लालाजी ने गान्धी जी के असहयोग-आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। १९२१ के प्रारम्भ में आपने देखते-ही-देखते पंजाब के सरकारी स्कूल-कालिजों को विद्यार्थियों से खाली करा दिया। विद्यार्थियों को राष्ट्रीय-शिक्षा देने के लिए आपने लाहौर में एक स्वतन्त्र कालिज खोला। आपकी इन हलचलों को सरकार सहन न कर सकी और ३ दिसम्बर १९२१ को आपको गिरफ्तार कर लिया गया। थोड़े दिन बाद छोड़ दिया गया, किन्तु आप चुप बैठने वाले कब थे। जेल से छूटते ही आप फिर अपने पूर्व कार्य में लग गए। ६ मार्च १९२२ को आप पुनः गिरफ्तार कर लिये गए और २ वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। जेल में आप बीमार हो गए और आपका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरने लगा। यहाँ तक कि आपको तपेदिक का रोग हो गया। राष्ट्रीय पत्रों ने आपके छुटकारे के लिए बहुत आन्दोलन किया। जब आपका रोग बहुत भयानक हो गया। तो अगस्त १९२३ में आपको छोड़ दिया गया। कुछ दिन आराम करने के पश्चात् आप फिर राजनीतिक कार्यों में भाग लेने लगे।

१९२३ के अन्त में आप कांग्रेस-स्वराज्य-पार्टी में शामिल हो गए और लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए। सन् १९२५ 'वाक आउट' की पालिसी ...

आये और पं० मदनमोहन मालवीय के साथ मिलकर नेशनलिस्ट पा
स्थापित की। आपमें अब दलबन्दी का जोश और भी बढ गया थ
इसी जोश में आप पंजाब के चुनावों में दो क्षेत्रों से खड़े हुए और दो
जगह सफल भी हुए। किन्तु स्वराज्य-पार्टी से विरोध होने के कार
राजनीतिक-क्षेत्र में आपकी लोकप्रियता घट गई। आपने अपने सिद्धा
के आगे इसकी कुछ परवाह नहीं की। १६२७ ई० में पं० मोतीलाल
से फिर आपका मेल हो गया और वह मेल अन्त तक बढ़ता ही च
गया। नेहरू-रिपोर्ट के तैयार कराने में भी आपने नेहरू जी की ब
सहायता की थी। १६२७ में लालाजी ने असेम्बली में कई जोरद
भाषण दिये। इसी बीच आपने शुद्धि-संगठन का भी संचालन किया

लाला जी देश के राजनीतिक और धार्मिक दोनों प्रकार के ही ने
थे। आपके हृदय में हिन्दुत्व की भावना भी बड़ी प्रबल थी। हिन्
जाति की उन्नति एवं सुधार के लिए आपने बडे-बड़े कार्य किये। दलित
द्धार तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्य भी हिन्दुत्व-प्रेम का ही परिणाम थे
आपने कई धार्मिक संस्थाएं खोलीं। आर्य समाज में भी बड़ी संलग्न
से कार्य किया। १६०६ में आपने पंजाब में हिन्दू-सभा की स्थापना क
थी। उस समय कुछ आर्यसमाजियों ने आपके इस कार्य का विरो
किया था। किन्तु बाद में जब मालवीय जी ने हिन्दू-सभा का संगठ
किया तो हिन्दुओं का बहुत बड़ा भाग लालाजी की प्रशंसा करने लगा
१६२२ में शुद्धि और तबलीग तथा संगठन और तनज़ीम आदि आन्द
लनों मे आपने पूरी तरह सहयोग दिया। १६२५ में आप कलकत्त
में होने वाले हिन्दू-महासभा के अधिवेशन के सभापति बने। १६२८
इटावा में युक्तप्रान्तीय हिन्दू-कान्फ्रेंस के अध्यक्ष हुए। इतना सब-कु

लालाजी की प्रतिभा एवं सेवाएं सर्वतोमुखी थी। समाज-सुधा
क्षा-प्रचार तथा लोक-सेवा के अतिरिक्त आपने दलितोद्धार के लि
बड़ा ठोस कार्य किया। सन् १९०० से पहले भी, जब कि कांग्रे
ध्यान अछूतोद्धार की ओर गया भी नहीं था, लालाजी इस कार्य
हुए थे। स्यालकोट के आस-पास मेघ आदि दलित जातियों
ारने के लिए आपने अथक परिश्रम किया था। १९२० में अमरीक
लौटने पर आपने 'सर्वेण्ट्स आफ पीपुल सोसायटी' की स्थापना
जो अब तक दलितोद्धार का कार्य करती रही है। देश के नवयुवकों
नीति तथा अर्थशास्त्र का ज्ञान फैलाने तथा लोक-सेवा की भाव
न्न करने के लिए उक्त सोसायटी की स्थापना की गई थी। आप
कादास लाइब्रेरी के नाम से एक बड़ा पुस्तकालय भी खोला था
ाथ बच्चों और बीमार स्त्रियों के लिए भी आपने एक गुलाबदे
पताल खोला। आपने अपनी समस्त कमाई इन्हीं लोकोपकारी का
लगा दी और अपना सर्वस्व देश तथा समाज के अर्पण कर दिया

लालाजी की साहित्यिक सेवाएं भी कम नहीं हैं। आप एक उ
टि के वक्ता तथा क़लम के धनी लेखक थे। 'मेरी जायदाद मेरी क़ल
आपने अपने इस कथन को सत्य कर दिखाया। प्रारम्भ में देश-सेव
लिए आपने साहित्य को ही अपना साधन बनाया था। 'मेज़िनी
बाल्डी, कृष्ण, शिवाजी, बन्दा वैरागी, स्वामी दयानन्द आदि
ानियाँ लिखकर आपने समाज में देश-प्रेम की भावना उत्पन्न कर
सराहनीय प्रयत्न किया। अमरीका जाकर भी आपने कई पुस्त
ीं, जिनमें 'यंग इंडिया' 'आर्य-समाज' और 'भारत का राजनीति
हास' अधिक उपयोगी हैं। आपकी सर्वोत्तम रचना 'अनहैप

और अंग्रेजी में साप्ताहिक 'पीपुल' पत्र भी निकाले, जो आपकी मृत्यु के पश्चात् भी बहुत दिनों तक निकलते रहे हैं।

१९२६-२७ में जब देश में शासन-सुधार की माँग का आन्दोलन हुआ तो ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों को भुलावा देने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की। सर जान साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त हुआ था, जिसे यह कार्य सौंपा गया कि वह भारतवर्ष की अवस्था की जाँच करे और शासन-सुधार सम्बन्धी अपनी राय भी पेश करे। १९२८ के आरम्भ में उक्त कमीशन ने भारत का दौरा किया। इस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था; इसलिए देश ने एक स्वर से इसका बहिष्कार किया। जहाँ-जहाँ भी यह कमीशन पहुँचा उसके विरोध में प्रदर्शन किये गए और पुलिस की ओर से प्रदर्शनकारियों पर खूब लाठियाँ बरसाई गईं। ३० अक्तूबर १९२८ को साइमन-कमीशन लाहौर पहुँचा। लाहौर में इस दिन दफा १४४ लगा दी गई थी। नगर में बड़ी सनसनी फैली थी। जगह-जगह पर पुलिस का पहरा था। काँग्रेस और जनता ने साइमन-कमीशन का बहिष्कार किया, फिर पंजाब क्यों किसी से पीछे रहे, वह पंजाब जिसका नेतृत्व लाला लाजपतराय करते हैं? अतः साइमन-कमीशन लाहौर पहुँचा और उसके बहिष्कार का जलूस निकाला गया। जलूस का नेतृत्व कर रहे थे ६० वर्ष के वृद्ध नेता लाला लाजपतराय। जब जलूस स्टेशन पर पहुँचा, जहाँ वह गोरों का काला कमीशन उतरने वाला था, तो पुलिस के अधिकारियों ने खीझकर जलूस पर लाठियाँ बरसानी प्रारम्भ कर दीं। लाला जी की छाती पर भी लाठियाँ पड़ने लगीं, किन्तु वह वृद्ध केसरी हिमालय की भाँति अडिग, छाती फुलाये सब-कुछ सहन करता रहा। युवकों के हृदय तथा ...

बढ़कर लाठियों का प्रहार अपने ऊपर लेना शुरू कर दिया। लालाजी को बहुत चोट आई।

उसी दिन शाम को लालाजी ने एक सभा में भाषण देते हुए कहा था—"मेरे ऊपर किया गया लाठी का एक-एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील बनेगा।" लालाजी का शरीर तथा मन इस अपमान को सहन नहीं कर सका और १७ नवम्बर को प्रातःकाल ७ बजे लालाजी परलोक सिधार गए। समस्त देश में इस घटना से शोक तथा विक्षोभ की लहर दौड़ गई।

लाला लाजपतराय न केवल पंजाब की, बल्कि भारतवर्ष की एक महान् शक्ति थे। पंजाब तो उन्हें अपना पिता कहता था। उनकी मृत्यु के पश्चात् वहाँ जो स्थान खाली हो गया, वह आज तक नहीं भर पाया है।

लाहौर में आपकी स्मृति में आपका स्मारक बनाया गया। जो देश का बंटवारा होने के बाद अब शिमला ले जाया गया है। दिल्ली में आपकी स्मृति में हाल ही में आपके नाम पर 'लाजपतराय मार्केट' का निर्माण किया गया है।



: ९ :

हकीम अजमलखाँ

[जन्म सन् १८६५ : मृत्यु सन् १९२७]

"यह हमारे लिए गौरव का विषय होना चाहिए कि भारत अपने पड़ोसी देशों को मार्ग दिखा रहा है। अहिंसात्मक असहयोग अब केवल भारतीय आन्दोलन नहीं रह गया है, वह बड़ी तेजी से एशिया-व्यापी आन्दोलन बन रहा है।"

लम्बा कद, दोहरा बदन, ईरानी ढंग की बड़ी-बड़ी आँखें, रूहानी जलाल से चमकता हुआ चेहरा, उस पर सरलता एवं गम्भीरता की छाप, लम्बी नासिका, उन्नत ललाट, काली छोटी दाढ़ी : ये सब मिलकर एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं, जिसे देखकर हृदय में श्रद्धा एवं आदर का स्रोत उमड़ पड़ता है, स्वदेश के लिए हृदय में अपार प्रेम, कांग्रेस से अनुराग, हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए निरन्तर चिन्तनशील वे थे भारत के मसीहा, हकीम अजमलखाँ। स्वभाव के अति सरल और सादे। मिलनसार ऐसे कि जो एक बार आपसे मिला. वह आपका ही हो गया। [illegible]

हकीम अजमलखाँ

हकीम अजमलखाँ साहब का जन्म १८६२ में दिल्ली के प्रसिद्ध हकीमों के वंश में हुआ। यह खानदान मिस्र आदि मध्य पूर्व के देशों में भी अपने पेशे की योग्यता और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था। अन्त तक आपके पूर्वज शाही हकीम रहते आये थे। आपके दादा हकीम शरीफ़खाँ और पिता महमूद खाँ के समय में इस घराने की प्रतिष्ठा अपनी चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। यदि शरीफ़ खानदान के इतिहास को यूनानी चिकित्सा का इतिहास कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी। हकीम अजमल खाँ साहब ने अपनी योग्यता, अनुभव, परिश्रम, लगन और धुन से अपने परिवार की प्रतिष्ठा एवं गौरव को और भी चार-चाँद लगा दिये। आपका हाथ न केवल रोगियों की नब्ज पर ही होता था, बल्कि देश की नब्ज पर भी होता था।

यद्यपि आपको किसी स्कूल या कालिज में नहीं पढ़ाया गया, तथापि आप उर्दू, फारसी, अरबी, कुरान, न्याय, भौतिक विज्ञान, साहित्य, ज्योतिष, गणित और इस्लामी शरीअत के पूर्ण ज्ञाता थे। आप हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। उर्दू और फारसी के सुन्दर कवि भी थे। आपका उपनाम "शैदा" था। देश-विदेश की यात्राओं से आपने बड़े-बड़े अनुभव प्राप्त किये, वास्तव में आपकी सबसे बड़ी शिक्षा यही थी। सर्वप्रथम आपने १९०४ में मध्यपूर्व के मुस्लिम देशों का विस्तृत भ्रमण किया और वहाँ के पुस्तकालयों का अवलोकन करने तथा वहाँ के प्रसिद्ध हकीमों से भेंट करके अपने हकीमी ज्ञान को बढ़ाया। दूसरी बार १९२१ में आपने लन्दन, पैरिस, बर्लिन और वियना आदि की यात्रा की। इस बार आप दिल्ली के प्रस्तावित तिब्बिया कालिज की ओर से गए थे। आपने वहाँ के अस्पतालों, मेडिकल कालिजों एवं

बहुत बड़ा मान था, जो हकीम साहब को प्राप्त हुआ। भारतीय समाचार-पत्रों ने इस संवाद का बड़ी प्रशंसा के साथ उल्लेख किया था।

जिस समय लार्ड मिण्टो हिन्दुस्तान के मुसलमानों को खुश करने की भरपूर कोशिश कर रहे थे, तो उनकी दृष्टि हकीम साहब पर भी पड़ी। आपको 'हाजिकुलमुल्क' का खिताब दिया गया। इसके पश्चात् सन् १९१५ में भारत सरकार की ओर से आपको 'कैसरे-हिन्द' का स्वर्ण-पदक प्रदान करने की घोषणा की गई। कुछ ही वर्षों के पश्चात् गान्धी जी के आदेशानुसार आपने सरकारी नीति के प्रति पूर्ण असन्तोष प्रकट करते हुए 'हाजिकुलमुल्क' का खिताब तथा 'कैसरे-हिन्द' का पदक दोनों ही लौटा दिये। इसके कुछ ही दिनों पश्चात् कानपुर में एक कान्फ्रेंस हुई, जिसमे जनता की ओर से आपको 'मसीहुलमुल्क' का खिताब दिया गया।

हकीम साहब राजनीतिक क्षेत्र मे बहुत देर से आये, किन्तु आते ही छा गए। गान्धी जी से आपकी भेंट १९१७ में कलकत्ता-कांग्रेस के अधिवेशन पर हुई, जिसका सभापतित्व श्रीमती एनी बेसेण्ट ने किया था। तब से ही महात्मा गान्धी और हकीम साहब एक दूसरे के अनन्य मित्र बन गए और जीवन पर्यन्त यह मित्रता कायम रही। इसके पश्चात् १९१८ में दिल्ली में मालवीय जी के सभापतित्व में कांग्रेस का जो महत्त्वपूर्ण अधिवेशन हुआ, उसके आप स्वागताध्यक्ष बनाये गए। यहीं से आपके राजनीतिक जीवन का श्रीगणेश होता है। वैसे आप सार्वजनिक कार्यों में पहले से ही भाग ले रहे थे। अलीगढ़ के एम० ए० ओ० कालिज को यूनीवर्सिटी बनाने के आन्दोलन में आपने विशेष भाग लिया था। मुस्लिम लीग का आपको उपाध्यक्ष चुना

यों पर आपका एक विशेष प्रकार का आधिपत्य था। रौलट-एक्ट
दिनों में आपने दिल्ली वालों का बड़ा सराहनीय नेतृत्व किया। थ
ा भयानक और नाजुक समय था। इसी बीच पंजाब में फौज
नन का काला युग प्रारम्भ हो गया और दिल्ली की परिस्थिति और
ाड़ गई। किन्तु हकीम साहब के अद्भुत व्यक्तित्व और सराहनी
त्नों ने दिल्ली की शान्ति को बनाये रखा। यदि उस समय दिल्ल
स्वामी श्रद्धानन्द और हकीम अजमलखाँ न होते तो सन् ५७ जैस
-संहार मच जाता। दिल्ली में उन दिनों १८ दिन तक जो राम-रा
ा, उसका श्रेय इन दोनों व्यक्तियों को ही है। हकीम साहब उ
य दिन-रात दौड़-धूप में रहते थे। नगर में पंचायतें करके वर्षों
ाड़ों तथा लाखों के मामलों को बात-की-बात में तय करा देना आ
का काम था। डा० अन्सारी ने आपके उस समय के कार्य
सा करते हुए कहा था—"तमाम शहर में इन्तक़ाम का ऐस
बा भड़क उठा कि पब्लिक बिलकुल आपे से बाहर हो गई
ार हकीम अजमलखाँ साहब ने अपनी बेमिस्ल शख़सिय
काम न लिया होता तो यक़ीनन सन् ५७ जैसा क़त्ले-आम
उसके लिए हकूमत बिल्कुल तैयार थी, दिल्ली में दोबा
जाता।" उस समय दिल्ली में शान्ति बनाये रखने
ए सरकार को हकीम साहब से सहायता लेनी पड़
। वह ऐसा समय था, कि हिन्दू मुस्लिम सभी नवयुवक हकी
हब के इंगित-मात्र पर खून की होली खेलने को तैयार थे।

जिस प्रकार १६१८ के अधिवेशन का सभापतित्व लोकमान्य तिल
करना था और उनकी अनुपस्थिति में मालवीय जी को सभाप

र वे अधिवेशन में न आ सके। उनकी जगह सर्वसम्मति से हकी
हब को सभापति बनाया गया। इस अधिवेशन का महत्त्व सब
धिक था, क्योंकि सरकारी ख़िताब छोड़ने का आन्दोलन पूरे ज़ोरों
और हिन्दू, मुसलमान सभी जातीय भेद-भाव को भुलाकर इस
म्मिलित हुए थे। इसी अधिवेशन में महात्मा गान्धी और मौला
रत मोहानी में स्वराज्य के स्पष्टीकरण के बारे में वह विरोध पै
ा था जिसके कारण मौलाना हसरत मोहानी हमेशा के लिए कांग्रे
अलग होकर मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गए।

हकीम साहब के कांग्रेस के सभापति निर्वाचित होने के पश्च
ही राजनीतिक हलचलों का केन्द्र बन गया। इन दिनों 'शरीफ़ मंजि
ल्लीमारान' में एक विशेष प्रकार की चहल-पहल-सी रहती थी औ
के प्रायः प्रत्येक नेता का आतिथ्य करने का सौभाग्य 'शरीफ़ मंजिल
प्राप्त हुआ था। उन दिनों कांग्रेस-कमेटी की ऐतिहासिक बैठ
रीफ़ मंजिल' में ही हुआ करती थी। मौलाना अबुलकलाम आज़ा
पंडित मोतीलाल नेहरू सप्ताहों तक 'शरीफ़ मंजिल' के अति
।

यरवदा जेल में आपरेशन के बाद जुहू के विश्राम और १९२४
ली में किये गए २१ दिन के उपवास के समय में गान्धी जी के प्र
म साहब का स्नेह और आकर्षण बहुत बढ़ गया था। गान्धी ज
जब ६ वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड मिला तो उन्होंने अहमद
-कांग्रेस से प्राप्त वे समस्त अधिकार, जो उन्हें डिक्टेटर क
यत से प्राप्त थे, हकीम साहब को ही सौंप दिये थे। इस गम्भी

कि हालाँकि मेरी खराब सेहत मुझे अपने प्यारे मुल्क की हुत ज्यादा खिदमत करने का मौका न देगी, फिर भी मेरी न्तहाई कोशिश यह होगी कि जब तक मि० सी० आर० दास ल से वापिस आयं मैं अपने फरायज़ को अन्जाम देता रहूं। दा हम सबकी मदद करे, उस मुकद्दस काम में, जो आपने और ल्क ने हक और इन्साफ का नाम लेकर शुरू किया है।" न पंक्तियों से प्रकट हो जाता है कि अपने कर्तव्य के प्रति आपकी कतनी निष्ठा थी।

आप खिलाफत कमेटी के प्रधान भी रहे। आपने प्रधान पद से ईद के भ अवसर पर भारतवर्ष के मुसलमानों को खद्दर पहनने के लिए बड़ा भावशाली वक्तव्य दिया था। हकीम साहब ने 'जमीयत-उल-उलमाए-न्द' को सफल पथ-प्रदर्शक संस्था बनाने के लिए सराहनीय प्रयत्न क्या। सन् १९२१ में हकीम साहब के प्रयत्नों से अलीगढ़ में जामिया-मिलिया-इस्लामिया की स्थापना की गई। उन दिनों अलीगढ़ मुस्लिम निवर्सिटी के बहुत-से छात्र यूनिवर्सिटी से निकल आए थे। स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली तथा ख्वाजा अब्दुलमजीद साहब ने उन्हें क्षों की छाया में चटाइयों पर बिठाकर बी० ए० और एम० ए० की क्षा देनी आरम्भ की। उन वृक्षों के नीचे ही जामिया-मिलिया-इस्ला-मिया की नींव डाली गई थी। किन्तु यह संस्था मुस्लिम यूनिवर्सिटी मुकाबले में चल न सकी और इसका अलीगढ़ में जीवित रहना असम्भव हो गया। मौलाना मुहम्मद अली ने हकीम अजमलखाँ और डा० अन्सारी साहब को लिखा और इन दोनों व्यक्तियों की सहायता यह संस्था दिल्ली में लाई गई। करौल बाग में एक मकान किराये र लिया गया। कई वर्षों तक हकीम साहब इस संस्था को अपने खर्च

इसी प्रकार 'आयुर्वैदिक एण्ड यूनानी तिब्बी कान्फ्रेंस' की स्थापना क भारतीय चिकित्सा-प्रणाली की जो रक्षा की, उसे कौन नहीं जानता ?

हकीम साहब जीवन-भर विभिन्न सामाजिक एवं राजनीति समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त रहे। उनकी ये सेवाएं, जो उन्हो वास्तव मे मसीहा बनकर की हैं, भुलाई नहीं जा सकतीं। आप व्यस् रहते हुए भी सर्वदा दीनों और अनाथों की सेवा में संलग्न रहते थे १९१८ में जब इन्फ्लुएंजा के रोग से लाखों मनुष्य प्रतिदिन मौत घाट उतर रहे थे, तब हकीम साहब ने 'अंजुमन-खुद्दाम' के नाम से ए संस्था बनाई थी, जिसमें अपने शिष्यों, हकीमों और वैद्यों के सा अपने स्वास्थ्य को भी खतरे में डालकर दिन-दिन-भर ग़रीबों बस्तियों में जा-जाकर उनकी चिकित्सा एवं सेवा-शुश्रूषा का प्रबन् किया करते थे। आपका चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान इतना बढ़ा-चढ़ा कि आपकी बातों को सुनकर सब आश्चर्यान्वित हो जाते थे। आपक सबसे बड़ी देन 'आयुर्वैदिक एण्ड यूनानी तिब्बी कालिज' है, जो केवल भारत के लिए अपितु एशिया-भर के लिए एक आदर्श संस् है। यद्यपि देश में चिकित्सा-सम्बन्धी शिक्षा देने वाली संस्थाएं जग जगह स्थापित थीं, किन्तु आयुर्वैदिक और यूनानी चिकित्सा की शिक् का एक ही जगह कोई प्रबन्ध नहीं था। उक्त कार्यालय ने इस क को पूरा कर दिया। हिन्दुस्तानी दवाखाने का सम्बन्ध भी इ कालिज से है।

हकीम साहब ने हिन्दू-मुस्लिम-एकता की हमेशा हिमायत की साम्प्रदायिक दंगों को रोकने में उन्होंने कई बार अपने जीवन तक खतरे में डाल दिया था। महात्मा गान्धी के हिन्दू-मुस्लिम-एक

ाश्यकता है। आपने कहा था—"मैं हिन्दू-मुसलमानों से सवा
ना चाहता हूँ कि झगड़ों से आपको क्या फायदा हासि
ा? मैं आप लोगों का शुक्र-गुजार होऊँगा, अगर आ
ई भी फायदा बतायें। अगर आप गौर करें तो आप
लूम होगा कि आपने झगड़ों से इखलाक व कुव्वत को सख
ासान पहुँचाया है। हिन्दू-मुसलमानों की गुज़िश्ता तवारी
हायत शानदार है। एशिया आज़ाद होना चाहता है, लेकि
प बतायें कि आपने एशिया की आजादी के लिए क्य
या? आपने इस्लाम और हिन्दू-इज्म को एक तरफ रख दिया
द रखिये, झगड़े की चीजें मज़हब से काम नहीं रखतीं
रहाल उसे भूल जाइये और आइन्दा मर्दों की भाँति ख
जाइये। बेशक फिज़ा दुरुस्त नहीं है, लेकिन खुदा के वा
ादा तूल न दीजिये। जब मुल्क की हालत बेहतर होगी, स
ज़ें बेहतर तरीके से तय हो जायंगी।" ये थे हिन्दू-मुस्लिम-एक
लिए हकीम साहब के उद्गार।

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण रखने वाले हिन्दुओं के हृदय में भी आप
तना आदर था, यह इससे भली प्रकार प्रकट होता है कि आप दि
हिन्दू-महासभा के अधिवेशन के समय स्वागत-समिति के प्रधा
ाये गए थे। समस्त मुस्लिम जाति में केवल-मात्र हकीम साहब
हिन्दू-महासभा के मंच पर आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से आने
ा प्राप्त हुआ था। यह था आपका अद्वितीय व्यक्तित्व! एक ब
ावसर में आप मुस्लिम लीग के सभापति निर्वाचित हुए। आप
ापति-पद से भाषण देते हुए आपने हिन्दू-मुस्लिम-एकता

सन् १९२२ में आगरे में साम्प्रदायिक झगड़ा हो गया। जब शान्तिप्रिय नागरिकों ने अंग्रेज अधिकारियों से प्रार्थना की तो एक अंग्रेज़ ने झल्लाकर कहा कि "अपने गान्धी को बुलाओ, वही शान्ति करेगा।" हकीम साहब ने जाकर उस झगड़े को दबाया और नगर में पूर्ण शान्ति स्थापित कर दी। तभी महात्मा जी ने यंग-इण्डिया में लिखा था—"अफसर तो मुझे बुला रहे थे, किन्तु मुझसे भी योग्य व्यक्ति वहाँ पहुँच गया।" हकीम साहब के व्यक्तित्व की महत्ता इससे भली प्रकार प्रकट हो जाती है। एक बार गान्धी जी की गिरफ्तारी पर आपने उन्हें लिखा था—"मुल्क की भलाई हिन्दू, मुसलमान और सब कौमों की एकता पर मुनहसिर है। उसकी बुनियाद कोई सियासी चाल न होकर हमारा अन्दरूनी एतकाद होना चाहिए। हालांकि ऐसे लोगों की तादाद बहुत कम है, जिनके दिल फिरकापरस्ती से खाली हैं, लेकिन फिर भी दोनों कौमों में एकता बढ़ रही है और अहले वतन उस रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं, जिससे वे जल्दी से उस मकसद को हासिल कर लेंगे। मेरे लिए उस एकता की कीमत बहुत ज्यादा है। मैं तो यह मानता हूँ कि अगर मुल्क और सब-कुछ छोड़कर इसी चीज़ को अख्त्यार कर लें, तो स्वराज्य और खिलाफत के मामले खुद-ब-खुद हल हो जायगे और मुझको इससे पूरा इतमीनान हो जायगा। दिल की सफाई और सचाई से ही उसको मजबूत और कायम किया जा सकता है। जब तक इस मुल्क वाले सच्चे दिल से मुल्क की सेवा में नहीं लगेंगे, तब तक कायम नहीं हो सकती।" इससे प्रकट होता है कि हकीम साहब के हृदय में हिन्दू-मुस्लिम-एकता का कितना मूल्य था? गान्धी जी के सिद्धान्तों पर उनका अटल विश्वास था।

साहब का स्वास्थ्य खराब होने लगा। १६२५ में आप स्वास्थ्य-सुधार के लिए यूरोप भी गये, किन्तु कोई विशेष लाभ नहीं हुआ और दिन-पर-दिन स्वास्थ्य गिरता ही गया। २८ दिसम्बर १६२७ को, जब कि वे रामपुर से वहाँ के नवाब को देखकर लौट रहे थे, सहसा हृदय की गति बन्द हो जाने से उनका देहावसान हो गया और पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में "देश का एक बड़ा सहायक उठ गया।"



: १० :

गोपाल कृष्ण गोखले

[जन्म सन् १८६६ - मृत्यु सन् १९१५]

"कांग्रेस चाहती है कि भारत का शासन भारतीयों के हितों को ध्यान में रखकर ही होना चाहिए, और समय आने पर ऐसी सरकार की स्थापना हो, जैसी ब्रिटिश साम्राज्य के स्वय शासित उपनिवेशों में विद्यमान है।"

मध्यम दर्जे का ऊँचा कद, गोरा भरा हुआ रोबीला चेहरा, गम्भीर और प्रतिभापूर्ण सुन्दर आँखें, विशाल मस्तक, सिर पर दक्षिणी ब्राह्मणों-जैसी लाल पगड़ी, बन्द गले का कोट और गले में किनारीदार दुपट्टा; यही हैं वे चिह्न, जिनका स्मरण करते ही स्वनामधन्य श्री गोपाल कृष्ण गोखले का तेजस्वी यशः शरीर सामने मुस्कराता-सा नजर आता है। श्री गोखले को एक शब्द में महान् और एक वाक्य में महान् देश-भक्त, महान् लोक-सेवक, महान् वक्ता, महान् राजनीतिज्ञ और महान् अर्थशास्त्री कहा जा सकता है। अपने समय में आप कांग्रेस के कर्णधार और भारतीय राजनीतिक संग्राम के सेनापति रहे हैं। त्याग एवं तपोमय सरल जीवन बिताते हुए



गोपालकृष्ण गोखले



साधारण परन्तु सम्भ्रान्त ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। उनके पिता कोल्हापुर के अन्तर्गत 'कंगाल' नामक गाँव के निवासी थे। पिताजी की जल्दी ही मृत्यु हो जाने के कारण उनके पालन-पोषण एवं शिक्षण का भार उनके बड़े भाई पर आ पड़ा था। महात्मा गोखले बाल्यावस्था से ही प्रतिभाशाली थे, जिसका ज्वलन्त प्रमाण यह है कि केवल उन्नीस वर्ष की अवस्था में ही बी०ए० पास करके पूना के 'न्यू इङ्गलिश् स्कूल' में अंग्रेजी साहित्य और गणित शास्त्र के अध्यापक का काम करने लगे थे। प्रोफेसरी के अतिरिक्त कालिज का प्रबन्ध करने में भी उनका बहुत-कुछ हाथ रहता था। परन्तु श्री गोखले को प्रोफेसरी ही में जीवन न बिताकर कुछ और करना था। इसलिए कुछ ही दिनों तक कालिज में रहकर उन्होंने उसे छोड़ दिया। पूना का वह 'न्यू इङ्गलिश् स्कूल' आजकल 'फर्गुसन कालिज' के नाम से विख्यात है। आपने अपने कार्य-काल में सर्वश्री चिपलूणकर, नामजोशी, आगरकर, आप्टे और तिलक के साथ अनवरत उद्योग, परिश्रम और आत्म-त्याग करके उस स्कूल को शानदार कालिज बनाने में पूरा योग दिया।

अपने अध्यापन-काल में विद्यार्थियों से आपका सम्बन्ध केवल विद्यालय के घण्टों तक ही सीमित न रहता था, प्रत्युत अन्य समय में भी आप उनके संसर्ग में रहते थे। भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं की ओर उनका ध्यान खींचने और उनमें देश-प्रेम, सेवा था त्याग की भावना पैदा करने की आप कोशिश करते थे। अपनी योग्यता एवं प्रतिभा के कारण शिक्षा-क्षेत्र में आपका लोहा माना जाता था। यही कारण था कि २७ वर्ष की अल्पायु में ही आप बम्बई-युनिवर्सिटी के 'फेलो' चुन लिये गए।

सन् १८८७ का वह दिन आपके जीवन में सबसे ...

आप पूना में ...

रचना उन्हीं के द्वारा हुई। रानाडे ने आपकी प्रतिभा, कुशाग्र बु और सेवा एवं त्याग की वृत्ति को तुरन्त भाँप लिया और आ देश-हित के कामों की ओर प्रेरित किया। रानाडे को गोखले के में एक योग्य शिष्य और एक योग्य सहायक मिला और रानाडे रूप में गोखले को मिल गया एक योग्य गुरु और अपनी योग्य प्रकट करने का उत्तम अवसर। प्रोफेसरी छोड़ने के कुछ ही क उपरान्त गोखले ने ऐसी संस्था को जन्म दिया, जो न मालूम क क अपने अस्तित्व के साथ-साथ उनकी कीर्ति-पताका को ऊँचा वि रखेगी। उस संस्था का नाम 'भारत-सेवक-समिति' (Servants India Society) है। रानाडे के सम्पर्क में आते ही उनक कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया, वहाँ आपकी कार्य-क्षमता भी क नी बढ़ गई। रानाडे की इच्छानुसार आपने उनके निकाले हु मासिक पत्र 'सुधारक' का बड़ी योग्यता के साथ सम्पादन किया न् १६०० में आप बम्बई-कौन्सिल के तथा १६०२ में बड़े लाट व न्सिल के सदस्य चुने गए। इन स्थानों मे रहकर आपने देश क । सेवा की वह किसी से छिपी नहीं। बड़ी कौंसिल में जाते ह पने जो विवेचनापूर्ण वक्तृता दी थी, उसकी प्रशंसा केवल रतवासियों ने ही नहीं, प्रत्युत अंग्रेजों ने भी बड़ नता के साथ और दिल खोलकर की थी। यदि आपको यह नना हो कि भारतीयों पर लगाये गए अनुचित टैक्सों का विरोध केन प्रबल, पाण्डित्यपूर्ण और अकाट्य युक्तियों द्वारा करते थे, तो की बजट के सम्बन्ध के दी गई वक्तृताओं को पढ़ डालिये। उनकी द-योजना इतनी सुगठित एवं वक्तृत्व-शैली इतनी विलक्षण थी कि । लाट लार्ड किचनर को ...

खले की युक्तियों का उत्तर देना अत्यन्त कठिन है।"

महारथी गोखले का हृदय दया से परिपूर्ण था। एक बार जब ड़ी व्यवस्थापिका-सभा मे विदेश मे भारतीय कुलियों को भेजने का ल उपस्थित हुआ तो उनको स्वभावतः ही उसका विरोध करना ड़ा। उस समय उनकी दशा विचित्र थी। देखने वाले कहते हैं कि हात्मा गोखले व्याख्यान देते जाते थे और रोते जाते थे। जिन दिनों ना में प्लेग का प्रकोप हुआ था, उस समय महात्मा गोखले दिन को न और रात को रात न जानकर लोगों की सेवा करते थे।

स्व० गोपाल कृष्ण गोखले पहले-पहल सन् १८८९ में कांग्रेस में ोकमान्य तिलक के साथ आये। नमक-कर पर हमला करते हुए न्होंने बहुतेरे तथ्य और आँकड़े पेश किये थे। उन्होंने बताया कि कैसे क पैसे की नमक की डली की कीमत पाँच आने हो जाती है। र भी उनमें कड़ी-से-कड़ी बात को बहुत ही मधुर-भाषा में कहने ा बड़ा गुण था। अपनी आलोचना में गोखले यद्यपि मधुर और जुल होते थे तथापि वह कहते थे बात खरी। गोल-माल बातें करन न्हें पसन्द न था "नंगे, भूखे, झुर्रियाँ पड़े हुए, ठिठुरते और कुड़ते हुए, सुबह से शाम तक दो रोटियों के लिए खेत मे कड़ी हनत करने वाले, चुप-चाप धीरज के साथ न जाने कितन ष्ट सहने वाले, अपने शासकों के पास जिनकी आवाज ज़र ी नहीं पहुँचती और ईश्वर तथा मनुष्यों के द्वारा जो कुछ ी बोझ उनकी पीठ पर लाद दिया जाता है उसे बिना चीं ापड़ किये सहने के लिए सदा तैयार किसानों के लिए" गोखले हृदय में प्रेम का स्थान था और उन्हीं के हित में वह हमेशा क

कारण जो जोर पड़ा था, वह दरअसल बहुत भारी था। बंग-भंग, कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारों में कमी करना, विश्वविद्यालय-सुधार, जिसके द्वारा कार्य की सुचारुता के नाम पर सरकारी अफसरों का नियन्त्रण कर देना और शिक्षा को खर्चीली और मंहगी बना देना, आफिशियल सिक्रेट्स एक्ट, इन सबने मिलकर लार्ड कर्जन के सत्कार्यों को भी, जैसे उनकी अकाल-सम्बन्धी नीति, शिकार के लिए सिपाहियों को पास देने सम्बन्धी नियम, प्राचीन स्मृति-रक्षा कानून, रंगून और ओगारा-प्रकरण में सजा देना, धर दबाया। गोखले को बहुत बिगड़कर कहना पड़ा था "तो अब मैं इतना ही कह सकता हूं कि लोक-हित के लिए नौकरशाही से किसी तरह के सहयोग की तमाम आशाओं को नमस्कार!" १९०५ में बनारस-कांग्रेस के सभापति की हैसियत से गोखले ने राजनीतिक शस्त्र के रूप में बहिष्कार का समर्थन किया था और कहा था कि इसका इस्तेमाल तभी करना चाहिए जब कोई चारा न रह गया हो और जब कि प्रबल लोक-भावनाएं इसके अनुकूल हों। गोखले सामने वाले के साथ बड़ी शिष्टता दिखाया करते थे; परन्तु इससे उनकी भाषा की स्पष्टता और उनके आक्रमण का जोर कम नहीं हो जाता था।

१९०५ और १९०६ दो बार तक गोखले भारत के प्रतिनिधि बनाकर इंग्लैण्ड भेजे गए थे। हाँ, १७९८ में भी वह इंग्लैण्ड जा चुके थे। जनता और सरकार दोनों के बीच गोखले की स्थिति विषम रहती थी। इधर लोग उनकी नरमी की निन्दा करते थे, उधर सरकार उनकी उग्रता को बुरा बताती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि

गई त्यों-त्यों वह शिकायतें करने लगे कि "नौकरशाही स्पष्टतः स्वार्थ-साधु और खुलम-खुल्ला राष्ट्रीय-आकांक्षाओं के विरुद्ध होती जा रही है। पहले उसका रवैया ऐसा नहीं था।" उन्हें पश्चिम का पूँजीवाद उतना नहीं अखरता था जितना जातिगत प्रभुत्व, चरित्र-नाश, द्रव्य-शोषण और भारत की बढ़ती हुई मृत्यु-संख्या।

गोखले का बहुत बड़ा रचनात्मक काम है भारत-सेवक-समिति। यह ऐसे राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं की संस्था है, जिन्होंने कि नाम-मात्र के वेतन पर मातृभूमि की सेवा करने का प्रण लिया है। उनके बाद श्रीमती एनी बेसेंट ने 'भारत के पुत्र' (Sons of India) संस्था खड़ी की और उसके बाद गान्धीजी के आश्रमवासियों और आश्रमों का नम्बर आता है। सन् १९१६ में गान्धी जी ने अहमदाबाद में सत्याग्रह-आश्रम खोला और उसके बाद १९२० से उसी नमूने पर दूसरे कई आश्रम खोले गए। वे सब आश्रम जीवन की कठोरता और साधना से 'भारत-सेवक-समिति' और 'भारत के पुत्र' से कहीं अधिक बढ़े-चढ़े हैं।

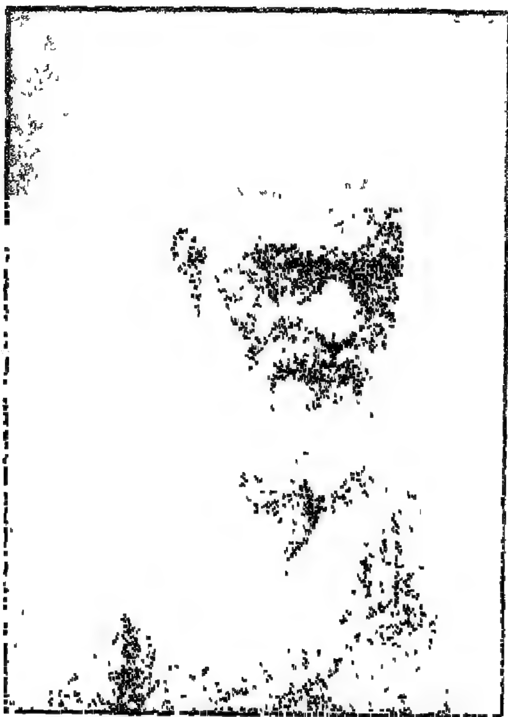
सूरत के झगड़े के बाद गोखले ने कांग्रेस के कार्य में प्रमुख भाग लिया। वह दक्षिण अफ्रीका भी गये और वहाँ गान्धीजी के सत्याग्रह-संग्राम में अपूर्व सहायता की। १९०९ की कांग्रेस में तो उन्होंने सत्याग्रह-धर्म की बड़ी प्रशंसा की थी और उसके तत्त्व को बड़ी खूबी के साथ समझाया था। उसके बाद उनकी प्रवृत्तियाँ मुख्यतः बड़ी कौन्सिलों के अखाड़े में ही होती रही हैं। १९१४ में जब कांग्रेस के दोनों दलों को मिलाने की कोशिश की गई तब पहले तो उन्होंने पसन्द किया था, परन्तु बाद को अपना विचार बदल दिया था। इस तरह उत्कट देश-भक्ति, देश के लिए कठोर परिश्रम, महान स्वार्थ-त्याग और

मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपने आस-पास एकत्र हुए सब मित्रों, अपनी बहनों और पुत्रियों से विदा लेते हुए निम्न शब्द कहे—

"इतने वर्षों तक मैंने इस दुनिया का तमाशा देखा। अब मुझे दूसरी दुनिया का तमाशा देखने के लिए विदाई दीजिए।"

महायुद्ध के बाद भारत में सुधारों के बारे में उनका मत जो 'गोखले का वसीयतनामा' कहलाता है, वह मृत्यु के केवल दो दिन पहले ही तैयार किया गया था।





विट्ठलभाई पटेल

: ११ :

विट्ठलभाई पटेल

[जन्म सन् १८६७ : मृत्यु सन् १९३३]

"इस देश का प्रत्येक ईमानदार मनुष्य यह कहने को बाध्य है कि मैं अपने देश से प्रेम करता हूँ, मैं अपनी स्वाधीनता से प्रेम करता हूँ, मैं अपनी व्यवस्था अपने-आप करने का अधिकार जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त करूँगा' यदि यह अपराध है तो मैं इस कर्तव्य से डगने की अपेक्षा फाँसी पर लटकने को तैयार हूँ।"

गठा हुआ शरीर, लम्बी सफेद दाढ़ी, घनी भौंहें, जिनके नीचे से आँखें इस तरह देखती हैं, मानो कलेजे में घुस जायंगी और भीतर जो-कुछ है उसे देखकर, समझकर, तथा उसे पहचान कर छोड़ देंगी : यह वह मनुष्य है, जिसने संसार को देखा था, जो दुनिया को पहचानता था; और पहचानकर, जरूरत के मुताबिक, अपने मनोरञ्जन के लिए, उससे काम ले लेना—खेलना चाहता था। इस खेल में आवेश नहीं था, उसमें कूटनीति के पैंतरे थे। बड़ी व्यवस्थापिका-सभा के सभापति के रूप में उन्होंने अपर्व [illegible]

ोंने व्यवस्थापिका-सभा का संचालन जिस शान से किया थ
की विदेशों तक में प्रशंसा हुई थी। एक बार ग्रेट ब्रिटेन के भूत
प्रधान मंत्री मि० बाल्डविन ने कहा थाः—"मि० पटेल व
सेम्बली का शासन देखकर लार्ड व्हिसलर की या
ती है।"

उनकी जन्म-भूमि गुजरात के पेटलाद तालुके का करमसद गाँ
विट्ठलभाई के पिता जबेरभाई की आर्थिक स्थिति साधारण
उनके यहाँ खेती होती थी और कुछ निजी जमीन भी थी। प
ाँ उनकी आर्थिक स्थिति साधारण थी वहाँ वह वीरता औ
स में बहुत बढ़े-चढ़े थे। १८५७ में जब देश में निराशा
ा को तोड़कर, हृदय के समस्त क्षोभ को लेकर विद्रोह क
डव प्रारम्भ हुआ तो जबेरभाई खेतों की हरियाली और कृषक
ान की मस्ती को भूलने लगे। कुदाल, फावड़े, और हल उन्हें बे-जा
ालूम हुए। फलतः ३ साल तक उनका पता न चला। पी
ूम हुआ कि भारतीय इतिहास की अमर विभूति वीरांगना लक्ष्म
के बुन्देलों के साथ शामिल होकर उस विद्रोह में वह अप
सा अदा कर रहे थे। इस वीरता और साहस के साथ उन
र-भक्ति और श्रद्धा भी बहुत थी और संयमपूर्ण जीवन के कार
का स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा था।

श्री विट्ठलभाई पटेल जन्म-जात सिपाही थे। उनकी रग-रग
नीतिक योद्धा और सेनापति के गुण भरे थे। विट्ठलभाई औ
लभभाई दोनों ने कानून का अध्ययन करके प्रैक्टिस शुरू की—

कहीं एक पत्र इनके बड़े भाई—विट्ठलभाई—के हाथ लग गया। अंग्रेजी में दोनों का नाम वी० जे० पटेल होने के कारण यह गड़बड़ी हुई। बड़े भाई ने उन्हें समझाया कि "मैं तुमसे बड़ा हूँ, पहले मुझे इंगलैण्ड जाने दो। मेरे वापिस आने पर तुम चले जाना।" उन्होंने स्वीकार कर लिया और इस बातचीत के १४ दिन बाद ही विट्ठलभाई इंगलैण्ड चले गए। तीन वर्ष बाद वह बैरिस्टरी की परीक्षा पास करके लौट आये। इंगलैण्ड से लौटने पर विट्ठलभाई की बैरिस्टरी खूब चली।

विट्ठलभाई ने 'मार्ले मिण्टो रिफार्म' के अनुसार बनी हुई बम्बई की प्रान्तीय कौंसिल में प्रवेश करके अपने सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश किया। बहुत दिनों तक वे 'बम्बई म्युनिसिपैलिटी' के चेयरमैन रहे और १९१६ में बम्बई में होने वाली कांग्रेस के विशेषाधिवेशन के स्वागताध्यक्ष नियत हुए और बाद में अ० भा० कांग्रेस-कमेटी के मन्त्री भी रहे। अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ में ही उन्हें सफलता मिली। परिणाम स्वरूप बहुत शीघ्र ही वे देहली की 'इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिल' के मेम्बर चुने गए। सामाजिक सुधारों के सम्बन्ध में श्री पटेल ने 'अन्तर्जातीय विवाह बिल' पेश किया था। जिससे देश के प्रत्येक क्षेत्र में, काश्मीर से कन्याकुमारी तक बड़ी ही हलचल मची। घोर प्रतिक्रिया से सारा वातावरण छाता सा नजर आने लगा। उसके थोड़े दिनों बाद वे उस कौंसिल के सभापति बन गए।

विट्ठलभाई का सारा जीवन केवल एक शब्द में बताया जा सकता है। वह है 'संग्राम'। हिन्दुस्तान की आजादी के वीर सिपाही की

रशाही के चक्रव्यूह में घुसकर उसके अगणित दाव-पेचों को ं करते, बन्धनों को तोड़ते और माया-जाल को अपने कटु व्यंगों छिन्न-भिन्न करते घूमते दिखाई देते थे। असेम्बली के प्रेजीडेण्ट कुर्सी पर बैठकर वे निस्पृहता पूर्वक अपनी निष्पक्षता और म्बली की मर्यादा की रक्षा के लिए पूर्णतः सचेष्ट थे।

उनका वह जीवन कितना निर्भीक था। अध्यक्ष के आसन पर हुए वे कभी प्रधान सेनापति को फटकारते थे, कभी बारडोली याग्रह-फण्ड में चन्दा देते थे, कभी राष्ट्रीय महासभा के अधि ान में उपस्थित हो जाते थे। और इसके साथ ही वे 'ह यल हाईनेस रानी मेरी, से भी हाथ मिला लेते थे। अंग्रे ब्ध थे, और भारतीय आश्चर्य-चकित। यदि वे चाहते तो बहु सानी से 'वायसराय की कौंसिल' में स्थान पा सकते थे। के. सी आई का रिबन मानो अपने सारे आकर्षणों के साथ उन मने झूल रहा था, और "कौन जाने किसी खतरे के समय किस न्त की गवर्नरी भी उनके लिए सम्भवनीय और सुल ोती।" पर यह सब सुख-सुविधा के साधन और शक्ति के प्रलोभ अपने सामने पाकर भी वे उन पर व्यंग की हँसी हँसते थे। जै बिलकुल ही तुच्छ नगण्य हों। इस प्रलोभन की आग में तपक ह खरे सोने की तरह निकले। जब और लोग ऐसी जगहों हुँचकर अपना आरम्भिक स्वप्न भूल जाते हैं, तब उनकी आर ढ़ और निर्लिप्त रही। एक लेखक के शब्दों में उस समय "विट्ठलभ वराजी न रहकर भी देशभक्त बने रहे, दलबन्दी में

[illegible] ।"

करते जाते थे और जिसमें बात-बात में मीन-मेख निकाली जाती थी। ऐसी असेम्बली में रोब, शान और इज्जत के साथ सभापति के काम को करना कोई आसान बात नहीं थी। असेम्बली में हिन्दुस्तानी भी मेम्बर थे और अंग्रेज भी। अंग्रेज मेम्बर ऐसे अवसर की ताक में रहते थे कि पटेल को पटकें और हिन्दुस्तानियों के बारे में यह जाहिर करें कि यह लोग पार्लमेण्टरी राज्य अथवा स्वराज्य के काबिल नहीं हैं। सभापति पटेल एक अनुभवी राजनीतिज्ञ तथा विचारशील पुरुष थे। उनको र करना या नीचा दिखलाना कोई हँसी-खेल नहीं था। जब-जब ऐसे मौके आए, तब-तब उनके विरोधियों को मुँह की खानी पड़ी। यह पद उनके लिए देश-सेवा का एक-मात्र साधन था। इसलिए वे असेम्बली का काम बड़ी सतर्कता, निर्भयता, साहस और निष्पक्षता पूर्वक करते थे। उनकी निष्पक्षता से सरकार और सरकारी कर्मचारियों का नाकों दम था। जब १९०७ में लाला लाजपतराय के देश-निकाले के सवाल पर ब्रिटिश पार्लमेण्ट में एक मेम्बर ने बड़बड़ाते हुए यह कहा था, "उसे गोली से क्यों न मार दिया जाय" तब संयोग से एक मेम्बर इन शब्दों को पार्लमेण्ट के नोटिस में ले आया। ऐसे अनुचित शब्दों के प्रयोग करने पर जब उस मेम्बर से पटेल ने पूछा कि ये अनुचित शब्द क्यों कहे गए तब उसने उत्तर दिया :—

"मैं तो अपने-आप ही से कह रहा था।"

असेम्बली के सभापतित्व-काल में उनकी हाज़िर-जवाबी बड़ी ही चुटीली होती थी। वे कभी भी उत्तर देने में चूके नहीं। एक बार गुजरात की राजनीतिक परिषद् गोधरा में हो रही थी। महात्मा गान्धी

बात महात्मा जी ने यही कही कि मैं अभी विट्ठलभाई के हृदय को टटोल रहा था। किन्तु पटेल साहब ने तत्काल उत्तर दिया—'आप उसका पता नहीं पा सकते।'

एक बार एक पत्र-प्रतिनिधि ने विट्ठलभाई से पूछा—'मि० पटेल, आपकी उम्र इस समय कितनी होगी ?'

उन्होंने तत्काल उत्तर दिया—'शायद मेरे पिता तुम्हें बता सकेंगे।'

'ओह' कहकर उसने आश्चर्य प्रकट किया।

विट्ठलभाई ने पूछा—'क्या आप उनसे पूछना चाहते हैं ?'

उसने भी विनोद समझकर उत्तर दिया—'यदि आप कृपा करें।

विट्ठलभाई ने 'अच्छा तो वहाँ जाइये !' कहकर आसमान की ओर उँगली दिखाई।

पत्र-प्रतिनिधि खिलखिलाकर हँस पड़ा।

उनके जीवन में शुष्कता, कठोरता, निर्भीकता के साथ-साथ हास्य एवं व्यंग का भी अद्भुत सम्मिश्रण था। यदि ऐसा न होता तो वे असेम्बली के सभापतित्व का शुष्क एवं दुरूह काम कभी भी सफलतापूर्वक नहीं चला पाते। इसके अलावा अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उनमें युवकों का-सा उत्साह तथा साहस ज्यों-का-त्यों बना था।

असेम्बली के वाद-विवादों में उनके तीखे व्यंगों और चुटीले आक्रमणों से सरकारी पक्ष वालों के छक्के छूट जाते थे। सरकारी पक्ष के एक उच्च पदाधिकारी ने तो उन्हें 'कटुभाषी' और 'बहुत बोलने वाला' (TALKOTIVE) कहा था। विट्ठलभाई ने जिस

यहाँ तक कह डाला था : He Is Impartially Unfair, उनका बर्ताव पक्षपात-रहित रूप से सभी के लिए अन्यायपूर्ण ।" असेम्बली में उन्होंने पब्लिक सेफ्टी बिल, असेम्बली बम केस रिजर्व बैंक बिल पर कई दिनों तक बड़ी जोरदार बहस की थी ।

सन् १९२७ में एक दिन लन्दनवासियों ने आश्चर्य से देखा कि सफेद 'राजद्रोही टोपी' से ढकी हुई एक सफेद दाढ़ी कुछ अजीब ल से 'बकिंघम पैलेस' की सीढ़ियों पर चढ़ रही है । इस दाढ़ी ने जमहल में प्रवेश करके "हिज मैजेस्टी किंग जार्ज दि फिफ्थ, किंग आफ ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैण्ड एण्ड डोमीनियन्स बियाण्ड दि सीज़ एण्ड एम्परर् आफ इण्डिया' से भेंट की, और इस बातचीत सम्राट् महोदय को बताया कि "कांग्रेस की आवाज समस्त भारत की आवाज है । अगर ग्रेट ब्रिटेन भारत में सद्भाव बनाये रखना चाहता है, तो उसे कांग्रेस को सन्तुष्ट करना चाहिए ।" राजद्रोही गान्धी-टोपी में सम्राट् से भेंट करने वाली यह दाढ़ी भारतीय पार्लमेण्ट (लेजिस्लेटिव असेम्बली) के सभापति थे विट्ठलभाई पटेल की थी ।

जब पार्लमेण्ट में रहते हुए उन्होंने देश की और भी अधिक सेवा करने की आवश्यकता समझी तो एकाएक १९३० में उन्होंने उस उच्च पद से त्याग-पत्र दे दिया और सर्व साधारण में पहले-जैसे फिर मिल गए । उन्होंने देश की आत्मा की पुकार सुनी थी, उसको समझा था, उसकी ही सहायता को वे सभापतित्व की कुर्सी को छोड़कर आ । महात्मा गान्धी से मतभेद रखने पर भी उन्होंने उनका साथ दिया और 'पेशावर-जाँच-कमेटी' के सभापति नियुक्त होकर उसकी जाँच क

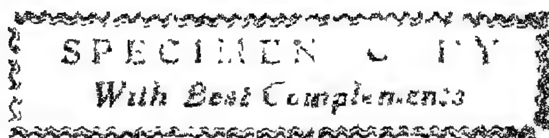
जाना पड़ा। उनका रोग-ग्रस्त शरीर भारत से दूर था, परन्तु उनका हृदय यहीं रह गया था। शारीरिक यातना जब पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी, तब भी वे विदेशों में भारत की मान-रक्षा के लिए अपनी बची-खुची शक्ति को व्यय करते रहे और एक प्रकार से यही उनके अन्त समय को निकट ले आया। परिणाम-स्वरूप जिनेवा में २२ अक्तूबर १९३३ को उनका स्वर्गवास हो गया। विट्ठलभाई के रूप में देश का एक श्रेष्ठ नेता, राजनीति का एक सर्वोत्कृष्ट पण्डित, मनुष्यता का एक उच्चतम आदर्श और भारत माता के मुकुट का एक अत्यन्त प्रकाशमान रत्न तिरोहित हो गया। उनका जीवन देश और मनुष्य की सेवा, तथा अन्याय से युद्ध करना था। अब तक दम-में-दम रहा वे वीरता के साथ जीवन व्यतीत करते रहे।

कूटनीतिज्ञ का सबसे बड़ा अस्त्र उसकी दूरदर्शिता है। विट्ठल-भाई को, मानवी स्वभाव का जो गूढ़ ज्ञान था, उसी ने उनको इतना शक्तिमान बनाया। उनके पास केवल ऊपर-ही-ऊपर देखने वाली आँखें नहीं थी, बल्कि भीतर घुसकर देखने वाली आँखें थीं। अपने सभा-पतित्व से त्याग-पत्र देते हुए २१ जनवरी १९३० को उन्होंने कहा था :—"मैं समझता हूँ कि कठिनाइयों के होते हुए भी मुझे इस नौकरशाही के विरुद्ध अपने पद का गौरव और असेम्बली की मर्यादा की रक्षा करने में पर्याप्त सफलता मिली है। मुझे इस बात का सन्तोष है कि जनता का मुझ पर विश्वास है।······ मेरी समझ में अब उपयुक्त समय आ गया है। संसार के सबसे बड़े महापुरुष ने भारतीय कांग्रेस की अधीनता में 'सविनय-अवज्ञा आन्दोलन' छेड़ दिया है, और उसकी बदौलत आज हजारों आदमी सरकारी जेलों के ······ मैं

लिए उचित स्थान इस असेम्बली कुर्सी पर नहीं, प्रत्युत देशवासियों के बीच में है।"

असेम्बली छोड़ने के बाद उन्होंने जो-कुछ किया उसका उल्लेख हम ऊपर की पंक्तियों में कर चुके हैं। फिर भी हम इतना तो कह सकते हैं कि वे भावावेश के भूखे नहीं थे। अमेरिका में, आयरलैण्ड में, वियना में सर्वत्र उनकी वही कूटनीति चली। विलायत में पार्लमैण्ट का सभापति (स्पीकर) जब अवकाश ग्रहण करता है, तो उसे लार्ड की पदवी और पेन्शन मिलती है। असेम्बली के सभापति-पद से स्तीफा देने बाद जब उन्हें सजा हुई, तब उन्होंने कहा था—"मुझे भी पीयरेज (लार्ड की पदवी) और पेन्शन मिल गई।"





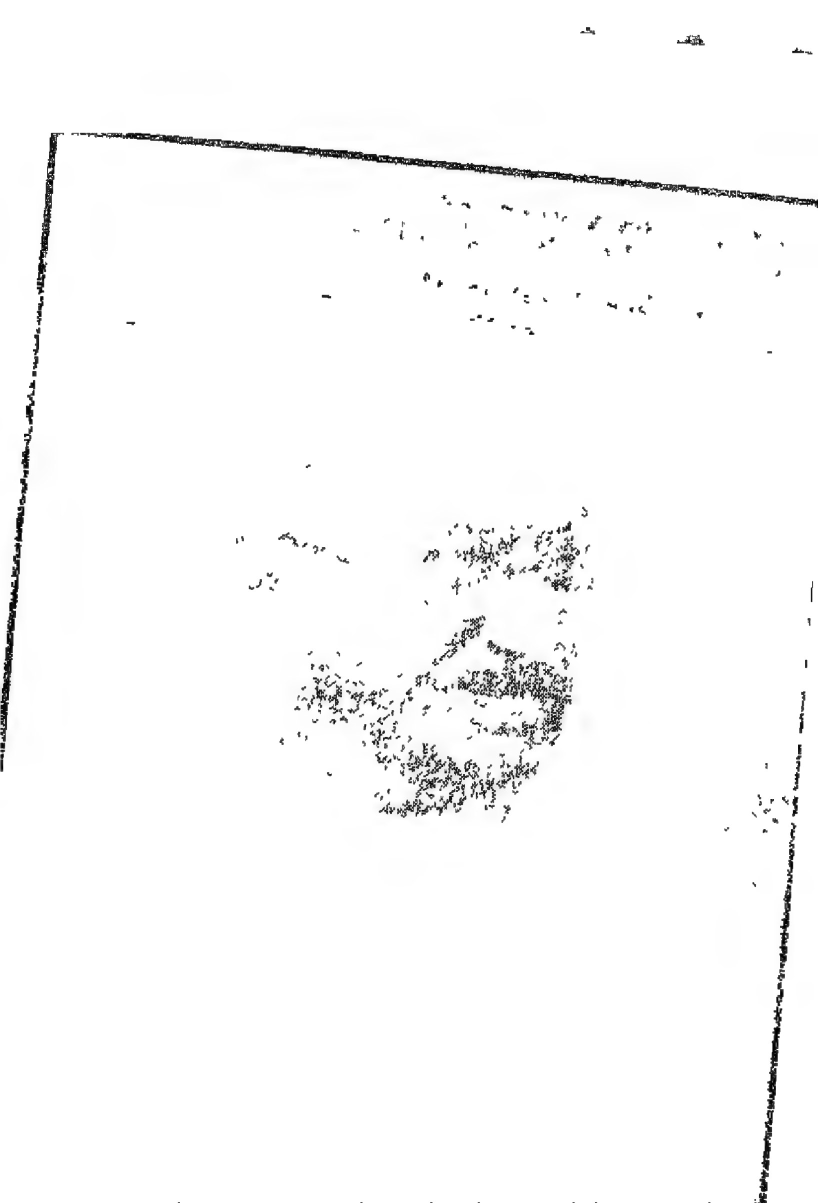
: १२ :

राष्ट्र-पिता गान्धी

[जन्म सन् १८६९ : मृत्यु सन् १९४८]

"अहिंसा कायरों का भरोसा नहीं, वीर हृदय की प्राण-वायु है। हिंसा की चमक से जो चौंधिया नहीं गए हैं, वे अहिंसा की शक्ति जीवन के क्षण-क्षण में पायेंगे। अहिंसा व्यक्ति और समाज, सब का एक-सा बल और जीवन है। वह युद्ध-जनित आपदाओं का एक-मात्र उपचार है; निराधार अधिकारहीन की सत्व सिद्धि का एक-मात्र साधन है। मेरा जीवन तो तब ही सफल होगा, जब मैं अहिंसा का अर्थ घट-घट में बिठा सकूँ।"

आयत ललाट पर त्रिबली रेखाएं, प्रभावशाली आँखों पर सफेद चश्मा, घुटा हुआ सुचिक्कण सिर, वृत्ताकार मुख, हल्की मूँछें, मनोमोहक चिबुक, कुछ मोटे ओठ, वर्तुल नासिका, मनस्विता-व्यञ्जक श्रोत्र-युगल—इन रेखाओं से जिस महापुरुष का मुखचित्र बनता है, वह भारतीय प्रतिभा का सच्चा प्रतीक, सत्याग्रह, अहिंसा, अपरिग्रह, गो-रक्षा, क्षमा, हरिजनोत्थान एवं राष्ट्रीय चेतना का अग्रदूत तथा मानवता एवं विश्वमैत्री का युग-प्रतिनिधि मो——





पीढ़ियाँ यह कठिनाई से विश्वास करें कि इस प्रकार का कोई रक्त-मांस वाला पुरुष धरती पर उत्पन्न हुआ होगा।" उन्होंने एक विशाल राष्ट्र का उत्थान करने में, उसे गौरवान्वित करने में, उसमें स्वाभिमान भरने में, उसका स्वाधीनता के संग्राम में सफलता पूर्वक नेतृत्व करने में और उसे स्वाधीनता के द्वार तक पहुँचाने में अपना सारा जीवन, अपनी सारी साधना, अपनी सारी शक्ति अर्पित कर दी। भावना, ज्ञान और कर्म का यह समन्वय ऐसे महान् व्यक्तियों का ही आश्रय खोजता है। मस्तिष्क, हृदय और आत्मा तीनों का ऐसा सामञ्जस्य अन्यत्र दुर्लभ ही होता है। ऐसी अविचल दृढ़ता ही किसी राष्ट्र के महान् नेता का अपरिहार्य गुण होती है। पशु-बल के विरोध में अहिंसा का सफल प्रयोग ऐसे ही कर्मठ हाथों द्वारा संभव होता है। सेवा और निष्काम कर्म की ऐसी साधनाएं ही किसी को सच्चा महापुरुष बना सकती हैं।

आश्विन कृष्णा १२, संवत् १९२९ (२ अक्तूबर, १८६९ ई०) को पोरबन्दर (काठियावाड़) के एक वैश्य कुल में महात्मा गान्धी का जन्म हुआ। पिता राजकोट में दीवान थे। उनकी माँ पवित्रता एवं सादगी की मूर्ति थीं। बचपन में सत्यप्रियता का एक विशिष्ट गुण बालक मोहनदास के जीवन में ओत-प्रोत हो रहा था। यही सत्यनिष्ठा 'सत्याग्रह' की जननी बनी। बालक मोहनदास में और कोई ऐसा विशेष गुण न था कि उनको विशेष प्रतिभापूर्ण बालक कहा जा सकता, अथवा यही अनुमान लगाया जा सकता कि वे आगे चलकर एक महापुरुष बन सकेंगे। अपने बचपन की छिपकर मांस खाने-जैसी दुर्बलताओं को स्वीकार कर उन्होंने अपनी सत्यनिष्ठा ...

कोई विशेष पीछे रहने वाले छात्रों में भी न थी। बैरिस्टरी पास करने के लिए विलायत जाने का निश्चय किया। धर्मनिष्ठ माँ ने मद्य-पान, मांस-भक्षण और पर-स्त्री-गमन न करने की प्रतिज्ञाएं कराकर उनको विदेश जाने की अनुमति दे दी। विदेशी वातावरण ने जहाँ किशोर-गान्धी को टाई बाँधने के लिए घण्टों दर्पण के सम्मुख खड़ा रखा, गाना-नाचना सीखने में समय विनष्ट करवाया एवं ऐसे ही अन्य शिष्टाचारों के पालन के लिए उनको बाधित किया, वहाँ वे अन्य बुराइयों से बाल-बाल बचे रहे और माँ के सम्मुख की गई प्रतिज्ञाओं का उन्होंने दृढ़ता-पूर्वक पालन किया।

महात्मा गान्धी एक कुशल व्याख्याता नहीं थे, इसका पता उसी दिन चल गया जब बैरिस्टरी पास करके स्वदेश आने के बाद वे एक अदालत में खड़े हुए और उनको चक्कर आ गया। एक लज्जालुता-एक छिपने की भावना न जाने कैसे अब तक उनके हृदय में अवशिष्ट रह गई थी। इसी कारण एकाध अपमान उनको पुनः सहन करने पड़े। आत्म-चिन्तन ने उनको कुछ सजग किया। १८९३ में एक अभियोग के संबंध में दक्षिण अफ्रीका जाकर वहाँ के भारतीयों पर होने वाले अनाचारों को देखकर युवक गान्धी द्रवित हुए बिना न रह सके। वे स्वयं नाना प्रकार के अपमानों के भाजन बने। इन नये अनुभवों ने उनको इन अपमानों का प्रतिकार करने की प्रेरणा दी। बैरिस्टर गान्धी दलित एवं अपमानित भारतीयों के नेता के रूप में दृष्टिगोचर हुए। रस्किन एवं टालस्टाय ने उनको अहिंसा-त्मक प्रतिशोध करने की प्रेरणा दी। शान्तिपूर्ण वैध सत्याग्रह

स्थापना हुई। उनकी तपस्या एवं साधना ने अन्त में सुन्दर फूल
भी दिए। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दम, तप, अस्तेय, सत्य ए
रिग्रह-जैसे गुणों ने उनको प्रसिद्धि के प्रस्तार में पर्याप्त सहायत
बाई।

परन्तु अफ्रीका में सत्याग्रह की आविर्भूति एवं विजय
तीय राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गान्धी के नेतृत्व की भूमिक
ा थी। अफ्रीका का विजयी महात्मा गान्धी स्वदेश लौट आया
माान्य गोखले स्वदेश की परिस्थितियों एवं राजनीतिक गुत्थि
देग्दर्शन में उनके 'गुरु' बने। उनकी प्रेरणा से महात्मा गान्धी
ेश-पर्यटन किया। समग्र परिस्थितियों का सूक्ष्म अध्ययन किया
रमती आश्रम को जन्म देने के पश्चात् वे स्वदेशी के रचनात्मक निर्देश
नहीं बने, प्रत्युत क्रमश: भारतीय राजनीति के भी निकट आ
। फिर भी एकाएक राजनीतिक क्षेत्र में कूदकर सत्याग्रह अस्त्र क
ोग करना गान्धी जी ने ही प्रारम्भ कर दिया। उनके भारत
ामन के साथ-ही-साथ प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। अ
महात्मा गान्धी अंग्रेजों की न्यायप्रियता के भक्त थे। युद्ध
-धन प्रत्येक प्रकार से ब्रिटिश सरकार की सहायता करना
ोंने देश के लिए श्रेयस्कर समझा था। उनका कथन था कि भार
स्वाधीनता फ्रांस के रणक्षेत्रों में पड़ी है। पर युद्ध समाप्त होते
धोखे की टट्टी स्पष्ट रूप में सामने आ गई। गान्धी जी को अप
ाओं का विकृत रूप जलियान वाला बाग में देखने को मिला
भारत द्वारा दी गई युद्ध-सहायता का प्रतिकार था। दमन-च
। भी उग्र रूप में चल रहा था।

भी असन्तुष्ट बना दिया था। भारतीय मुसलमान भी प्रतिशोध के लिए व्यग्र हो उठे थे। इन समग्र भावनाओं को एक राष्ट्रीय आन्दोलन में केन्द्रित करने में महात्मा गान्धी ने महान् योगदान दिया। वे खिलाफत-आन्दोलन के नेता बने। असहयोग-आन्दोलन का एक-मात्र लक्ष्य अब स्वराज्य-प्राप्ति हो गया।

विदेशी का बहिष्कार और स्वदेशी-प्रचार इस आन्दोलन के प्रधान अंग थे। तत्कालीन सरकारी अर्थनीति को दृष्टिगोचर करते हुए यह स्वीकार करना पड़ता है कि यह बहिष्कार ब्रिटिश-शासन की नींव तक को हिला सकने में समर्थ था। उधर दूसरी ओर वकील, विद्यार्थी और सरकारी कर्मचारी सब-कुछ छोड़ राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद रहे थे और इस प्रकार ब्रिटिश नीति, शिक्षा एवं शासन के विरोध में एक प्रमाण उपस्थित कर रहे थे। न्यायालयों में बयान न देकर ब्रिटिश न्याय की खिल्लियाँ उड़ाई जाती थीं। सरकार परेशान थी कि वह इस आन्दोलन को दबाने के लिए क्या करे? इस समग्र आन्दोलन की मूल प्रेरणा में यदि कोई एक व्यक्ति था तो वह थे 'महात्मा गान्धी'।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९२०—२१ तक भारतीय राजनीतिक जगत् में महात्मा गान्धी की आँधी आ चुकी थी। इसके पूर्व भी महात्मा गान्धी अपने 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' के यशस्वी सम्पादक एवं लेखक के रूप में यश प्राप्त कर चुके थे। कुछ ही समय में गान्धी जी का प्रभाव कांग्रेस पर छा गया। अहमदाबाद-कांग्रेस और पूर्ण स्वराज्य के लिए सत्याग्रह-आन्दोलन अगले कदम थे। इसी सत्याग्रह के सम्बन्ध में चौरी चौरा में कुछ सत्याग्रहियों ने पुलिस-अधिकारियों को पीटा। ऐसी घटनाओं की सम्भावनाएं

पने ऊपर ले लिया। जज भी फैसला लिखते समय महात्मा गान्धी
निराले व्यक्तित्व की प्रशंसा किये बिना न रह सका।

परन्तु बीमारी के कारण सरकार ने महात्मा जी को दो वर्ष बाद
ो छोड़ दिया। देश का वातावरण साम्प्रदायिक संकीर्णता के विष के
ारण अत्यन्त विषाक्त हो रहा था। महात्मा गान्धी ने २१ दिन का
पवास किया। महात्मा गान्धी के जीवन में इन उपवासों का अत्यन्त
हत्त्व रहा है। अपना दोष विदित होने पर आत्म-शुद्धि के लिए
ाथवा अपने साथियों एवं अनुगामियों के दोषों के लिए अपने को
त्तरदायी मानकर अथवा कभी-कभी किसी विशेष उद्देश्य को सामने
खकर महात्मा गान्धी ने अनेक ऐतिहासिक उपवास किये हैं। यहाँ तक
के उपवास भी गान्धी-युग की ही एक देन हो गया है और सत्याग्रह
प्रथवा वैध विरोध प्रदर्शन का एक अपरिहार्य अंग हो गया है।

परन्तु दंगे न रुक सके। महात्मा गान्धी १९२९ तक खादी-प्रचार,
ारिजनोद्धार एवं अन्य रचनात्मक कार्यों में व्यस्त रहे। सन् १९२९
में लाहौर-कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को अपना ध्येय माना।
ुनः आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। कानून तोड़ना और जेल जाना
एक पुनीत कर्त्तव्य समझा जाने लगा। महात्मा गान्धी ने 'नमक-
सत्याग्रह' का नेतृत्व किया। वह दण्डी-यात्रा एक ऐतिहासिक घटन
बन गई है। कितनी भावना भर गई थी उस समय लोगों में। जगह
जगह नमक बनाकर कानून तोड़ा गया। फिर जेलें भरी जाने लगीं
परन्तु अन्त में सरकार को घुटने टेकने पड़े। गान्धी-इरविन-समझौते
के अनुसार अस्थायी सन्धि हो गई।

ही पकड़ लिया गया। पुनः राजनीतिक क्षितिज पर अशान्ति एवं असहयोग के बादल छा गए।

जेल से छूटने के बाद महात्मा गान्धी कांग्रेस से अलग हो गए; परन्तु कांग्रेसी नेता समयानुसार गान्धी जी से सहायता ले लिया करते थे। ऐसा कई बार हुआ है कि महात्मा गान्धी कांग्रेस से अलग हो गए; परन्तु वे सदैव कांग्रेस को प्रेरणा देते रहे थे एवं उसके सच्चे दिग्दर्शक रहे थे।

गान्धी जी की अनुमति से ही कांग्रेस ने नये विधान के अन्तर्गत प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल बनाने का निश्चय कर लिया। इन कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों ने अपने कार्य-काल में गान्धीजी के सिद्धान्तों को सदैव अपना आदर्श रखा। दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ होते ही कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की युद्ध-नीति का विवरण माँगा एवं भारत तथा अन्य पराधीन राष्ट्रों को स्वाधीन कराने के पुनीत उद्देश्य के लिए प्रत्येक प्रकार से उनकी सहायता करने का वचन दिया। परन्तु वहाँ तो बात ही उलटी थी। ब्रिटिश सरकार का युद्धोद्देश्य तो साम्राज्य को अक्षुण्ण रखना था। अन्ततोगत्वा कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों ने अपने त्याग-पत्र दे दिए।

पुनः महात्मा गान्धी ने राष्ट्रीय आन्दोलनों की बागडोर सँभाली। एक बार पुनः उनकी प्रेरणा से नवचेतना का उदय हुआ। गान्धीजी के प्रसिद्ध व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन की परीक्षा का भी यही काल था। पुनः सत्याग्रहियों को कैद कर जेलें भर दी गईं। सरकार सभी प्रकार से आन्दोलनों को कुचल डालने के लिए कटिबद्ध हो गई थी। महायुद्ध अपने यौवन पर था और [illegible]

सर स्टैफर्ड क्रिप्स आए, परन्तु उन झूठे और कोरे वादों के भ्रम में आ जाने के दिन जा चुके थे।

एक बार महात्मा गान्धी के नेतृत्व में उग्र रूप से विशाल आन्दोलन करने के लिए देश तैयार हो चुका था। गान्धी जी ने 'भारत-छोड़ो' का नाद मुखरित किया। बंबई-कांग्रेस की छाया में गान्धीजी को सामूहिक रूप से सत्याग्रह करने का अधिकार दिया गया। परन्तु सरकार तो आवश्यकता से अधिक सतर्क थी। प्रस्ताव भली प्रकार से पास भी न हो पाया था कि महात्मा गान्धी तथा अन्य प्रमुख नेता और कार्यकर्त्ता जेल में ठूँस दिये गए।

राष्ट्र ने इस अपमान का बदला लिया। स्थान-स्थान पर भीषण आन्दोलन हुए। अगस्त' ४२ के इस विद्रोह का महत्त्व भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में कम नहीं है। सन् १९४३ के आरम्भ में महात्मा गान्धी ने आत्म-शुद्धि के लिए २१ दिन का प्रसिद्ध उपवास किया। देश में खलबली मची। गान्धी जी का जीवन संकट में पड़ गया। परन्तु सरकार ने उनको न छोड़ा। अन्त में वे इस परीक्षा में सफल हो गए। इन नजरबन्दी के दिनों मे महात्मा गान्धी को अपनी धर्मपत्नी कस्तूरबा एवं विश्वस्त प्राइवेट सेक्रेटरी महादेव देसाई के वियोग का महान् दुःख सहना पड़ा। दोनों की मृत्यु उसी कारागार में हो गई।

अन्त में सरकार ने मई' ४४ में गान्धी जी को बिना शर्त मुक्त कर दिया। शिमला-सम्मेलन बुलाया गया। महात्मा गान्धी देश के अन्य राजनीतिज्ञों के साथ विकट राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाने में लग गए। ब्रिटिश सरकार तो अपने ...

ान के आगमन से अन्तःकालीन सरकार की स्थापना तक जित
ष्टयाँ हुईं महात्मा गान्धी सबकी मूल प्रेरणा में रहे। अन्त
स्वाधीन हुआ। स्वाधीनता का वह रूप तो न था, जो महात्म
धी चाहते थे। परन्तु देश की अवस्था को ध्यान में रखते हु
त्मा गान्धी ने भी देश के बँटवारे के लिए अपनी सम्मति दे दी।

साम्प्रदायिक वातावरण उग्र रूप से विषाक्त हुआ। देश विभाज
सिद्धान्त को मान लेना ही संभवतः इन उपद्रवों के परिवर्द्धन
ण बना। पूर्वी बंगाल एवं बिहार के दंगों ने तत्कालीन तनाव
वातावरण का स्पष्ट चित्र उपस्थित कर दिया। परन्तु महात्म
धी सम्मेलन के प्रयत्नों में पीछे न रुके। नोआखाली में गाँव-गाँ
यात्रा उनके जीवन के एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठ का चित्र है। कलक
उनके लघु उपवास ने जादू का-सा प्रभाव दिखलाया और साम्
यिक उपद्रव बन्द हो गए। दिल्ली में भी उन्होंने जनता की साम्प्रदा
वार-धाराओं को बदलने के लिए उपवास किया। कौन जानता
यह उनका अन्तिम महान् कार्य होगा। ३० जनवरी १९४८
वे अपनी सन्ध्याकालीन प्रार्थना में भाग लेने के लिए प्रार्थना-मं
ओर जा रहे थे, एक मराठा युवक ने उनकी हत्या कर दी। कौ
नता था कि राष्ट्र-पिता विश्ववन्द्य बापू का अन्त इस प्रकार होगा
में शोक के काले बादल छा गए। उनके मृत्यु-संवाद को सुन
ग रो पड़े और मूर्छित हो गए। विदेशों से भी अनेकों शोक-संवा
ए। दिल्ली में ही राजघाट में जमुना के किनारे दूसरे दिन उन
ता जला दी गई। तेरहवें दिन उनकी अस्थियाँ एवं भस्म त्रिवे

क्या संसार में अनेकों राजनीतिक महापुरुषों ने जन्म लिया है परन्तु जो प्रेरणा महात्मा गान्धी में है, अन्यत्र दुर्लभ ही है। जान गुन्थर ने कहा है कि "महात्मा गान्धी से अधिक दुरूह जटिल एवं विरोधी चरित्र की सहज मे कल्पना नहीं की जा सकती। सन्त एवं राज-नीतिज्ञ का यह समन्वय सहज बोधगम्य नहीं।" अहिंसा का यह पुजारी जब महायुद्ध मे ब्रिटिश सरकार की सहायता करता है तो लोग चकरा जाते हैं। कांग्रेस के प्राण होते हुए भी वे उसके सदस्य तक न थे। जैसा लुई फिशर ने 'एक महान् चुनौती' में पं० नेहरू द्वारा गान्धी जी के बारे में कहलवाया है "महात्मा गान्धी में डिक्टेटरशिप का भी पुट था, परन्तु उनके शासन में प्रेम का राज्य था।" उनकी सन्ध्या-प्रार्थना सभी धर्मों की प्रार्थनाओं का संकलन थी। सोमवार उनके मौन का दिन था। हँसी-विनोद के प्रेमी होते हुए भी वे अत्यन्त गम्भीर प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वर्तमान चिकित्सा से उन्होंने यद्यपि लाभ उठाए थे, परन्तु वे उसके प्रति श्रद्धालु न थे। उनमें दार्शनिक की सादगी थी। राजनीतिक का वाक्य-कौशल था। उनके चरित्र में वे गुण थे जिनका वर्णन करते-करते अलेखक भी लेखक और अकवि भी सुकवि बन गए हैं।



: १३ :

राष्ट्र-माता कस्तूरबा

[जन्म सन् १८६६ : मृत्यु सन १९४४]

"सफलता पाना हमारे हाथ की बात है। अगर हम असफल हुए तो इसमें दोष हमारा ही होगा। उमड़ते हुए जोश के समय तो सभी कोई साथ देता है, लेकिन जोश उतरने के बाद भी जो टिके रहते हैं, वे पक्के हैं।"

भारतीय नारीत्व के महान् आदर्शों से अलंकृत तेजपूर्ण मुखड़ा, दृढ़ता वर्द्धक ठुड्डी, दीर्घ नासिका, चौड़ा ललाट और विशाल नेत्रों वाली पवित्रता की पावन प्रतिमा राष्ट्र-माता कस्तूरबा के दर्शन करके कौन ऐसा भारतीय होगा, जिसने अपने जीवन को धन्य न समझा हो ? भारतीय नारीत्व की परम्परा में आपका वही स्थान है जो सीता, सावित्री, तारामती और दमयन्ती आदि का है। वर्तमान राष्ट्रीय जागरण और नव चेतना के युग में माता कस्तूरबा भारतीय नारीत्व का आदर्श है। एक आदर्श पत्नी, आदर्श माता और आदर्श देश-भक्त



राष्ट्र-माता कस्तूरबा

आपके महान् आन्तरिक तेज का कारण यही नहीं है कि आप
न्धी जी-जैसे महान् तेजस्वी युग-पुरुष की भार्या थीं अथवा उनके
न्निध्य में रहती थीं, प्रत्युत आपका वास्तविक महान् आन्तरिक तेज
स्वयं अपना था। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा गान्धी के महान
न, आत्मीयता तथा पथ-प्रदर्शन से आपकी आत्मोन्नति में महान
हायता मिली है, फिर भी आपका सौम्य प्रकाश गान्धी जी के प्रकाश
ही परिवर्तन-मात्र नहीं था, आप महात्मा गान्धी से प्राप्त प्रकाश
आत्मसात् करके उसे सब प्रकार से अपना बनाकर ही स्वयं प्रकाश
कासित करती थीं। आपका महत्त्व युग-पुरुष गान्धी की पत्नी के रूप
ही नहीं, अपितु स्वयं महानारी कस्तूरबा के रूप में है।

माता कस्तूरबा का जन्म सन् १८६९ में पोरबन्दर मे हुआ था
ह वह समय था जब कि रूढ़िवाद और परम्परावाद अपनी चरम गति
पहुँच चुका था। उन दिनों लोग लड़कियों को पढ़ाना बहुत बुरा
मझते थे। पढ़ाना-लिखाना तो दूर की बात; उन दिनों बाल-विवाह
प्रथा बड़े जोरों से प्रचलित थी। लड़की ने जहाँ कुछ होश
भाला नहीं कि लोगों ने झट उसका विवाह कर दिया। तदनुसार
पका विवाह भी बहुत छोटी अवस्था में ही कर दिया था। विवाह
समय गान्धी जी की आयु १२ वर्ष की और उतनी ही आपकी
।

विवाह से पहले माता कस्तूरबा बिलकुल पढ़ी-लिखी न थीं
मय मिलने पर गान्धी जी उन्हें कुछ पढ़ाने-लिखाने की चेष्टा करते
और उनको गहन और गम्भीर बातों से परिचित कराते थे। गान्धी
ी के इस प्रयत्न से आपको साधारण हिन्दी और गुजराती का कुछ
ान हो गया था। पढ़ी-लिखी न होने पर भी आप बड़े उच्च विचा

थे पढ़ी-लिखी नहीं हैं। आपके व्यवहार इतने ऊँचे और विचा
होते थे कि बड़े-बड़े पढे-लिखों के हृदय में भी उनके प्रति श्रा
भाव उत्पन्न हो जाता था। फिर भी कुछ बातों को लेकर गान्
और बा में झगड़ा हो जाया करता था। आप गान्धी जी के कह
भी अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई कार्य करना नहीं चाहती थीं
तु गान्धी जी जब प्रथम बार विलायत से लौटकर आये, तो प
ी के प्रेम ने एक दूसरा ही रूप धारण कर लिया था। आप
अपने को गान्धी जी के विचारों के अनुकूल बनाने का प्रय
े लगी थीं।

घर पर कुछ दिन तो आपका जीवन वैसा ही रहा, जैसा कि अ
ातनी कुल-वधुओं का होता है। घर में सब भाँति की समृद्धि
अपने पति का पूर्ण प्रेम आपको प्राप्त था। ज्यों-ज्यों गान्धी
ति करने लगे और उनकी ख्याति फैलने लगी, त्यों-त्यों आप
ार भी ऊँचे होते गए। किन्तु आपके व्यक्तित्व की आन्तरिक
ों को तो तभी विकास का अवसर मिला, जब आप गान्धी जी
अपने बच्चों को लेकर दक्षिण अफ्रीका में गईं और वहाँ गान
के सत्याग्रहों और उसके बाहर भी दैनिक जीवन के सत्य के प्रयो
ापको भाग लेना पड़ा। गान्धी की आत्म-कथा में कस्तूरबा
वादिता और तज्जन्य संघर्ष तथा परिणामतः विकास और प्रग
ता का विशद इतिहास है। गान्धी जी ने स्वीकार किया है कि
नी कोई भी बात कस्तूरबा पर लाद देने में कभी भी समर्थ न
। गान्धी जी ने अपने हठ से इस सम्बन्ध में आपको बहुत-कु
सिक कष्ट पहुँचाया। परन्तु आपकी दृढता कभी भी विचलित न

भाव के भीतर एक आग्नेय आत्मा थी,जिसे कभी दबाया नहीं ज
ता था। परन्तु जब आपने धीरे-धीरे गान्धी जी के कथन औ
छाओं में न्याय को देख लिया तो अपने-आपको स्वेच्छा से उन
ो पूर्णतया समर्पित कर दिया। आपका आत्म-समर्पण तो अ
रत के घर-घर में प्रचलित एक कहावत हो गई है।

परन्तु यह सब होते हुए भी आप मानव ही थीं, अति मान
ीं। और इसीलिए आपके आत्म-समर्पण का और भी अधिक मूल
र महत्त्व है। गान्धी जी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने लगे
के मित्रों और प्रशंसकों ने उन्हें बहुत-सी वस्तुएं भेंट में दी, जिन
बहुमूल्य आभूषण भी थे, जो बा के लिए दिये गए थे। गान्धी ज
तमाम भेंटों का एक ट्रस्ट बना देना चाहते थे। उनका विचार थ
लोक-सेवा के बदले में मिली हुई इन चीजो को लोक-सेवा में
ीं कर देना चाहिए। उन्होंने इसके लिए अपने लडकों को तो रा
लिया, परन्तु कस्तूरबा इसके लिए राजी नहीं हुई। आम स्त्रि
ा: स्वभावत: ही आभूषण-प्रिय होती है और अपने अधिकार
ये हुए गहनों को छोडना उनके लिए कठिन बात ही है। इसमे को
र्थ, लालच या स्वामित्व के अभिमान-जैसी कोई बात न थी। आ
गहनों को अपनी पुत्र-वधुओं के लिए रखना चाहती थीं। परन
-धीरे आपने अपनी इस कमजोरी पर भी विजय प्राप्त कर ली औ
ने महान् पति के सर्वथा अनुरूप होकर मन, कर्म और वचन से पू
ासक्ति का जीवन व्यतीत करने लगीं। दक्षिण अफ्रीका में
०६ में महात्मा जी ने पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर लिया औ
आपसे इसकी सलाह ली तो आपने कोई विरोध नहीं किया; बलि

एक बार बड़े ज़ोरों से बीमार पड़ीं और आपकी अवस्था बहुत चिंताजनक हो गई। डाक्टरों ने बीफ टी, शोरवा, मांस, आदि खाने को कहा परन्तु आप तो इसे नितांत 'घृणास्पद' वस्तु समझती थीं। भला ऐसी चीजों को ग्रहण करने के लिए आप कब तैयार हो सकती थीं? आप एक बहुत ही धर्म-प्राण नारी थीं। आपने मरना स्वीकार किया परन्तु डाक्टरों का कहना न माना। इस प्रकार कुछ वर्षों के भीतर ही आपने एक महान् मानसिक भूमिका तैयार कर ली और इसके लिए जीवन में बहुत-सी कड़वी बातें आपको सहन करनी पड़ीं। आपने सब कुछ खुशी-खुशी सहन किया और उसके लिए कभी किसी से सहानुभूति या उत्साह-वर्द्धन की एक बात की भी आशा नहीं की। गान्धी जी ने जब दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह छेड़ा, तो आपने भी उसमें पूर्णतया भाग लिया और जेल में जाकर अनेक कठिनाइयाँ सहन कीं।

जब हिन्दुस्तान वापस आ गईं तो आप पूरी तरह महात्मा जी के कार्य में पच गईं। महात्मा जी जिन महान् आदर्शों को लेकर जिस महान् उद्देश्य के लिए संघर्ष-रत हुए, उसमें आपने स्वयं को पूर्ण आत्म-समर्पण के साथ लगा दिया। १९१६—१७ में बिहार में चम्पारन के किसानों के लिए गान्धी जी ने जो सत्याग्रह-आन्दोलन किया उसमें आप भी उनके साथ चम्पारन में थीं। आपने वहाँ जिस लगन और उत्साह से काम किया था। उसे देखकर गान्धी जी को भी दंग रह जाना पड़ा। उन्होंने यह जान लिया कि कस्तूरबा में सत्याग्रही बनने की सबसे अधिक योग्यता है। गान्धी जी ने ही नहीं, सारे देश ने आपकी इस योग्यता की बार-बार सराहना की थी। आप सदैव गान्धी जी के सत्याग्रह-आश्रम की अध्यक्षा की भाँति रहीं और [illegible]

फीनिक्स आश्रम हो, चाहे अहमदाबाद का साबरमती-आश्रम और चाहे सेवाग्राम का आश्रम हो, सर्वत्र ही आप आश्रम की अधिष्ठात्री देवी-तुल्य रही है और आपके ही सरल, प्रेमालु स्वभाव और तज्जन्य कुशल देख-रेख के कारण सर्वत्र ही आश्रम के कार्य बिना किसी दिखावे के सरलता से ठीक-ठीक चलते रहे।

जो भी व्यक्ति आपके सम्पर्क में आया उस पर आपके पूर्ण आत्म-समर्पण, असीम दृढ़ साहस और अपरिमित देश-प्रेम का प्रगाढ़ प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। आपके आत्म-समर्पण की परीक्षा अनेक बार, अनेक तरह से हुई, किन्तु इनमे हमेशा ही आप तप्त स्वर्ण की भाँति उज्ज्वल निकलीं। आपके असीम साहस से अनेक व्यक्तियों ने स्फूर्ति ग्रहण की है और आपकी देश-भक्ति सदा इस प्रकार संक्रामक रही है कि जो भी आपके सम्पर्क में आया वह इससे अछूता न रह सका।

१६२२ में गया में कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था। आपके देश के लिए महान् त्याग और अनुपम सेवाओं को देखकर लोगों ने आपको-कांग्रेस की सभानेत्री बनाना चाहा, परन्तु आपको यह कब स्वीकार हो सकता था? आपने तो लोक-सेवा के लिए ही जन्म-धारण किया था, फिर सभानेत्री के आसन पर कैसे बैठ सकती थीं? आपने अपना नाम वापस ले लिया और कहा कि "मेरे लिए यही सबसे अच्छा है कि मैं जहाँ हूँ, वहीं बनी रहूँ।"

देश के लिए आपको कई बार जेल जाना पड़ा। राजकोट-आन्दोलन में गान्धी जी के साथ-साथ आपको भी तनहाई की सजा हुई। इस सजा में आपके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा था। आप बिलकुल सूख गई थीं और शरीर अत्यन्त [illegible]

ाया और गिरफ्तार होकर जेल गईं। १६३२ के व्यक्तिगत आन्द
न में गान्धी जी के साथ आप भी जेल जा पहुँचीं। गान्धी जी
थ छोड़ना आपको पसन्द न था। जब-जब वे जेल गए, तब-त
ापने भी जेल को ही अपना घर बनाया। शायद ही दो एक बार ऐ
गा हो, जब कि गान्धी जी जेल में हों, और आप जेल से बाहर र
। जेल से बाहर रहकर भी आप चुप नहीं बैठती थीं, बल्कि गान
के मार्ग पर और भी अधिक गति के साथ चलती थीं।

६ अगस्त १६४२ को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ और दू
तत्पर सरकार ने कांग्रेस के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया
न्धी जी भी गिरफ्तार हो गए। किन्तु बा इस समय स्वेच्छा से गान
के साथ जेल मे नहीं गईं उन्हें तो गान्धी जी के 'करो या मर
त्र पर अमल करना था। उनका कार्य-क्षेत्र, धर्म-क्षेत्र उस सम
ल में नहीं, सरकार के दमन से पीड़ित नेता-विहीन जनता में था
पने पूर्व निश्चित एक सभा में शाम को भाषण देने का अपना का
म रखा। इस पर पुलिस भी 'कृत्रिम विनम्रता' छोड़कर अपने असल
र में आई और शाम होने से पहले ही आपको गिरफ्तार कर
ा के आगाखां महल में भेज दिया। यह बा की अन्तिम, कि
ल लड़ाई थी।

आगाखां महल में आपका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन बिगड़ता गया
ापने दृढ़ता से बीमारी के साथ संघर्ष किया, परन्तु आप दिनोंदि
धिकाधिक अशक्त होती गईं। और २२ फरवरी १६४४ को ज
मस्त देश शिवरात्रि का व्रत कर रहा था, आप गान्धी जी की गं

राष्ट्र-माता मर चुकी, किन्तु आज भी आपके स्मरण-मात्र से
त राष्ट्र राजनीतिक और सामाजिक संघर्ष में स्फूर्ति ग्रहण करता
आपके स्मारक फण्ड में भारतीय जनता ने खुले दिल से दान
आपके प्रति आदरपूर्ण कृतज्ञता का परिचय दिया है।



: १४ :

श्रीनिवास शास्त्री

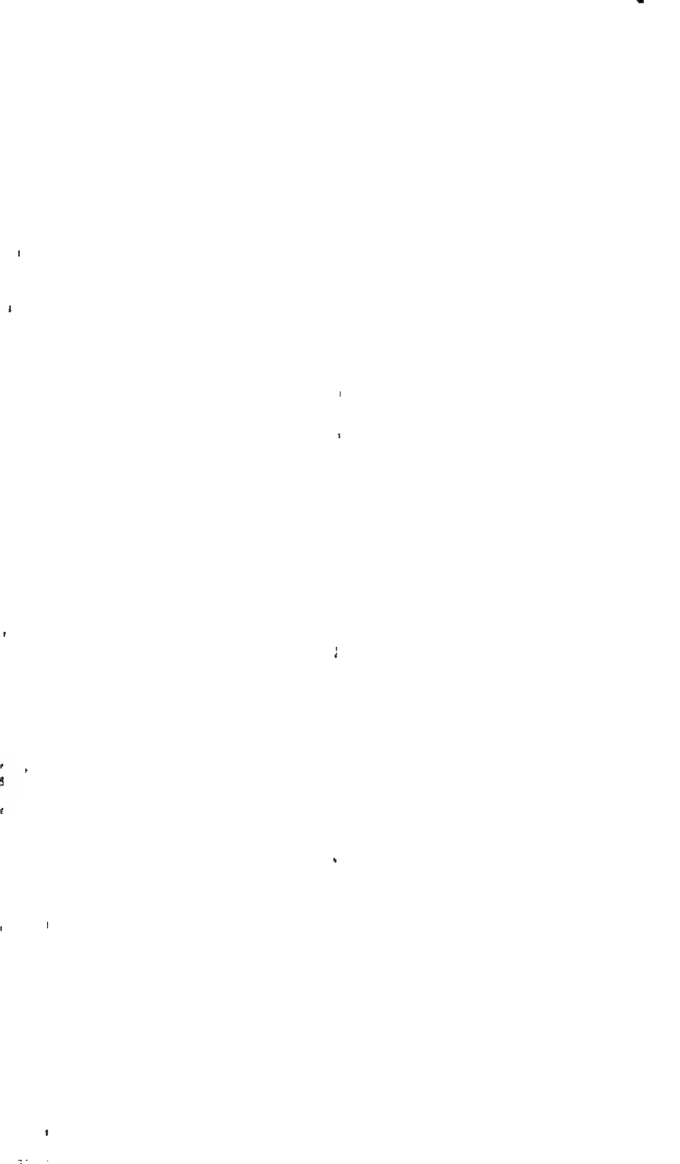
[जन्म सन् १८६९ : मृत्यु १९४६]

"केवल जन्म और निवास के कारण मिलने वाले अधिकार का नाम नागरिकता नही है। यह एक सस्कृति है, जो शिक्षा और भावना के ठीक दिशा मे प्रसुत होने से विकसित होती है। नागरिकता के बिना स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्रवाद व्यर्थ सिद्ध हो सकते हैं। नागरिकता राष्ट्रीयता से पृथक है। यह वह व्यक्तिगत व्यवहार है, जिससे सामाजिक सुख की प्राप्ति होती है।

भारी बदन, सिर पर ऊँचा साफा, भारतीय संस्कृति के गौरवमय एवं अलौकिक तेज से दमकता हुआ चेहरा, राष्ट्रीयता की पुण्य ज्योति से चमकते हुए बड़े-बड़े नेत्र, दीर्घ नासिका, चौड़ा ललाट—यही है भारतीय संस्कृति के देवदूत माननीय श्रीनिवास शास्त्री का शारीरिक-परिचय। शास्त्रीजी भारतीय राष्ट्रीयता के क्षितिज पर एक देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति उदय हुए और अपने महान् व्यक्तित्व एवं अलौकिक प्रतिभा द्वारा भारती संस्कृति की गौरव-गरिमा को विश्व-भर में



श्रीनिवास शास्त्री



शों में भारतीय संस्कृति के संदेश-वाहकों में श्री रवीन्द्रनाथ टैगो
बाद आपका ही नाम सदैव गौरव के साथ लिया जाता रहेगा
कृत और अंग्रेजी भाषा पर आपका असाधारण अधिकार था
की वक्तृत्व-शक्ति अद्भुत थी। आपकी तपोमयी वाणी सुनक
व के तीन महाद्वीपों के अगणित नर-नारी मुग्ध हो जाया कर
अंग्रेजी में आप धारावाहिक व्याख्यान दिया करते थे। आपक
न् वक्तृता से कायल होकर लार्ड बालफोर ने उन्हें विश्व के पाँ
न वक्ताओं में स्थान दिया है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से भार
नव राजनीतिक चेतना का अभ्युदय हो रहा था और भारती
ीय कांग्रेस के मंच से महामति गोपालकृष्ण गोखले, श्री सुरेन्द्रना
र्जी, श्री फीरोजशाह मेहता प्रभृति नेतागण राष्ट्रीयता की शंख
ने फूँक रहे थे। उस समय आपने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर
ने को श्री गोखले का सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध किया औ
तमाता की गौरव-गरिमा विश्व में फैलाई।

शास्त्रीजी का जन्म दक्षिण भारत की सुप्रसिद्ध नगरी कुम्भकोण
ः मील दक्षिण की ओर वालिंगमन नामक ग्राम में २२ सितम्ब
६९ को एक विद्वान् ब्राह्मण कुल में हुआ। आपके घर की आर्थि
ति अच्छी नहीं थी। वास्तव में यह बात सर्व प्रमाणित है ि
र के बड़े-बड़े महापुरुषों का जन्म प्रायः राजमहलों में न होक
बों के झोंपड़ों में ही हुआ है। आप बचपन से ही बड़ी मेधा
वि एवं प्रखर बुद्धि के थे। आपने बाल्यकाल में ही संस्कृत क
प्ति ज्ञान घर पर ही प्राप्त कर लिया था। पन्द्रह वर्ष की अवस्
आपने मैट्रिक पास किया। ... में ... -विश्वविद्यालय

पको आजीविका की चिन्ता थी। पुनः आप अपने गम्भीर जीव
पहले-पहल 'ट्रिपलीकेन' के हिन्दू स्कूल में अध्यापक नियुक्
। धीरे धीरे उन्नति करके उस स्कूल के हेडमास्टर हो गए
क रहते हुए भी आपको भारतीय संस्कृति से असीम अनुराग
 आपकी आत्मा आपको किसी दूसरी ही ओर खींच रही थी।

यह भारतीय राष्ट्रीयता की नव-जागृति का उद्बोधन-काल था
गोपाल कृष्ण गोखले तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि कांग्रेस-नेता
 देश में राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ता जा रहा था। भला शास
जैसे मेधावी बुद्धि के व्यक्ति, जिनको अपने देश और देशवासि
प्रति असीम अनुराग था, इससे अछूते कैसे रह सकते थे? अ
तक का कार्य आपको अधिक काल तक बन्धन में न रख स
 आप बहुत शीघ्र ही गोखले के व्यक्तित्व से प्रभावित हो
के सम्पर्क में आ गए। उस समय आपकी आयु २८ साल की थी
खले की प्रेरणा से आप 'सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी (भार
क-समिति) के सदस्य बन गए। १९१० में आप मद्रास-विश्व
ालय के फैलो चुने गए और तीन साल के बाद मद्रास-सरकार
न्सिल के सदस्य निर्वाचित हुए। १९१५ में गोखले की मृत्यु
 पर 'सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी' की अध्यक्षता का भ
को सम्भालना पड़ा। इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर आप बरा
 साल तक बने रहे। १९१६ में 'इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिल
 लिए निर्वाचित हुए। इस समय तक आपका नाम सारे देश
ात हो चुका था और शैक्षणिक, सामाजिक, राजनीतिक—स
 में आपने निःस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करके अपनी कर्तव्

ार्य-भार आपने सम्भाला। आपने समस्त देश का दौरा किया और
राज्य-सम्बन्धी प्रचार-कार्य जारी रखा। आप नरम दल के समर्थक
उग्र नीति आपको पसन्द नहीं थी। यही कारण था कि आपने गर
की नीति का विरोध करके मारट-फोर्ड-योजना का समर्थन कि
। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ आप 'माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुध
जना' के सम्बन्ध में मताधिकार-सम्बन्धी जो समिति बनी थी, उस
स्य बन गए। आप कांग्रेस के भी कई वर्षों तक सदस्य रहे औ
ने लेखों तथा मधुर भाषणों द्वारा उन्होंने स्वतन्त्रता-आंदोल
और भी गति प्रदान की। सन् १९१९ में आप माडरेट डेपुटेश
सदस्य की हैसियत से इंग्लैण्ड गये थे। लोकमान्य तिलक
ति आपका भी यही मत था कि जो-कुछ पहले-पहल बिना संघ
मिल जाय, उसे ही स्वीकार कर लिया जाय। अमृतसर-कांग्रेस
य तक कांग्रेस में नरम दल वालों का प्रभाव निरन्तर कम हो
। जनता भी अधिकांश में उग्रवादियों के पक्ष में थी। कांग्रेस
लेन-देन की प्रवृत्ति को बिलकुल ठुकराकर सीधा मार्ग ग्रहण क
ा, तो शास्त्रीजी कांग्रेस से पृथक् हो गए। आप नरम दल
ख एवं प्रकाशमान् नक्षत्र थे।

आपके राजनीतिक विचारों एवं असाधारण योग्यता से प्रभावि
र सरकार ने आपको १९२१ में प्रथम महायुद्ध के बाद की साम्राज
षद् तथा वाशिंगटन की निःशस्त्रीकरण-परिषद् का सदस्य बनाया
३० और १९३२ की गोल मेज-परिषदों में भी आप सरकार की ओ
मनोनीत करके भेजे गए थे। बाद में आप प्रिवी कौन्सिल
स्य भी नियुक्त किये गए थे। १९३२ में आपने भारत-सरकार

आपके असाधारण व्यक्तित्व एवं प्रतिभा को देखकर जनरल 'हर्टज़ोग' ने भी आपकी प्रशंसा की थी।

आप जीवन-पर्यन्त पक्के नरमदली रहे और अन्त तक अपने राजनीतिक सिद्धान्तों पर दृढ़ बने रहे। गान्धीजी की विचार-धारा से आप सहमत न थे, न ही आपको उनकी क्रान्तिकारी कार्य-प्रणाली पसन्द थी। इतना मतभेद होने पर भी आप सदा गान्धीजी के मित्र रहे। हाँ, विश्व-शान्ति के समर्थक के नाते गान्धीजी की विचार-धारा से आप सहमत भी थे। इस बार म आपका बद्धमूल धारणा थी कि यदि संसार को अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थ और प्रेम की प्रवृत्तियों से बचाकर उसमें शान्ति का साम्राज्य स्थापित होता है तो उसके लिए गान्धीजी का सत्य और अहिंसा का मन्त्र ही काम दे सकता है। १९४२ की अगस्त-क्रान्ति के बाद अंग्रेजों ने जो पाशविकता और दमन-नीति अपनाई, उसका आपने अपने वक्तव्यों द्वारा तीव्र विरोध किया।

भारत के विभाजन के आप तीव्र विरोधी थे। पाकिस्तान के बारे में आपने अपनी स्पष्ट राय प्रकट की थी। गान्धीजी ने जब राजाजी की योजना के आधार पर मि० जिन्ना से बात-चीत की, तब भी आपने उस योजना का तीव्र विरोध किया था।

राजनीतिक क्षेत्र के अतिरिक्त अपने सामाजिक क्षेत्र में भी पर्याप्त सेवा-कार्य किया। आपने प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था। आप सदैव भारत और उसकी संस्कृति के विषय में सोचा करते थे। भारत के धर्म, संस्कृति और कला की सुन्दर व्याख्या करके आपने पश्चिमी देशों में भारत की महानता को [illegible]

शिक्षा मिली और अनुभव हुआ उससे आप दूर के देशों के राजनीतिक-झंझटों में पड़ने की अपेक्षा संसार में भारत के सांस्कृतिक देवदूत होने के अधिक उपयुक्त हुए। आप स्वनिर्मित व्यक्ति थे, कोई अपने सिद्धान्त आप पर ज़बर्दस्ती नहीं लाद सकता था।

१९४२ से ही आपका स्वास्थ्य अधिक खराब रहने लगा था। काफी चिकित्सा कराने पर भी आपकी अवस्था दिन-पर-दिन गिरती ही गई। और २६ अप्रैल १९४६ को माल्यपोर (मद्रास) में आपका देहावसान हो गया। आपकी मृत्यु क्या हुई, भारत के सार्वजनिक-जीवन से एक महान् सांस्कृतिक व्यक्तित्व उठ गया। वास्तव में नये भारत के निर्माताओं में आपका अपना एक विशेष स्थान है।



: १५ :

देशबन्धु सी. आर. दास

[जन्म सन् १८७० : मृत्यु सन् १९२५]

"अपने देश के लिए काम करना मेरे लिए धर्म का ही एक अंग है। वह मेरे जीवन के आदर्शवाद का कभी न अलग होने वाला एक हिस्सा है। अपने देश की भावना में ही मैं ईश्वर का साक्षात्कार करता हूँ।"

भारत को बंगाल ने बहुत-कुछ दिया है, परन्तु देशबन्धु चित्तरञ्जनदास से बढ़कर दूसरा प्रतिनिधि हुआ नहीं। यों कहें कि उनका व्यक्तित्व जैसे आग का धधकता हुआ पिण्ड था। वह पिण्ड जिसकी कालिमा नष्ट हो गई थी, केवल प्रकाश रह गया था। मुर्दे को छुआ, और उसमें जान आ गई। भाषण दिया, और जनता में उत्साह आया। बड़े-बड़े जन-समूहों के साथ इस तरह खेलने वाला जैसे हवा डालियों को हिलाती, पत्तों से आलिंगन करती और फूलों में एक सिहरन पैदा कर, एक जान डालकर चली जाती है। वह चेतना, वह भावुकता, वह दीवानापन, वह तेजस्विता, वह तूफानी स्वभाव, वह उदारता, वह स्थिरता; बंग-भूमि मानो इस महाप्राण में हाड़-मांस का रूप धारण कर अवतीर्ण हुई हो। उनके [illegible] में जैसे [illegible]



देशबन्धु सी. आर दास

उनमें महामनुष्यत्व की दृष्टि से, जीवन-समता की दृष्टि से कोई भी चित्तरञ्जन का मुकाबला नहीं कर सकता। पाँच वर्ष, केवल पाँच वर्षों में भयानक आँधी और विकट बाढ़ की तरह सार्वजनिक जीवन की प्रत्येक दिशा में वे फट पड़े। पाँच वर्ष के भीतर ही वे बंगाल के जीवन-क्षितिज पर इस तरह छा गए, मानो युग-युग से उनका जीवन उसमें ओत-प्रोत हो।

वह विद्रोह के पुरोहित थे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे विद्रोही रहे। सपना देखना और देखकर उसे पूरा करना उनका स्वभाव था। वर्तमान कुरीतियों के प्रति उनके हृदय में प्रबल रोष था। यह व्यक्ति समाज की परम्पराओं की कुरीतियों का भंजन करता, लड़ता, तर्क करता, आनन्द लूटता और लुटाता हुआ एक अजीब दीवानेपन के साथ हमारे राष्ट्रीय प्रांगण में उतरा।

ऐसे ही दिव्य राष्ट्र-पुरुष दास का जन्म ५ नवम्बर सन् १८७० को कलकत्ता के एक वैष्णव परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री भुवनमोहनदास कलकत्ता-हाईकोर्ट के एक एटरनी थे। आपका प्रारम्भिक शिक्षण भवानीपुर (कलकत्ता) के लन्दन मिशनरी सोसायटी इन्स्टीट्यूट में हुआ था। वहीं से १८८६ में आपने मैट्रिक और १८९० में प्रेसीडेन्सी कालिज से बी० ए० पास किया। ग्रेजुएट हो चुकने पर उस समय के शिक्षित युवकों में प्रचलित आई० सी० एस० बनने की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए आप भी इंग्लैण्ड चले गए १८९२ में वे स परीक्षा में बैठे, परन्तु सफलता न मिली। इस असफलता का एक ारण लन्दन में राजनीतिक कार्यों में भाग लेते रहना भी कहा जाता । परीक्षा देने के पूर्व, उन्होंने पार्लमेंट में दी हुई जेम्स मैक्लीन की स बात का ...

का जोरों से समर्थन किया था। उस समय काले-गोरे का वर्ण-भे इंग्लैण्ड में व्यापक था, यहाँ तक कि रानी विक्टोरिया के प्रधान मन्त्र लार्ड सेलिसबरी ने दादाभाई के लिए 'काला आदमी' शब्द का प्रयोग किया था। संयोगवश दादाभाई लार्ड सेलिसबरी की अपेक्षा कहीं ज्याद गोरे थे, अतः इसे व्यक्तिगत अपमान न समझकर जातीय विद्वेष क उदाहरण समझा गया और चितरञ्जन के समर्थन तथा अन्य कारणों का मतदाताओं पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दादाभाई पार्लमेण्ट के सदस्य चुन लिये गए। जो हो, इस बात का पता लगाना मुश्किल है कि अपने राजनीतिक विचारों के कारण चितरञ्जन को सफलता नहीं मिली या और किसी कारण से।

आई० सी० एस० की परीक्षा में असफल होने से आपके सम्ब न्धियों को स्वभावतः निराशा तो हुई, परन्तु वे निरुत्साहित नहीं हुए और उन्होंने आपको अपने आनुवंशिक पेशे वकालत में पड़ने की सलाह दी। आपके पिता और दोनों चाचा, श्री कालीमोहनदास और दुर्गामोहनदास, तो कलकत्ता-हाईकोर्ट के एटरनी थे ही, दादा जगद्- बन्धुदास राजशाही में सरकारी वकील थे। आपने बैरिस्टरी की तैयारी शुरू की और १८९३ में लण्दन के 'इनर टैम्पल' से बैरिस्टर-एट-ला होकर स्वदेश लौट आए और उसी वर्ष कलकत्ता-हाईकोर्ट में भरती हो गए। उस समय चार्ल्स पाल, जान उडरफ, श्री मनमोहन घोष- जैसे मेधावी वकील वहाँ मौजूद थे। उनके सामने दूसरे नये उम्मीद- वारों की कहाँ चलती ? चितरञ्जन का भी वही हाल हुआ। बैठे-ठाले दिन बीतने लगे। इधर सफलता न मिलने के कारण वह साहित्य की ओर आकृष्ट हुए।

न्त की सुशिक्षित कन्या बासन्ती देवी के साथ हुआ। १९०६में आपके
ता के आकस्मिक आर्थिक संकट में फँस जाने से उन्हें तथा आपको
म्मिलित रूप से हाईकोर्ट में अपने को दिवालिया घोषित किये जाने की
रख्वास्त देनी पड़ी। आप चाहते तो पिता का ऋण अपने सिर लेने से
च सकते थे, परन्तु आपने न केवल उस समय ऐसा किया, बल्कि
ाद को समर्थ हो जाने पर जिन लोगों का जो कुछ देना था वह
ौड़ी-कौड़ी चुका दिया और १९१३ में हाईकोर्ट से अपना दिवालिया
न रद्द करवा दिया। इससे आपकी ख्याति बहुत बढ़ गई। हाईकोर्ट
जजों तक ने उस समय आपकी ईमानदारी की तारीफ की थी।

१९०७-८ में बंग-भंग के कारण स्वदेशी और राष्ट्रीयता की जो
चण्ड बाढ़ आई, उसमें श्री चितरंजनदास ने भी बड़ा भाग लिया
। आपने श्री अरविन्द घोष आदि कई मित्रों के साथ मिलकर
न्देमातरम्' नामक एक पत्र अंग्रेजी भाषा में निकाला। इस पत्र में
ी अरविन्द ने राजनीति को आध्यात्मिकता का रंग देते हुए 'न्यू पाथ
नया मार्ग) नामक जो लेख-माला लिखी थी, उससे उसकी लोक
ियता बहुत बढ़ गई थी। 'बन्देमातरम्' की ही नीति पर 'सन्ध्या
ौर 'युगान्तर' नामक दो पत्र बँगला में क्रमशः श्री ब्रह्मबान्धव उपा
ाय और स्व० स्वामी विवेकानन्द के भाई डा० भूपेन्द्रनाथदत्त
काला करते थे। तीनों पत्रों की उन दिनों बंगाल में धूम थी। उनके
भाव को कम करने के लिए सरकार ने तीनों पत्रों के सम्पादकों पर
जद्रोह के मुकदमे चलाये। उन्हीं दिनों ३० अप्रैल १९०८ को मुज
करपुर का प्रसिद्ध बम-काण्ड हुआ। खुदीराम बोस और प्रफुल्ल-
ाकी नामक दो बंगाली नवयुवकों ने वहाँ के जिला-जज किंग्सफोर्ड के

स वर्ष बंग-भंग-विरोधी आन्दोलन में भाग लेने वाले अनेक नव
,वकों को कठोर सजाएं दी थीं। युवक खुदीराम और प्रफुल्ल इस
ा उससे बदला लेना चाहते थे। इस बम-काण्ड से बंगाल सरका
शेष चौकन्नी हो गई। स्थान-स्थान पर तलाशियाँ होने लगीं। :
ई की रात को श्री अरविन्द आदि अनेक युवक एक साथ पकड़ लिं
ए। उन्हीं में श्री अरविन्द सहित ३६ व्यक्तियों पर माणिकतल्ल
ड्यन्त्र केस चलाया गया। श्री अरविन्द की सम्मति से उस मुकदमे ं
ी चितरंजन को सफाई का वकील बनाया गया। वह मुकदमा अली
र के मजिस्ट्रेट और सेशन की अदालतों में एक वर्ष से अधिक समय
क चलता रहा। श्री चितरंजन ने समय और धन की भारी क्षति
ठाकर उसकी बड़ी योग्यता के साथ पैरवी की। श्री ब्रह्मबान्धव और
ी भूपेन्द्र नाथ के मुकदमों से उनकी ख्याति हो ही चुकी थी। उस
कदमे की सफलता ने उनकी कीर्ति को चार-चाँद और लगा दिये
सके बाद आपके पास इतना काम आने लगा कि आपको बहुत-सा काम
स्वीकार कर देना पड़ता। आपके पेशे में आपकी इस सफलता क
हुत-कुछ श्रेय आपकी कानूनी योग्यता के अलावा ईमानदारी, एका
ता और परिश्रम को है। जिस मामले को आप हाथ में लेते थे
सकी सफलता के लिए तन-मन एक कर देते थे। कभी-कभी तं
कसी-किसी कानूनी प्वाइण्ट पर विचार करते-करते आप योगी की भाँति
न्मय हो जाते थे। अरविन्द के मुकदमे के बाद भी अनेकों राजनीतिक
कदमों की पैरवी आपने न केवल बिना फीस लिये की, प्रत्युत बहुत
तो अपने पास से व्यय भी किया। यूरोपीय महायुद्ध के दिनों में
गाल में जो हजारों नवयुवक भारत रक्षा विधान के आधीन कैद

१६०५ ई० में भारत में जो नवीन चेतना आई और जो महायुद्ध के विकराल समय में भी बराबर बढ़ती गई वह चितरंजन के हृदय पर बराबर असर डाल रही थी। भौतिकवाद के बढ़ते हुए प्रवाह में भारत ने धक्के-पर-धक्के खाकर फिर अपनी भूली हुई आध्यात्मिक चेतना को पाया। अरविन्द ने अध्यात्म को जिस प्रकार राजनीति में मिला दिया था उसका प्रभाव भी चितरंजन पर पड़ा था। १६१७ में कलकत्ता में बंगाल प्रान्तीय कान्फ्रेंस का अधिवेशन हुआ। चितरंजन ही उसके सभापति थे। उन्होंने अपना उत्साहप्रद एवं ओजस्वी भाषण दिया। जिसमें उन्होंने आधुनिक भौतिकवाद के बढ़ते हुए प्रवाह के विरुद्ध जबरदस्त अपील की और कहा कि "उपनिषदों और बुद्ध के ज़माने से भारत संसार को प्रकाश देता रहा है और आज इस समय भी भारत को अपना सन्देश देना होगा।"

देशबन्धु ने आज से बहुत समय पहले बंगाल के ग्राम-ग्राम में नजरबन्द युवकों के परिवारों की दुर्दशा देखी थी। उस दुर्दशा का भी उन्होंने अपने उस व्याख्यान में उल्लेख किया था। उनके भावुक हृदय पर उसका इतना असर पड़ा कि उससे आगे का उनका सारा जीवन और जीवन का सब-कुछ देश-सेवा के लिए अर्पण हो गया। ग्राम-सेवा के लिए ही आपने १६२२-२३ में अपने पास से तथा बंगाल के सभी अन्य धनिकों से बहुत-सी धन-राशि एकत्र करके 'देशबन्धु-पल्ली-संस्कार समिति' नामक संस्था स्थापित की थी। बंगाल में 'पल्ली' ग्राम को कहते हैं। समिति की तरफ से अनेक युवकों ने गाँव-गाँव घूम-कर मैजिक लैण्टर्न द्वारा ग्रामीण जनता में राष्ट्रीय विचारों का प्रचार करने के अलावा ग्रामों की स्वास्थ्य-सफाई, निरक्षरता-निवारण

१६१६ के मार्च-अप्रैल में गान्धी जी ने रौलट-एक्ट के विरुद्ध ज
त्याग्रह आरम्भ किया था, उसमें योग देने वालों में भी आप अग्रणी
। पंजाब और खिलाफत के प्रश्न को लेकर कलकत्ता में कांग्रेस क
शेषाधिवेशन १६२० में हुआ। नवम्बर-दिसम्बर में मांटफोर्ड-शासन
धान के अनुसार व्यवस्थापिका-सभाओं का चुनाव होने वाला था।
ोकमान्य तिलक के नेतृत्व में उनकी राजनीति के अनुयायी अने
ांग्रेसी नेता उस चुनाव को संगठित रूप से लड़ने की तैयारियाँ क
हे थे, दास बाबू भी उनमें से एक थे। बंगाल और महाराष्ट्र में इ
यारियों का विशेष जोर था। गान्धी जी के असहयोग-कार्यक्रम ें
यवस्थापिका-सभाओं का बहिष्कार भी शामिल था। इसलिए विशेषा
धिवेशन में आपने असहयोग के प्रस्ताव का विरोध किया। परन्
दिसम्बर में ही नागपुर-कांग्रेस में गान्धी जी के साथ देर तक विचार
िनिमय करने के बाद आप उनके साथ सहमत हो गए। वास्तव में
ान्धी जी के निश्चय को कार्य रूप में परिणत करने का अधिकांश
य चितरंजन को ही दिया जाता है।

१७ नवम्बर १६२१ में जब इंग्लैण्ड के युवराज भारत में आये त
नका बहिष्कार करने का कांग्रेस ने निश्चय किया। युवराज के कल-
ता पहुँचने पर उनके बहिष्कार का आन्दोलन आपने ही किया।
िसम्बर के अन्त में अहमदाबाद में होने वाली कांग्रेस के आप सभा
ति चुने गए थे। लेकिन १० दिसम्बर की रात को ही इस सिलसिले
गिरफ्तार कर लिये गए और छः मास की सजा हुई। वे तो गिर-
ार हो गए, परन्तु उनकी जलाई हुई आग न बुझाई जा सकी।

पार्टी' का संगठन किया। चुनाव के प्रश्न को लेकर बंगाल-कौंसिल में दो बार मार्च तथा अगस्त, १९२४ में और सन १९२९ में एक बार सरकारी मन्त्रि-मण्डल में अविश्वास का प्रस्ताव भी आपने ही पास कराया। उस समय तत्कालीन वायसराय लिटन कौंसिल के सदस्यों पर वैयक्तिक प्रभाव डालने के लिए कौन्सिल-भवन मे स्वयं उपस्थित हुए थे। आपको जब यह मालूम हुआ तो आप भी चारपाई पर लेटे हुए, बीमारी की अवस्था में ही, कौन्सिल-भवन पहुँचे। परिणाम यह हुआ कि आपको देखते ही सब सदस्यों को हिम्मत बँध गई और ६३ के विरुद्ध ६६ के भारी बहुमत से सरकार को पराजित होना पड़ा।

जिन दिनों 'स्वराज्य-पार्टी' संगठित की गई थी, उन्हीं दिनों देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे उग्र रूप में हो रहे थे। आपने कोकोनाडा की कांग्रेस में इस विषम समस्या को सुलझाने के लिए 'हिन्दू-मुस्लिम-पैक्ट' पेश करके सबको आश्चर्य मे डाल दिया। १९२३ में आपने 'स्वराज्य-पार्टी' के उद्देश्यों का प्रचार करने के लिए 'फारवर्ड' नामक एक अंग्रेजी दैनिक भी कलकत्ता से निकालना शुरू किया था।

१९२४ में कलकत्ता-कारपोरेशन का चुनाव भी आपने बड़ी ही वीरता से लड़ा और 'दरिद्रनारायण की सेवा' का अपना कार्यक्रम प्रचारित किया। १९२४ में हुगली के प्रसिद्ध मन्दिर तारकेश्वर का मामला आपने अपने हाथ में लिया। अन्त में महन्त को झुकना पड़ा और उसने मन्दिर की सब सम्पत्ति एक ट्रस्ट के आधीन कर दी।

देश की राजनीतिक दुरवस्था उनके दिमाग में सदैव घूमती रहती थी, इसलिए उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरने लगा। निरन्तर

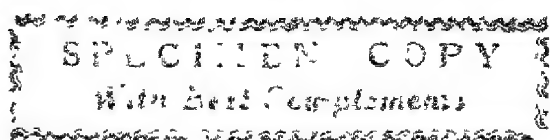
में कुछ सुधार दिखाई दिया, परन्तु वह भ्रम-मात्र था। निदान जून की शाम को आपका देहान्त हो गया। दार्जिलिंग से आपका कलकत्ता लाया गया। शव के जुलूस का दृश्य ऐसा हृदय-विदारक कि सम्पूर्ण जन-समूह के ओठों पर प्रार्थना, आँखों में कातरता दिल में वेदना थी।

चितरंजन दार्शनिक या तत्त्ववेत्ता फिलासफर की अपेक्षा यो अधिक थे। जहाँ विरोधी तनकर खड़े हों, जहाँ मोर्चाबन्दी हो रही हो, वहाँ आस्तीनें चढ़ाई जा रही हों, जहाँ बन्दूकों के छर्रे उड़ते हों, ज बलिदान और उत्सर्ग का तकाजा हो, वहाँ देखो—चितरंजन योद्धा रूप! जहाँ खतरा है, वहाँ वह तूफान है, पर बादल फटे, चमका, विजय हुई और उनका प्राणोन्मेष शिथिल हुआ। संघर्ष समय के चितरंजन एक पुरुष—एक देव, जिसे आँखें देखना चाह। वह अखाड़े में उतरे हुए उस पहलवान का रूप हैं, जो आशा रा है, उमंग से जिसकी छाती फूल रही है, नथुने हिल रहे हैं, आँ चिनगारियाँ उँडेल रही हैं, जिसकी एक-एक नस लोहा बन गई और विजयी चितरंजन एक प्राण-हीन ढेर के समान है।

चितरंजन अपने जीवन में महान् थे, परन्तु मरने पर हमने उन्हें पहचाना। आज हम लोग कहते हैं तो उनके अभाव में सार्वजनिक जीवन में जो दरार २०० वर्ष पूर्व पड़ी थी, ज्यों-की-त्यों है। हम उ करते हैं और भरे हुए हृदय से उस प्राणमय, जीवनमय महापुरुष की स्मृति में श्रद्धा सहित प्रणाम करते हैं।



भारत-भक्त एण्ड्रूज



: १६ :

भारत-भक्त एण्ड्रूज

[जन्म सन् १८७१ : मृत्यु सन् १९४०]

"जब तक भारत ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर रहेगा, तब तक विदेशी लोग इसका रक्त-शोषण करते ही रहेंगे। भारत की लक्ष्मी विलायत पहुँचती रहेगी। किसान ज्यों-के-त्यों निर्धन रहेंगे।......वर्तमान समय में हमारे लिए केवल एक ही लक्ष्य सन्तोषजनक है, और वह है पूर्ण स्वाधीनता का। यही अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए।"

दुबला-पतला और लम्बोतरा शरीर, विशाल नेत्र, दीर्घ नासिका, चौड़ा मस्तक और उस पर खिंची हुई साधुता एवं विनम्रता की भव्य रेखाएं, उस महान् मूर्ति के भौतिक चित्र की द्योतक हैं, जिसके सम्मुख आते ही प्रत्येक भारतीय का मस्तक श्रद्धाभिभूत हो सहसा झुक जाता है; वे थे भारत-भक्त सी० एफ० एण्ड्रूज। एक अंग्रेज होते हुए भी जिन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए अथक परिश्रम किया। दीन-हीन भारतीयों की सेवा में जिसने अपने जीवन को समर्पित कर दिया उस महान् आत्मा के बारे में क्या लिखा जाय?

भक्त दूसरा कोई विद्यमान नहीं है। जब तक अंग्रेज जाति में एक भी एण्ड्रूज विद्यमान हो, तब तक हम अंग्रेज जाति से द्वेष नहीं कर सकते।" स्व० ला० लाजपतराय ने अपनी स्पेशल कांग्रेस वाली वक्तृता में कहा था—"केवल एक अंग्रेज ऐसा है जिसका नाम हमें कृतज्ञता पूर्वक लेना चाहिए और वह है मि० सी० एफ० एण्ड्रूज। वे अब हमारे जातीय ही हैं।" इसी प्रकार श्रीयुत विजयराघवाचार्य ने अपनी कांग्रेस-स्पीच में कहा था—"रेवरेण्ड एण्ड्रूज में हावर्ड और काउपर दोनों की सम्मिलित मानव-जाति-सेवा का भाव विद्यमान है।··· ··रेवरेण्ड एण्ड्रूज केवल हमारे बीच में ही नहीं रहते, बल्कि वे हमारे घर के ही हैं।"

मि० एण्ड्रूज के व्यक्तित्व एवं जीवन पर प्रकाश डालना लेखनी की शक्ति से बाहर है। आपके जीवन का सार दो ही शब्दों में अधिक निहित था—"सचाई और सहृदयता।" आपका जीवन निर्मल दर्पण की भाँति स्पष्ट था। आपके अन्दर और बाहर एक ही भाव रहते थे। कृत्रिमता और आडम्बर का तो आपमें नाम-निशान भी नहीं था। आपकी मनोहर सादगी और स्वाभाविक सरलता सहज में ही मनुष्य-मात्र को मुग्ध कर लेती थी। आपने अपना समस्त जीवन दीन-दुखियों की सेवा की वेदी पर न्योछावर कर दिया। आपके हृदय में एक गम्भीर मनुष्यत्व था। आपकी अद्भुत कार्य-शक्ति, अदम्य साहस, एवं निर्भीकता की उपमा नहीं मिलती। अन्याय और अत्याचार का आप निर्भीकता से मुकाबला करते थे। इस पर भी आप अन्यायी और अत्याचारी से द्वेष नहीं रखते थे। इसी कारण धार्मिक तथा आस्तिक बुद्धि के थे। ईश्वर में आपका दृढ़ विश्वास था।

सिद्ध है। आपने अपने जीवन को खतरे में डालकर फीजी तथा ास्ट्रेलिया में भारतीय मज़दूरों की जो सेवाएं कीं, उन्हें देखकर दाँतों ले अंगुली दबा लेनी पड़ती है। जब मि० माण्टेगू ने अपनी स्कीम बारे में आपसे पूछा तो आपने बड़ी निर्भीकता से उत्तर दिया था—'रोम नगर में आग लगी है और आप चैन की वंशी बजा रहे ।" अर्थात भारतीयों पर जो अत्याचार पुलिस द्वारा हो रहे हैं, वह ापकी स्कीम से कम नहीं होंगे। जिस समय लार्ड चैम्सफोर्ड ने ापसे नाराज़ होकर पूछा था कि "अंग्रेजों ने क्या अपराध किया ?" तो आपने उनके मुँह पर ही उत्तर दिया—"पहला अपराध नाब आपने ही किया था और वह था भारतीय मेम्बरों के मत े विरुद्ध रौलट-बिल पास करना।" इस प्रकार बड़ी निर्भीकता के ाथ आपने अंग्रेज़ों के अत्याचार तथा उनकी बुराइयों की घोर निन्दा ी थी। आप सचाई पर अटल रहने वाले मनुष्य थे। इसके लिए पनी निन्दा एवं आक्षेपों की आपने कभी पर्वाह तक न की। इतना होने र भी आप घमण्ड से कोसों दूर थे। आप ख्याति-प्रेमी भी न े। यदि आपको 'लीडर' बनने का शौक होता तो आज आपका स्थान भारत तो क्या, विश्व के चोटी के नेताओं में होता। किन्तु आपने तो ीन, दुखी और असहाय समुदाय की सेवा करने को जन्म धारण किया ा और इसी के लिए अपने जीवन को पूर्णतया समर्पित कर दिया।

मिस्टर एण्ड्रूज का जन्म इंग्लैंड के उत्तरी भाग में कार्लाइल नामक नगर में १२ फरवरी १८७१ को हुआ था। आपके पिता का नाम जान ऐडविन एण्ड्रूज और माता का नाम मेरी शारलेट था। आपके पिता ईसाई धर्म के अविङ्गाइट्स सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वे

६ वर्ष की आयु तक तो आपने घर पर ही माता-पिता से शिक्षा पाई। इसके बाद आप स्कूल में प्रविष्ट किये गए। तीक्ष्ण बुद्धि होने के कारण आप लिखने-पढ़ने में बहुत तेज थे। आपकी योग्यता को देखकर आपको किंग एडवर्ड स्कूल ने एक पौंड मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी और फीस भी माफ़ कर दी गई। विश्वविद्यालय में ४ वर्ष पढ़ने के समय फिर आपको ८० पौंड की वार्षिक छात्रवृत्ति मिली थी। आपके माता-पिता को आपकी शिक्षा पर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता था। आप इन वज़ीफ़ों से अपना सब खर्च चलाकर अपने भाई-बहनों की भी मदद कर दिया करते थे। आपको ग्रीक और लैटिन भाषा की कविता करने का बड़ा शौक था। गणित में आपका मन नहीं लगता था। साहित्य से आपको अत्यन्त प्रेम था। चित्रकारी में भी आप बड़ी रुचि रखते थे। अभी से आपकी आत्मा प्रगति की ओर अग्रसर रहती थी। आप स्वयं कहा करते थे—"बराबर मेरी प्रवृत्ति यही रहती है कि जोर के साथ जाती हुई चीज के साथ मैं भी मिल जाऊँ।"

पैम्ब्रोज कालिज में अध्ययन करते समय आपके धार्मिक विश्वासों में बहुत-कुछ परिवर्तन हो गया। सबसे कठिन प्रश्न आपके सामने यह था कि "बाईबिल निर्भ्रान्त है या नहीं।" बहुत-कुछ सोच-विचार करने के बाद आपने बाईबिल को निर्भ्रान्त मानना छोड़ दिया। अपने पिता के सम्प्रदाय से भी आपका विश्वास उठ गया और उसकी बहुत-सी बातें आपको भ्रमपूर्ण तथा अपने अन्तःकरण के विरुद्ध जान पड़ती थीं। अतः बड़ी दृढ़ता के साथ पिता के सम्प्रदाय का परित्याग कर दिया। इसके कारण आप जाति से बहिष्कृत कर दिये गए। इससे आपको बहुत मानसिक आघात पहुँचा, परन्तु आप अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई भी बात स्वीकार करने को...

षा में अनारकी पास की और यूनिवर्सिटी से दो बड़े-बड़े पुरस्कार प्राप्त किये थे कालिज का जीवन समाप्त करने के पश्चात् आपने लगभग र वर्ष दीन-दुखियों की सेवा मे व्यतीत किये। ये चार वर्ष विशेषतः दो ानों में व्यतीत हुए थे सण्डरलैण्ड और वालवर्थ (दक्षिण-पूर्व न्दन) में। पहले स्थान में आपने उस समय कार्य किया था जब कि ाप कालिज को छोड़कर ही आये थे और धर्म-प्रचारक नहीं बने थे। सरे स्थान में आपने धर्म-प्रचारक बनने के बाद में कार्य किया था। र दोनों स्थानों में रहकर आपने बहुत-कुछ अनुभव प्राप्त किये। भारत ाने का विचार भी आपके मन में था; किन्तु आपने इससे पूर्व दीन खियों में रहकर उनकी सेवा करने का निश्चय किया। ये चार वर्ष ापने मज़दूरों में उन्ही की भाँति रहकर बिताये। दस शिलिंग प्रति ाह पर आप अपना निर्वाह करते थे। आपने उस समय समझ या कि मज़दूरों को अपना पेट भरने में कितनी कठिनाइयाँ उठानी ड़ती हैं। रात-दिन आप मज़दूरो की सेवा-शुश्रूषा और उनके कष्टों को र करने में ही लगे रहते थे। कई बार आप भयंकर बीमार भी होगए न्तु ऐसी अवस्था में भी अपना सेवा-कार्य करते रहे।

जब आपका स्वास्थ्य अत्यधिक गिर गया तो डाक्टरों की सलाह आपको लन्दन छोड़ना पड़ा। १८९९ में आप केम्ब्रिज कालिज के लो बना दिये गए। केम्ब्रिज में आपने तीन वर्ष नौकरी की। इस च आपकी भारत आने की इच्छा अति तीव्र हो उठी। भारत के प्रति ापको बाल्यावस्था से ही प्रेम था। आप अपनी माँ से कहा करते थे- माँ, मैं हिन्दुस्तान जरूर जाऊँगा।" कालिज-जीवन में ही आपके दय में भारतीय दर्शन और धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी

पहुँचे। इस दिन के लिए आपने कहा था—"२० मार्च का दिन मैं अपने लिए पवित्र मानता हूँ, क्योंकि मैं समझता हूँ कि इस दिन मेरा द्वितीय जन्म भारत-भूमि में हुआ।" भारत आकर आप सैण्ट स्टीफन्स कालिज के प्रोफेसर नियुक्त किये गए। १९०५ में कान की बीमारी के कारण आपको फिर विलायत जाना पड़ा; और ३ महीने वहाँ रहकर फिर वापिस भारत आ गए।

१९०६ में आपका झुकाव भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर हुआ। लाहौर का 'सिविल एण्ड मिलटरी गज़ट' इन दिनों शिक्षित भारतीयों के विरुद्ध बड़े अपमानजनक लेख निकालता था। आपने उन्हें पढ़ा तो बड़ा क्रोध आया और अपने लेखों द्वारा आपने उनका ज़ोरदार शब्दों में खण्डन किया! इन लेखों द्वारा ही भारतीय जनता से आपका प्रथम परिचय हुआ। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सरकार के फौजी विद्यालय से अंग्रेज़ों के विरुद्ध लिखने वाला यह अंग्रेज़ कौन है? नवम्बर १९०६ में आप कलकत्ता-कांग्रेस में सम्मिलित हुए और कांग्रेस के नेताओं से आपका विचार-विमर्श हुआ। आपको भारत के स्वाधीनता आन्दोलन से सहानुभूति हो चुकी थी। आपने सरकार की नीति के विरुद्ध बड़े ज़ोरदार लेख निकालने प्रारम्भ कर दिये; जिन्होंने समस्त देश में बड़ी खलबली मचा दी और अंग्रेजों को भी आपकी ओर से अन्देशा हो गया।

सैण्ट स्टीफन्स कालिज में रहते समय आपका देश के बड़े-बड़े नेताओं एवं विद्वानों से परिचय हो चुका था और अपने लेखों द्वारा उन्होंने भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन में भी एक प्रकार से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। इस बीच में आपके धार्मिक विश्वासों में भी बड़ा परिवर्तन हुआ! श्री सुशीलकुमार [illegible]

मनोवृत्ति तथा मिथ्या विश्वासों से आपको घृणा हो गई और आप उनकी बड़ी निर्भीकता के साथ कटु आलोचना भी की। हम पहले बत चुके हैं कि सरकार को भी आप पर अंदेशा रहने लगा था, अतः आपके पीछे खुफिया पुलिस भी लगाई गई, जो आपके कार्यों की देख-रेख रखे। ऐसी अवस्था में आपका सैण्ट स्टीफन्स कालिज में रहना असम्भव ही था। कालिज के नियमों से भी आप असहमत थे, इसलिए आपने कालिज से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

१९१३ में आप मि० सुशीलकुमार रुद्रा के अचानक बीमार हो जाने के कारण वे दिल्ली आये। इन्हीं दिनों महात्मा गोखले भी दक्षिण-अफ्रीका के मामले में सरकार से बातचीत करने दिल्ली आये हुए थे। उन्हें दक्षिण-अफ्रीका के भारतीयों के लिए कुछ चन्दा भी इकट्ठा करना था। आप महात्मा गोखले से मिले और उनके इस कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाई। गोखले के कहने पर आप स्वयं दक्षिण अफ्रीका गये और वहाँ गान्धीजी के कार्यों में पूरा सहयोग दिया। वहाँ के भारतीय कुलियों और मजदूरों की दयनीय अवस्था से आपके हृदय को बड़ा आघात पहुँचा और आपने पूरा एक वर्ष उन्हीं की सेवा में बिता दिया। जनरल स्मट्स और गान्धीजी के बीच जो समझौता हुआ, वह आपके ही प्रयत्न का फल था। दक्षिण अफ्रीका जाने से पूर्व आपके नाम को भारत के शिक्षित आदमी ही जानते थे, किन्तु दक्षिण अफ्रीका जाने से आपका नाम साम्राज्य-भर में फैल गया। दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों का प्रश्न केवल राष्ट्रीय दृष्टि से ही नहीं, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के हित की दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न था। इसके हल कराने में आपने जो कष्ट और कठिनाइयाँ झेलीं, उनसे आपके गौरव और प्रसिद्धि में चार चाँद लग गए।

। यहाँ आकर आपने शर्तबन्दी की कुली-प्रथा के विरुद्ध लेख लि
कुली-प्रथा को बन्द कराने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इस बार
ई हार्डिंग से मिलकर आपने एक रिपोर्ट तैयार की; जो १९ अक्तू
प्रसिद्ध खरीता कहलाता है। भारतीय कुलियों की दशा देखने आ
फीजी गये। फीजी से आकर आपने कुली-प्रथा को बन्द कराने
भारत में जबर्दस्त आन्दोलन किया और अनेक कष्ट झेलक
अथक परिश्रम करके आप इस कार्य में सफल हो गए। प्रवास
तीयों के लिए आज तक इतना बड़ा कार्य किसी ने भी न
ा था।

१९१९ में फौजी शासन से पीडित पंजाब की आपने जो से
वह सराहनीय है। आपकी इस सेवा का उल्लेख करते हु
धी जी ने 'नवजीवन' के नवम्बर के अंकों में लिखा था—"मिस्ट
ड्रूज ने पंजाब की जो सेवा की है उसका अनुमान कर
म्भव है। उन्होंने अपना कार्य अदृश्य रीति से किया है
० एण्ड्रूज के विषय में यह कहावत ठीक तरह चरिता
ी है। उनका दाहिना हाथ भी नहीं जानता कि उनका बा
थ क्या काम करता है। मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ल
के मि० एण्ड्रूज की सेवा शुद्ध गुप्त दान के समान है। जह
दूसरों का पहुँचना मुश्किल है उन स्थानों में मि० एण्ड्रू
च सके हैं।" इसमें सन्देह नहीं कि पंजाब की आपत्ति के दिनो
पने पंजाबी भाइयों की जो सेवा की, वह भारत के इतिहास
र्णाक्षरों में लिखने योग्य है। ज्यों ही पंजाब में अत्याचार हो
म्भ हुए त्यों ही आप शान्ति-निकेतन के शान्तिमय जीवन

आपने दिल्ली-निवासियों की आज्ञा मानकर पहले वहीं कार्य आरम्भ किया। स्वामी श्रद्धानन्द, हकीम अजमलखाँ तथा डाक्टर अन्सारी के साथ मिलकर नगर में शान्ति स्थापित करने के लिए आपने प्रशंसनीय कार्य किया। इसके पश्चात आप पंजाब को रवाना हुए, किन्तु अमृतसर पहुँचते ही आप पंजाब की फौजी सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिये गए और आपको पंजाब जाने की आज्ञा नहीं मिली। आपको वापस दिल्ली भेज दिया गया। अगस्त १६१६ में आपको सीलोन की मजदूर-सहायक-सभा की ओर से सीलोन आने का निमंत्रण मिला। आप तुरन्त ही सीलोन पहुँच गए और वहाँ के मजदूरों की भरसक सहायता की। पंजाब में 'मार्शल ला' हट जाने पर पुनः पंजाब गये। लाहौर जाकर वहाँ के विद्यार्थियों की कठिनाइयाँ दूर कराईं। कर्नल फ्रांक जानसन की मेहरबानी से कितने ही विद्यार्थी स्कूलों और कालिजों से निकाल दिये गए थे। इन विद्यार्थियों को क्षमा प्रदान कराना आप ही का काम था। तत्पश्चात् आप अमृतसर गये और वहाँ जाकर आपने जलियाँवाला बाग के दर्शन किये और वह गली भी देखी जहाँ हिन्दुस्तानी पेट के बल चलाये गए थे। इन्हें देखकर आपके दिल को बड़ा भारी धक्का लगा। अमृतसर में अनेक दिन कार्य करने के बाद आप गुजरानवाला गये। वहाँ के निवासियों पर जो जुर्माना हुआ था उसे आपने बहुत-कुछ घटवा दिया। विधवाओं और असमर्थों से भी जो टैक्स जुर्माने के तौर पर लिया जाने वाला था उसे आपने बिलकुल दूर करवा दिया। पश्चात् आप वजीराबाद, रामनगर, साँगला, लायलपुर इत्यादि अनेक नगरों में गये और वहाँ मार्शल ला के अत्याचारों की जाँच की। दूर-दूर के गाँवों से ...

किया। मानियावाला और रामनगर में अनेक स्त्रियाँ आकर आपके चरणों में माथा टेकतीं और जाते समय आपके वस्त्रों को छूतीं तथा आँखों में आँसू भरकर कहतीं 'तू साडा रब है।' इन स्त्रियों की भक्ति का कारण यही था कि मि० एण्ड्रूज़ के मुखमंडल से गम्भीर शान्ति और आकर्षक धार्मिकता टपकती थी।

पंजाब से वापस आकर आप २३ नवम्बर १९१९ को पूर्वी अफ्रीका के लिए रवाना हो गए। वहाँ पहुँचते ही आपको आर्थिक कमीशन की रिपोर्ट पढ़ने को मिली। इसमें भारतीयों के चरित्र पर बड़े घृणित आक्षेप किये गए थे। इस रिपोर्ट को पढ़कर आपने कुछ दिन पूर्वी अफ्रीका में ही रहने का निश्चय किया। वहाँ आप बहुत-से स्थानों में घूमे और वहाँ के प्रवासी भारतीयों की भलाई के लिए अनेक लेख लिखे। इन लेखों के कारण ही भारतीय जनता का ध्यान पूर्वी अफ्रीका के प्रश्नों की ओर गया। आपका पूर्वी अफ्रीका सम्बन्धी कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनेक कठिनाइयाँ उठाकर भी आपने वहाँ के भारतीय मजदूरों की सहायता की।

मार्च १९२० में आप पूर्वी अफ्रीका से भारत लौट आये। अप्रैल में आपने गुरुदेव श्री टैगोर के साथ गुजरात और काठियावाड़ की यात्रा की। जुलाई सन् १९२० में आप स्व० पण्डित सत्यनारायण जी कविरत्न के चित्र को खोलने फ़ीरोज़ाबाद गये। प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा पर वहाँ आपने बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया था। तत्पश्चात् आपने गुजरात तथा सिन्ध की यात्रा की। शिमला प्रान्त के बेगारियों की अवस्था देखने आपको कोटगढ़ भी जाना पड़ा था। पूर्वी अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के विषय में व्याख्यान देने के लिए आपको बम्बई की

भी आपने ही सुलझाया था। इसके पश्चात् लखनऊ में ओ० आर० आर० रेल के कई हज़ार मज़दूरों की हड़ताल का समझौता कराया।

वास्तव में यदि मि० एण्ड्रूज की सेवाओं का विस्तार से वर्णन किया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। आपकी कार्यशक्ति आश्चर्यजनक थी। आपने कभी विश्राम नहीं किया। बीमारी की अवस्था में भी आप बराबर सेवा-कार्य करते रहे। बहुत कम व्यक्ति ऐसे सौभाग्यशाली होते हैं, जिनके मस्तिष्क इतने महान् और हृदय उदार हों; उच्चकोटि की विद्वत्ता और उत्कट मानव-समाज-प्रेम परमात्मा विरले ही पुरुषों को प्रदान करता है। मि० एण्ड्रूज ने अपने जीवन का अन्तिम साँस तक भारतीयों की सेवा में व्यतीत किया। आपके त्याग, तपस्या तथा सेवा-कार्य की उपमा संसार में मुश्किल से ही मिलेगी। आप की महान् सेवाओं के प्रति भारतीय जनता चिर-कृतज्ञ रहेगी और स्वाधीन भारत के इतिहास में आपका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।



: १७ :

श्री तेजबहादुर सप्रू

[जन्म सन् १८७५ : मृत्यु सन् १९४९]

"जो धर्म अछूतों के साथ न्याय नहीं करता, सार्वजनिक मामलों में जो उनको बराबरी का स्थान नहीं देता यदि वही हिन्दू धर्म है तो हम उसके हामी नहीं हैं। यदि कोई ऐसा धर्म-शास्त्र है जिसमें ऐसे धर्म की व्यवस्था दी गई है तो वह शास्त्र भी हमें मान्य नहीं है।...... यदि आप हरिजनों को बराबरी का अधिकार नहीं देते तो स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं है।"

विधान के पण्डित, शान्ति के अग्रदूत, समस्या सुलझाने में चतुर, मधुर-भाषी, राजा और प्रजा में समानरूप से सम्मानित श्री तेज-बहादुर सप्रू ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तम-दास टण्डन से कहा था :—"यह हमारी अन्तिम भेंट है। अब मैं जा रहा हूँ, मैं आधि-व्याधि-रहित उस स्थान पर जा रहा हूँ जहाँ गान्धीजी गए हैं।" समाज-सुधार और देश की आजादी—दोनों की लगन उनमें काफी थी। कानून में वह बहुत होशियार थे। श्री



श्री तेजबहादुर सप्रू

आम लोगों से इतना दिल खोलकर नहीं मिल सकते थे। इसीलि
ता की ताकत में भी उन्हें विश्वास न था। 'इन्कलाब'
न-क्रान्ति' के नाम से वह कोसों दूर थे। उनकी गिनती उस जम
नरम दल के नेताओं में थी। वह हद दरजे के आत्माभिमानी अ
ददार थे। अंग्रेजों और खासकर अंग्रेज-अफसरों के साथ उन
ाव हमेशा जबरदस्त आत्म-सम्मान और 'ठैं' का होता था। र
उनमें आखिर तक कायम रही। यूरोप के और विशेष
ंगलिस्तान के बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञों के साथ उनका व्यवह
और शान का रहा। दो शब्दों में श्री सप्रू उस खड्ग के सम
जिसकी धार साँप की तरह लचीली होती है।

श्री सप्रू का जन्म ८ सितम्बर १८७५ को अलीगढ़ में हुआ था
के दादा श्री राधाकृष्ण युक्तप्रान्त में सरकारी अधिकारी थे अ
ा श्री अम्बिकाप्रसाद घर-जायदाद का प्रबन्ध किया करते थे। व
मीरी पण्डित थे और दिल्ली में काली मस्जिद के निकट क
का निवास-स्थान था। १५ वर्ष की सुकुमार अवस्था में कुशाग्र
र सप्रू ने प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की और आगरा-कालिज
ष्ट हुए। वह वाद-विवाद में अप्रतिम थे और उन्होंने बी० ए
नर्स) में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके अनन्तर एक ही वर्ष
एम. ए. में प्रथम आए, जब कि अनेकों युवक दो-दो वर्ष पढ़क
कहीं द्वितीय श्रेणी प्राप्त करते हैं। एल.-एल. बी. में भी स
न-प्रतिष्ठ रहे।

युवक तेज ने मुरादाबाद में वकालत प्रारम्भ की, पर वहाँ सिर

कुछ मुकदमे देने लगे। इस शुभ घड़ी से उनका जो उत्थान आरम्भ हुआ वह जीवन के अन्तिम क्षण तक द्विगुणित होकर स्थायी रहा। वह चिर-प्रख्यात पण्डित सुन्दरलाल, पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा जे० सी० चौधरी के समकक्ष वकील हो गए। उनकी शान्त भाषण-शैली, अकाट्य तर्क और प्रसन्न मुद्रा से न्यायाधीश केवल प्रभावित ही नहीं होते थे; प्रत्युत उनकी मुहुर्मुहुः प्रशंसा भी करते थे। यद्यपि इंग्लैण्ड के परम प्रसिद्ध विधान-पण्डित श्री एस्क्विथ की-सी तेजस्विता उनमें न थी, तथापि लार्ड रीडिंग की प्रसन्न-वदनता का गुण उनमें अवश्य था। उनका मस्तिष्क सन्तुलित था, जो यावज्जीवन वैसा ही गतिशील रहा।

सन् १९०० में श्री सप्रू ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। १९१३ में वह 'प्रान्तीय-व्यवस्थापिका-परिषद्' के सदस्य निर्वाचित हुए। १९२० से १९२२ तक उन्होंने कानून-मन्त्री का पद सुशोभित किया, जब कि लार्ड चेम्सफोर्ड का शासन-काल था। स्वास्थ्य के ठीक न रहने से उन्होंने इस पद को तिलांजलि दे दी। तथापि लार्डद्वय चेम्सफोर्ड और रीडिंग उनसे कानूनी परामर्श अवश्य लेते थे। वह उदार दल के अनुयायी थे और दो बार उसके सभापति बने, तथापि उनकी नीति सदा सन्तुलित होती हुई भी देश के लिए अग्रगामिनी अवश्य रही। श्री सप्रू के अगाध ज्ञान, ऐतिहासिक और राजनीति-ज्ञता का परिचय उसी समय लोक-नेताओं और जनता को हुआ जब कि उन्होंने तीनों गोल मेज परिषदों में भाग लिया। कानून की दल-दल में फँसी और रपटने वाली गाड़ी को निकालने में जब कि लोग बगलें झाँकते, तो वही समर्थ होते थे। मानो विधाता ने समस्या

ते थे। जिस समय लार्ड रीडिंग हिन्दुस्तान के वायसराय होकर ये, उस समय उनकी कौन्सिल के मेम्बरों में श्री तेजबहादुर सप्रू भी । उस समय महात्मा गान्धी का असहयोग-आन्दोलन जोरों पर था र प्रिन्स आफ वेल्स के स्वागत के अवसर पर हड़तालों की धूम मची थी। उन दिनों पर श्री सप्रू ने बड़ी खूबी के साथ लार्ड रीडिंग को पनी मुट्ठी में कर लिया था। यदि उस समय देश के कुछ नेताओं मामूली समझ-बूझ से भी काम लिया होता, तो उस समय के तेहास में हमारी हार-पर-हार का जिक्र तक न रहता। उस गलती सबसे ज्यादा जिम्मेदारी महात्मा गान्धी के ऊपर है। स्व० शबन्धु सी० आर० दास तो श्री सप्रू की बताई हुई शर्तों के मुता- क सरकार के साथ समझौता करने के लिए तैयार थे। कुछ लोगों अदूरदर्शिता के कारण यह समझौता न हो सका। देशबन्धु सी. र. दास ने उन दिनों कई बार अपने भाषणों एवं वक्तव्यों में हात्मा गान्धी की इस भूल की तीव्र आलोचना की थी। केवल यसराय की कौंसिल पर ही श्री सप्रू का रोब नहीं था, प्रत्युत सेम्बली के सारे गैर-सरकारी मेम्बर भी उनके इशारे पर नाचा करते । पहली असेम्बली पर श्री सप्रू की धाक यहाँ तक जमी हुई थी , प्रजा और सरकार दोनों ही सर तेज के रुख से ताड़ जाती थी : असेम्बली के मेम्बर किसी प्रश्न विशेष के सम्बन्ध में अपनी मूल्य सम्मति किस तरफ देंगे।

आइये, हम आपको फरवरी १६२८ की एक घटना सुनायें, जिससे पको मालूम हो जायगा कि श्री तेज सप्रू यद्यपि तब न असेम्बली सदस्य थे और न वायसराय की कौंसिल के सदस्य ही, लेकिन उस मय श्री सप्रू सरकार का ...

श्री सप्रू भी दिल्ली में उस समय मौजूद थे। असेम्बली में भी वह दर्शक की हैसियत से बहस सुनने के लिए उपस्थित रहते थे। बहस तो साइमन-कमीशन पर हो रही थी, लेकिन मजा यह था कि साइमन-कमीशन का जिक्र दोनों पक्ष के बोलने वाले यदि एक-आध दफा करते थे, तो श्री सप्रू का दस बार। दर्शकों को तो यही मालूम हो रहा था कि बहस का विषय साइमन के सात सयाने नहीं, प्रत्युत श्री तेजबहादुर सप्रू हैं। असहयोगी दल इस बात पर जोर देता था कि श्री सप्रू—जो किसी समय भारत-सरकार के 'ला-मेम्बर' रह चुके हैं—इस कमीशन के विरोधी हैं। सरकार की ओर से कहा जाता था कि नहीं, श्री सप्रू की राय ठीक नहीं है। कहाँ साइमन-कमीशन, कहाँ श्री सप्रू! न तब वह भारत-सरकार के 'ला-मेम्बर' थे और न उसकी असेम्बली से ही उनका कोई सम्बन्ध था। लेकिन श्री सप्रू के राजनीतिक महत्त्व के सामने क्या सरकारी और क्या गैर-सरकारी सदस्य सभी अपना सिर झुकाने में निमग्न थे। उसी समय वाइसराय की कौंसिल के एक सदस्य श्री सप्रू से मिले। उन्होंने हँसकर उनसे कहा था कि "असेम्बली की यह बहस वास्तव में दो आदमियों की लड़ाई है—एक ओर भारत-सरकार के वर्तमान 'ला-मेम्बर' मि० एस० आर० दास; और दूसरी ओर भूतपूर्व 'ला-मेम्बर' श्री तेजबहादुर सप्रू।" कहते हैं कि उस समय हँसते हुए डाक्टर सप्रू ने यह उत्तर दिया था—"यह ठीक नहीं है। जब मैं 'ला-मेम्बर' था तब असेम्बली के मेम्बर मेरी मुट्ठी में थे, और अब—जब मैं 'ला-मेम्बर' नहीं हूँ तब भी—असेम्बली मेरी मुट्ठी में है। यही मैं तुम्हें दिखा देना चाहता हूँ।"

इसी प्रकार 'नेहरू-कमेटी' में भी श्री सप्रू ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया था।

था। बैल से दूध दुहना आसान है, किन्तु मोतीलाल नेहरू के म का बदलना नितान्त असम्भव था। इस असम्भव को सम्भव क दिखाना श्री सप्रू का ही काम था। इसी तरह से सिन्ध और पंजाब के विषय में जो हिन्दुओं और मुसलमानों में मतभेद था, उसे समूल उखाड़ फेंकने में भी श्री सप्रू ने जो विलक्षण चतुरता दिखाई, वह अपूर्व है।

डाक्टर सप्रू की इस अपूर्व सफलता का क्या रहस्य था? वे न मक्कार थे, न चाल-बाज। झूठ बोलकर या झूठे वायदे करके लोगों को फुसलाने की चेष्टा करना उनके लिए सर्वथा असम्भव था। उनकी जीत इसलिए होती थी कि सब जानते थे कि उनमें स्वार्थ छू तक भी नहीं गया है। उनमें किसी मसले की तह तक पहुँचने की अद्भुत शक्ति थी। इतना ही नहीं, हर प्रश्न के अनुकूल और प्रतिकूल क्या कहा जा सकता है, उसे वे प्रयत्न से नहीं, किन्तु स्वतः समझ लेते थे। जहाँ पर जातिगत या स्वार्थपूर्ण विरोधी भावों का द्वन्द्व मचा रहता है, वहाँ पर कुशल-राजनीतिज्ञ के लिए समस्या को इस ढंग से हल करने की आवश्यकता होती है कि जहाँ वह न्याय करे, वहाँ उसे इस बात का भी खयाल रहे कि विरोधी भावों के विरोध को मिटाकर और देश या समाज को बलवान बनाकर संगठित रूप से ाम करने के लिए उसे योग्य बनाये। श्री सप्रू इस गुण में अद्वितीय थे। यह संसार का दुर्भाग्य है कि श्री सप्रू का जन्म एक पराधीन श में हुआ था। यदि वह किसी स्वतन्त्र देश में पैदा हुए होते, तो ़ आसानी से दुनिया के बड़े-से-बड़े धुरन्धर नेताओं के भी ुआ होते।

ा और अचम्भे के साथ देखा कि हिन्दुस्तानी सप्रू के मुकाबले
ैस्मट्स के पैर उखड़ गए। सारे यूरोप में इस घटना से सनसन
ा गई। इंग्लैण्ड के अखबारों में बहुत दिनों तक इसी बात पर चर
ा होती रही। यहाँ तक कि उन दिनों २० लाख से भी अधि
ने वाले 'डेली मेल' नामक दैनिक पत्र ने तो यहाँ तक लिख दि
कि "सप्रू ने स्मट्स को पछाड़ दिया।" दूसरी 'इम्पीरिय
फ्रेंस' में भी यही हाल रहा था। हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानी
ज्ज़ती देखकर इस स्वदेशाभिमानी की आँखों में खून बरसने लगत
। यही कारण था कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों के घातक परिणामों
ते हुए, डाक्टर सप्रू दोनों ही जातियों की मूर्खता पर बुरी तर
ड़ते थे।

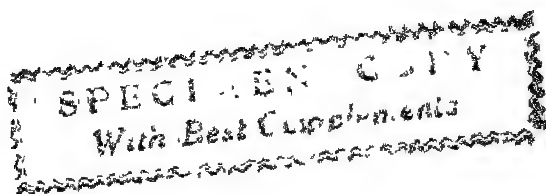
खुद इन्क़लाबी रुझान न रखते हुए भी श्री सप्रू के दिल में नर
ा के राज-काजी नेताओं और क्रान्तिकारियों की बड़ी इज्जत थी। व
नसे प्यार ही करते थे और अक्सर उनकी कद्र भी। जिन दि
ग्रेस सत्याग्रह करके जेल भर रही थी उन दिनों जेलों के अन्द
ने वाली कांग्रेसी कैदियों की हालत को सुनकर और देखकर श्री स
दिल अनेक बार पिघल जाता था। वह फड़फड़ाने लगते थे। व
र उनके आँसू भी गिर पड़ते थे। पर खुद जेल जाना उनके बूते
हर की चीज थी।

सन् १९१७ में जब 'होमरूल-लीग' का आन्दोलन शुरू हुआ
ा श्रीमती एनी बेसेण्ट की रहनुमाई में श्री सप्रू 'होमरूल लीग'
ास नेताओं में से थे। यू० पी० 'होमरूल लीग' के वह उपसभाप

काम किया वह सर्व-विदित है। उनका निजी चरित्र देवोपम था। वह विधान-शास्त्री होते हुए भी शुष्क-हृदय नहीं थे। प्रारम्भ से उनका झुकाव उर्दू और तत्त्व-सम्बन्धी साहित्य की ओर था, तथापि अन्यान्य भाषाओं से भी उनका परिचय था। वार्तालाप के समय कभी-कभी उनकी सूक्तियाँ हृदय-हारिणी अवश्य होती थीं। वह मितभाषी और शिष्ट थे। सभी नेताओं में उनका समान आदर था। उनके कानूनी ज्ञान का उपयोग भारत का विधान बनते समय उनकी अस्वस्थता के कारण न हो सका। वह स्वस्थ होते तो आज विधान-परिषद् के वह प्रमुख सरकारी वक्ता और अधिनायक होते।

श्री सप्रू ने यद्यपि अच्छी आयु पाई तथापि उनके अवसान से भारत का सर्वोत्तम विधान-पंडित, कार्य-कुशल राजनीतिज्ञ, सत्परामर्श-दाता, हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का समन्वयकर्ता और प्रयाग के प्राचीन नेताओं की परम्परा का अन्तिम दुर्ग ढह गया। सप्रू-जैसे सुपुत्रों से ही भारत का मुख समुज्ज्वल हुआ है: और उसे इसका पूर्ण गर्व भी है।





: १८ :

भूलाभाई देसाई

[जन्म सन् १८७७ : मृत्यु सन् १९४६]

"यदि हममें से अधिकांश एक विचार प्रगट करते हैं तो उसकी कद्र की जानी चाहिए और उसका सम्मान इसलिए किया जाना चाहिए कि जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है। लेकिन यह कद्र इंग्लैण्ड में होती है। भारत में तो जनता की आवाज गुबरैले कीड़े की है।"

विशाल देदीप्यमान ललाट, उन्नत भौंहें, असाधारण प्रतिभा और सत्यनिष्ठा की द्योतक गम्भीर आँखें, न्यायप्रियता की प्रतीक चिपट नासिका और मनोमोहक चिबुक : इन रेखाओं द्वारा श्री भूलाभाई देसाई के आनन-चित्र की योजना होती है। कौन जानता था कि बम्बई का एक प्रतिष्ठित वकील हाईकोर्ट के ठाठ-बाट के जीवन से ऊँचा उठकर महात्मा गान्धी का अनुगामी बन जायगा और फिर एक दिन एक फौजी न्यायालय के सम्मुख ताल ठोककर कहेगा—"किसी व्यक्तिगत मामले पर नहीं, अपितु आजाद हिंद फौज के कानून तथा उसकी प्रतिभा पर इस न्यायालय को विचार करना है। उसे यह निर्णय करना है कि क्या कोई



भूलाभाई देसाई

क ऐसी अवस्था में किसी राष्ट्र अथवा उसके-एक अंग को यह
द्ध करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।"

गुजरात में सूरत जिले के कुलसर नाम के गाँव में १३ अक्तू-
र १८७७ को श्री भूलाभाई देसाई ने जन्म लिया। यह स्थान
सिद्ध बारदोली के अत्यन्त निकट है। आपने गुजरात के उस प्रसिद्ध
नाविल वंश में जन्म लिया जो स्वातन्त्र्य-प्रेम एवं विद्वत्ता के लिए
सिद्ध रहा है। आपके पिता एक यशस्वी सरकारी वकील थे। भूला-
ाई देसाई ने अपने उस यशस्वी वंश की कीर्ति में चार चाँद ही
गाए हैं।

आपका शिक्षण बम्बई के एलफिंस्टन कालिज में हुआ। आपकी
शल बुद्धि का जाग्रत प्रमाण यही है कि आपने अपनी बी० ए० की
रीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। आपको आई० सी० एस० के लिए
ग्लैण्ड जाने के लिए सरकार की ओर से छात्रवृत्ति भी मिल रही थी,
रन्तु वे पारिवारिक कठिनाइयों के कारण इंग्लैण्ड न जा सके। भला
स व्यक्ति को ब्रिटिश राज्य के विरोध में एक बड़ा विकट भूचाल
नना था, उसी व्यक्ति का ब्रिटिश राज्य का एक स्तम्भ बनना भगवान्
से स्वीकार कर सकते थे? तत्पश्चात् एम० ए० की उपाधि प्राप्त करके
प अहमदाबाद के गुजरात-कालिज में इतिहास तथा अर्थ-शास्त्र के
फेसर बन गए। दो वर्ष तक अध्यापन-कार्य तो आप करते ही रहे,
न्तु साथ ही अपने अवकाश का आपने अध्यवसाय-पूर्ण सदुपयोग
ह किया कि उसी बीच में आपने एल-एल० बी० की डिग्री भी प्राप्त
र ली।

अब प्रोफेसरी की अपेक्षा वकालत में आपको अधिक आकर्षण

का ही कार्य था कि कुछ ही समय में आपने अपनी प्रैक्टिस चमका ही नहीं ली, प्रत्युत यूरोपियन बैरिस्टरों के ऊपर अपनी धाक जमा ली एवं उनके हृदयों में अपने लिए सम्मानपूर्ण स्थान भी बना लिया। ऐसे प्रतिभा-शाली व्यक्ति के लिए कुछ समय तक बम्बई का स्थानापन्न एडवोकेट जनरल रहना कोई आश्चर्यजनक बात न थी।

यह कोई अत्यन्त विस्मय की बात नहीं है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को अनेक नेता वकालत के क्षेत्र से ही प्राप्त हुए हैं। सविधि कानून का अध्ययन करने के पश्चात् वकालत प्रारम्भ करते ही इन शिक्षित न्याय-वेत्ताओं को ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता की पोल का पता चल जाता था। इस सबका कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद ही था; अतएव उनके लिए यह स्वाभाविक हो जाता था कि वे ब्रिटिश सरकार के विरोध में आवाज उठायें और जनमत जागृत करें। महात्मा गान्धी, मोतीलाल नेहरू तथा इसी प्रकार के अनेक व्यक्तियों की भाँति श्री भूलाभाई देसाई भी वकालत के क्षेत्र से ही राजनीति में आए। पं० मोतीलाल नेहरू की भाँति ही देसाई भी पहले उदारवादी के रूप में ही दृष्टिगोचर हुए। होमरूल-आन्दोलन में आपने एनी बेसेंट एवं मुहम्मदअली जिन्ना को सहयोग दिया। बम्बई में उक्त आन्दोलन की सफलता एवं व्यापकता का अधिकांश श्रेय श्री देसाई को ही है। तभी आप महात्मा गान्धी एवं सरदार पटेल के परिचय में भी आए। बारदोली आंदोलन के प्रारम्भ से पूर्व ही वे गुजरात के किसानों की सेवा को अपना ध्येय बना चुके थे। सरकार द्वारा नियुक्त की गई ब्रूमफील्ड-कमेटी के समक्ष आपने किसानों की ओर से प्रभावपूर्ण साक्षी दी थी। इसी प्रकार तीन वर्ष बाद १९३१ में आपने बारदोली-जाँच-कमेटी में भी किसानों की ओर से

हुआ कि पल-भर में आपकी सारी उदारवादिता एवं नरमदली ह० हो गई और सन् १९३० के उस धुआँधार समय में जब कांग्रेस तेज से आन्दोलनों को सँभालती हुई आगे बढ़ रही थी और नरमदली नेत हाथ-पर-हाथ धरे बैठे थे, तब आप कांग्रेस में सम्मिलित हो गए। संसार ने आपके इस परिवर्तन को बड़े विस्मय के साथ देखा, परन्तु किसानों की वास्तविक अवस्था का इतने निकट से अध्ययन करने के पश्चात् अब फिर तटस्थ दर्शक-मात्र बने रहना और वैधानिक सुधारों के भरोसे ही बैठना उनके लिए असह्य हो गया। कहने का तात्पर्य यही है कि परिस्थिति के गम्भीर मनन के पश्चात् ही आप इस निश्चय पर पहुँचे थे। क्षणिक उत्तेजना अथवा भावुकता के कारण ही आप कांग्रेस में नहीं कूद पड़े थे। परन्तु बहुतों की समझ में उस समय यह बात नहीं आई की सत्याग्रह के इस दुर्गम पथ में देसाई कैसे चल पड़े? पं० मोतीलाल नेहरू जिन कारणों से इस ओर आकृष्ट हुए थे वे कारण देसाई के सम्मुख न थे। गान्धी-जी के सम्मोहन प्रभाव के कारण ही देसाई ने यह संकल्प किया हो, यह बात भी नहीं, क्योंकि यदि ऐसा होता तो वे सन् २० के असहयोग-आन्दोलन में ही कांग्रेस में सम्मिलित हो गए होते।

इसी तथ्य को अप विजगापट्टम के भाषण में उन्होंने स्वीकार करते हुए कहा :—"मैं न तो भावुकता के कारण इस महापथ के थिक होने वाले व्यक्तियों में हूँ और न उन लोगों में से हूँ जो ीघ्र ही स्वाधीनता-प्राप्ति की आशा से राजनीति मे आए हैं। मैं तो ान-बूझकर एक निश्चित उद्देश्य के साथ इस सत्याग्रह-आन्दोलन सम्मिलित हुआ हूँ। मैं जानता हूँ कि स्वतन्त्रता के आन्दोलन कोई प्रारम्भ होता है ...

अन्तिम अवसर पर हमारी संख्या दस लाख ही नहीं, वर
ढ़े तैंतीस करोड़ हो जायगी। तब एक भी आदमी बाहर
ृगा, और जो लोग इस समय विदेशी आधिपत्य को काय
रने पर तुले हुए हैं, वे भी हमारे साथ होंगे।"

श्री भूलाभाई सन् १९३२ में सत्याग्रह-आन्दोलन में सम्मिलि
ए। आपको दस हजार रुपये का जुर्माना और एक साल की कैद
ना दी गई। जेल से बाहर आने के बाद सन् १९३३ में आप
नेवा में सम्पन्न होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भारत का प्रति
धित्व किया। सन् १९३७ में कांग्रेस-पार्लमेंटरी-बोर्ड के संगठन
आपने विशद भाग लिया। पहले वे बोर्ड के कोषाध्यक्ष और मं
चुके थे, बाद में अध्यक्ष बनाये गए। दिसम्बर १९४० में सत्याग्र
भाग लेने के कारण भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत आपको पु
रावास में डाल दिया गया, परन्तु अस्वस्थता के कारण एक व
द आपको छोड़ दिया गया।

बंबई की प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के अध्यक्ष के पद से भी आप
ग्र की खूब सेवा की। कांग्रेस ने आपकी सेवाओं का प्रतिफल आप
न्द्रीय धारा-सभा में अपना नेता चुनकर दिया। एक विरोधी दल
ता के रूप में श्री भूलाभाई देसाई ने जो प्रसिद्धि प्राप्त की, वह स
दित है। इस सम्बन्ध में आपकी तुलना पं० मोतीलाल नेह
की जाती है और यह स्वीकृत किया जाता है कि सर्वांश में आप
० मोतीलाल द्वारा रिक्त किये गए स्थान की पूर्ति कर दी। यह म
लिया जाय कि पं० मोतीलाल-जैसी ओजस्विता, दृढ़ता तथा शास
क्षता उनमें न थी फिर भी एक मंजा़दिल मोर्चे की स्थाप

ती पड़ी, इस सबका सारा श्रेय श्री देसाई को ही है।

आपके भाषणों को सुनने के लिए असेम्बली-भवन की गैलरी ठसाठस भरी रहती थी, यह आपके भाषण-कौशल का सजीव प्रमाण है। ग दूर-दूर से श्री देसाई के व्याख्यानों को सुनने के लिए आते थे र उनके भाषणों के ही कारण असेम्बली की कार्यवाहियों में जन-धारण को भी आनन्द आने लगा था। गंगा के प्रवाह की भाँति -हर करती हुई वक्तृता, अकाट्य युक्तियों से अपने उद्देश्य को सजाने कौशल तथा स्पष्ट रूप से अपने अभिप्रेत को जन-साधारण के सम्मुख देने की ऐसी क्षमता किसी और में एकत्र नहीं पाई गई।

इस प्रकार आपने नौ वर्ष तक केन्द्रीय धारा-सभा में कांग्रेस-र्टी का नेतृत्व किया। आपके कार्य-कौशल के कारण मुस्लिम लीग-से अन्य दलों का सहयोग भी जब-तब सरकार के प्रस्तावों को कराने में मिल जाता था। यहाँ तक कहा जाता है कि जिन दिनों सान-ांसिस्को में सम्मेलन हो रहा था। आपने केन्द्रीय धारा-सभा के एक अधिवेशन में सरकार को २७ बार पराजित किया था। इस प्रकार ापकी वक्तृता निश्चय ही दर्शन और श्रवण की वस्तु होती थी, सभी सका लोहा मानकर आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। उनके भाषणों सुनने का लोभ संवरण करना कठिन था। उनकी युक्तियों की चोट आगे सरकार भी तिलमिलाकर रह जाती थी।

शिमला-सम्मेलन का भारत के राष्ट्रीय इतिहास में अत्यन्त महत्त्व है। श्री देसाई की गणना उसके प्रमुख सूत्रधारों में की जानी चाहिए। न् १९४२ से कारावास में पड़े हुए समग्र राष्ट्रीय नेता एकदम छोड़ दिये गए और शिमला में सरकार तथा देश की दो प्रमुख राजनीतिक

लियाकतअली के साथ केन्द्र में एक प्रतिनिधित्वपूर्ण सरकार स्थापित करने के विषय में किया गया समझौता ही था।

चाहे शिमला-सम्मेलन असफल रहा हो अथवा लियाकत-देसाई-समझौते को कांग्रेस-कार्य-समिति ने पसन्द न किया हो—परन्तु इससे श्री देसाई के प्रयत्नों का महत्त्व कम नहीं हो जाता। कम-से-कम कुछ समय के लिए उस समझौते के कारण केन्द्रीय-धारा-सभा में विरोधी दल (जो कांग्रेस और लीग दोनों का संगठित दल हो गया था) अत्यन्त प्रबल हो गया और भारतीय सरकार को न केवल देश में अपितु विदेश में भी बार-बार मुँह की खानी पड़ी थी।

कहा जाता है कि कांग्रेस-कार्य-समिति के इस रुख का श्री देसाई पर भीषण प्रभाव पड़ा। शिमला-सम्मेलन में उनको स्थान न मिला, यह उनके लिए सबसे बड़े दुःख की बात थी। इन कारणों से वे सक्रिय राजनीति से अलग हो गए। डा० खरे का कहना है कि आगे चलकर यह मानसिक आघात ही उनकी मृत्यु का कारण बना। इस बात में चाहे तथ्य हो अथवा न हो, इतना तो निर्विवाद ही है कि उनके एका-एक राजनीति से अलग हो जाने के मूल में अवश्य ऐसा ही कोई कारण रहा होगा।

अभी श्री देसाई को अपनी मृत्यु के पूर्व एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करना था। यह कार्य था आजाद हिन्द फौज के तीन सैनिकों के मुकद्मे की पैरवी करना। फौजी न्यायालय के सम्मुख अत्यन्त लगन के साथ आपने शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन के ऊपर लगाये गए अपराधों की धज्जियाँ उड़ा दीं। एक बार फिर जन-समूह आपके तर्कपूर्ण और युक्तियुक्त व्याख्यानों को सुनने और पढ़ने के लिए व्यग्र हो

ः जाते हैं, परन्तु जनता के प्रतिनिधियों का नेतृत्व करने में आपक
सफलता मिली, वह सर्वविदित ही है। वे कई वर्षों तक कांग्रेस
र्य-समिति के सदस्य रहे। सन् १९४२ में ही आपने उससे त्यागप
या। अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उन्होंने कभ
-हित का बलिदान नहीं किया। आत्म-सम्मान और दृढ़ता की भावः
में कूट-कूट कर भरी थी। बम्बई प्रान्त की शासन-परिषद् का सदस
ने अथवा हाईकोर्ट का जज बनने से तो उन्होंने इन्कार कर दि
या, भारत-सरकार के कानून-सदस्य बनने का लोभ भी उनको उनव
द्धान्तों से विचलित न कर सका। भला वे विदेशी साम्राज्यवाद व
म किस प्रकार बन सकते थे? उनमें तो देश-प्रेम कूट-कूट कर भर
ा था।

इस प्रकार के स्वार्थ हीन तथा दृढ़ व्यक्ति की यदि शत्रु-मित्र सभ
सा करें, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। रविवार, ६ मई
१९४६ को आपकी असामयिक मृत्यु से देश-भर में शोक की
र दौड़ गई। सभी ने हार्दिक दुःख प्रकट किया, पत्त वालों ने भी,
क्षियों ने भी। यों तो भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन में बहुमुखी
ार-धाराएँ और प्रवृत्तियाँ चलती रही हैं। एक विचार वाले दूसरे
की कटु आलोचना करें, यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है।
भी उनकी व्यक्तिगत चरित्र-दृढ़ता और आत्म-विश्वास की सबने
ा की है। मातृभूमि और कांग्रेस की आपने जो अमूल्य सेवाएँ
हैं, उनके कारण भारतीय जनता सदैव आपको स्मरण रखेगी।

*

: १६ :

सरोजिनी नायडू

[जन्म सन् १८७६ : मृत्यु सन् १९४९]

"मैं कैसे तुम्हारे हृदय को उद्वेलित कर दूं, कैसे मैं वह आग भड़का दूं जो कभी न बुझ सके, जिससे तुम्हारी गुलामी, जिससे तुम्हारी फूट, जिससे वह सभी बातें—जो तुमको भूखा, नंगा और हताश बनाए हैं, दलित और जर्जर बनाए हैं— उस अमर अग्नि में राख हो जायं ?"

दोहरा और भारी बदन, विशुद्ध राष्ट्रीयता के तेज से प्रदीप्त चेहरा, दीर्घ नासिका, राष्ट्र-प्रेम की अमर-ज्योति लिये हुए बड़े-बड़े नेत्र, उन्नत एवं चौड़ा भाल, उस पर खिंची हुई सरलता एवं सौम्यता की अमिट रेखाएं; वे थीं भारत-कोकिला, देवी सरोजिनी नायडू ! भारत के युवक और युवतियों की प्रिय मानेश्वरी नायडू !! भारतीय नारीत्व का सर्वांगीण आदर्श रूप नायडू !!! जिसके प्रदीप्त स्पर्श से अगणित दीप-राशि ज्योतिष्पूर्ण हुई हैं, वही प्रज्वलित दीप-शिखा नायडू !!!! जिसमें आधुनिकता और प्राचीनता के सभी श्रेष्ठतम सनातन तत्वों ने एक पूर्ण सामंजस्य में समन्वित होकर एक आदर्श नारी व्यक्तित्व [illegible]

किया। [illegible]



सरोजिनी नायडू

लिखने और बोलने की शिक्षा तो आप माता के पेट से ही लेकर ती थीं। आप कविता में ही बोलतीं, लिखतीं और कविता में ही ती थीं। आपकी कविताएं जैसी ओजपूर्ण, सुन्दर और आकर्षक हैं, णी वैसी ही मधुर, सरस और प्रभावोत्पादक थी। देश ने आपको रत-कोकिला की जो उपाधि दी वह सत्य ही थी। आपकी सुमधुर णी सहज ही श्रोताओं को मुग्ध कर लेती थी।

आपका जन्म १३ फरवरी १८७९ को निज़ाम-राज्य हैदराबाद में क बंगाली डाक्टर अघोरनाथ चट्टोपाध्याय के घर में हुआ था। आपके ता जैसे विद्या-व्यसनी और शिक्षा-प्रेमी थे, माता भी उतनी ही विद्या रागिनी थीं और बंगला भाषा में कविता किया करती थीं। निजाम लिज आपके पिता डा० चट्टोपाध्याय के सद्प्रयत्नों का ही यश-कलश । बालिका सरोजिनी ने कवि हृदय मातृक व पैतृक उभय संस्कारों से स किया और काव्य-परिशीलन के उच्च और विशद वातावरण में आपका लालन-पालन हुआ। आपको बचपन से ही अंग्रेज़ी बोलनी सखाई गई थी, यही कारण है कि अंग्रेज़ी भाषा पर आपका असा धारण अधिकार था। १२ वर्ष की आयु में ही आपने मद्रास-यूनिवर्सिटी मैट्रिक की परीक्षा पास की, जो एक असाधारण घटना थी। आपके ता आपको गणित एवं विज्ञान की पंडिता बनाना चाहते थे, किन्तु आपकी काव्यप्रिय आत्मा को ये नीरस विषय रुचिकर नहीं लगे णित के प्रश्न धीरे-धीरे अनजाने में ही काव्य के भावों में परिणत हो जाते थे और बीज-गणित के नीरस अक्षर चुपचाप संगठित होकर एक रस कविता का सर्जन करने लग जाते थे। १३ वर्ष की आयु में आपने ः दिनों में 'लेडी आफ दी लेक' १३०० पंक्तियों की कविता लिख

भेजा गया। तीन वर्ष तक आप वहाँ किंग्स-कालेज में शिक्षा पाती रहीं इसी बीच आपने इटली की सैर की। वहाँ के सुन्दर और रमणीय दृश्यों से आपकी प्रतिभा और भी विकसित हो उठी।

सन् १८६८ में आप स्वदेश लौटीं। उसी वर्ष दिसम्बर मास में डा० गोविन्द राजूलु नायडू के साथ आपका अन्तर्जातीय और अन्तः-प्रान्तीय विवाह हुआ। आपके इस अन्तर्जातीय विवाह ने भारत के कट्टरपन्थी ब्राह्मण-समाज में एक तहलका मचा दिया था। किन्तु आपका विश्व-बन्धुत्व जाति-पाति व रंग-भेद की संकीर्णता से एकदम ऊँचा था। आपका गृहस्थ-जीवन बहुत सुखी, सम्पन्न और समृद्ध रहा। आपके चार सन्तान हैं—दो लड़के और दो लड़कियाँ। आपने रूढ़ियों के बन्धन को तोड़कर समाज-सुधार के सभी कार्यों और सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेना शुरू कर दिया। अंग्रेजी भाषा में लिखे गए आपके दो काव्य-ग्रन्थ 'बर्ड आफ टाइम' (समय-पक्षी) और 'गोल्डन थ्रेशहोल्ड' (स्वर्णिम देहली) अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। इंग्लैंड में उनकी धूम मच गई। अंग्रेजी भाषा के सुप्रसिद्ध आलोचक सर एडमण्ड ग्रेज ने आपके काव्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। भारतीय राष्ट्रीय नव-जागृति और स्वाधीनता-संग्राम के नेतृत्व में जब से आपने पदार्पण किया तब से आपकी कविता राष्ट्रीय जागरण और प्रोत्साहन का एक शक्तिशाली साधन बन गई। गान्धीजी के व्यक्तित्व से देश में जो महान् परिवर्तन उत्पन्न हुआ, उससे आप अलग न रह सकीं। आप उन कुछ व्यक्तियों में से थीं जिन्होंने अपने को गान्धीजी के पीछे देश-प्रेम में पागल बना दिया। गान्धीजी का सन्देश आपके कण्ठ की मधुर रागिनी बनकर विश्व-भर में गूँज उठा।

आपने १६१५ में भारत के राजनीतिक आन्दोलन और ...

थे। सन् १९१६ में श्री अम्बिकाचरण मजुमदार की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ उसमें आपने उस समय के कांग्रेस के ध्येय स्वायत्त-शासन पर एक बहुत ही प्रभावशाली भाषण दिया और अपनी वक्तृत्व-शक्ति से समस्त कांग्रेस को चकित कर दिया। उस समय से आप बराबर कांग्रेस के नेताओं में एक रही हैं। सन् १९१७ में आपने सारे देश का दौरा किया और जगह-जगह राजनीतिक विषयों पर व्याख्यान दिये। मद्रास में दिसम्बर मास में विविध विषयों पर आपके बहुत-से व्याख्यान हुए। मई सन् १९१८ में कांजीवरम् में मद्रास-प्रान्तीय कान्फ्रेंस की आप अध्यक्षा बनीं। १९१८ में आपने पुनः समस्त देश का दौरा किया। दिसम्बर में अखिल भारतीय सोशल-सर्विस कान्फ्रेंस का दूसरा वार्षिक अधिवेशन दिल्ली में आपकी अध्यक्षता में ही हुआ। १९१९ में आप फिर यूरोप गईं और जिनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री-मताधिकार परिषद् में आपने भाषण दिया। १९२२ के अन्त में आपने कांग्रेस की ओर से दक्षिण-अफ्रीका का दौरा किया। उसी वर्ष आप बम्बई-कारपोरेशन की सदस्या और बम्बई-प्रान्तीय-कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षा भी चुनी गईं। १९२३ में नागपुर में राष्ट्रीय झण्डे की सम्मान-रक्षा के लिए सत्याग्रह हुआ। उसके प्रचार के लिए आपने मध्यप्रान्त का दौरा किया। १९२५ में कानपुर-कांग्रेस का सभापतित्व आपने ही किया। उस समय देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगे जोरों पर थे और साम्प्रदायिकता का विष चारों ओर फैला हुआ था। उस समय राष्ट्रपति के आसन को सुशोभित करने के लिए ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो उससे एकदम ऊपर उठा हुआ हो और हिन्दू-मुसलमान सबका समान रूप से विश्वास-पात्र हो। आप उसके लिए सर्वथा योग्य और उपयुक्त थीं। गान्धीजी ने तो बेलगाँव में ही ...

ा:—"भारत माता की आज्ञाकारिणी पुत्री की हैसियत से मेर
ाम यह होगा कि अपनी माता का घर ठीक करूँ और इन शोच-
ीय झगड़ों का निपटारा करूँ।" वास्तव में इन आपस के झगड़ों को
िपटाने और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए आपने अथक परिश्रम
रके अपने इन शब्दों को चरितार्थ कर दिखाया। फिर आपने
हा था—"स्वतंत्रता के युद्ध में डरकर पीठ दिखाना अक्षम्य
पराध है, और निराशा अक्षम्य पाप।" देखिये : दृढ़ता, संकल्प
त्साह और उत्सर्ग की इससे बढ़कर अभिव्यक्ति और क्या होगी ?

१९२८ के अन्त में आप अमरीका गईं। वहाँ से अगस्त १९२९ मे
ाप फिर अफ्रीका में वहाँ की भारतीय कांग्रेस की अध्यक्षा बनकर गईं
९३० के नमक-सत्याग्रह के आन्दोलन मे गान्धीजी महिलाओं को
लग रखकर उनसे विदेशी वस्त्रो एवं शराब आदि की दुकानों प
रना देने का ही काम लेना चाहते थे। परन्तु आपने अपने को
वतंत्रता-संग्राम में कभी पुरुषों से पीछे नहीं रखा। बल्कि उनसे
ी क़दम आगे ही रहीं। दांडी-यात्रा पूर्ण करके महात्माजी ने धरसन
ौर बड़ाला के नमक के सरकारी क्षेत्रों पर धावा बोलने का निश्चय
किया। गान्धीजी गिरफ्तार कर लिये गए। उनके बाद वयोवृद्ध अब्बास
ैयब जी भी बहादुरी के साथ जेल चले गए, तब इस लड़ाई का सेना
ितत्व करने के लिए आप वहाँ पहुँची और धरसना के नमक-गोदाम
र धावा करने के लिए स्वयं-सेवकों का जो जत्था जारहा था, उसका नेतृत्व
ापने किया। वहाँ के सरकारी अधिकारियों ने पुलिस और फौज से
स जत्थे को घिरवा लिया। इस पर सरोजिनी देवी पूरे २७ घंटों तक
सी जगह बैठी रहीं। इस बीच एक बूँद पानी भी उनको नहीं मिल

शामिल होने का निश्चय कर लिया, तब गान्धीजी और मालवीयजी
ं साथ आपको भी दूसरी गोल मेज़-परिषद् में सम्मिलित होने का
नेमन्त्रण मिला। और वहाँ गान्धी जी का आपने पूरा साथ दिया।
९३१--१९३२ के आन्दोलनों मे भी आप जेल गईं। इसके पश्चात्
९४० के सत्याग्रह और सन् १९४२ के आन्दोलन में जेल जाकर
गपने स्वदेश के लिए जेल काटने का अपना हिस्सा पूरा कर दिया।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए आप सर्वदा प्रयत्नशील रही एक
ार मौलाना शौकतअलीने आपके विषय में कहा था—"हिन्दुओं में
े मुसलमान यदि किसी पर विश्वास कर सकते हैं तो श्रीमती
ायडू पर।" वास्तव में आपकी राष्ट्रीयता विशुद्ध निखरती हुई, तपी-
पाई है जिसमें साम्प्रदायिक वैमनस्य की गंध तक नहीं थी। आप राष्ट्र
े पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर चुकी थीं और राष्ट्रीय सुख-दुःख से
अन्यत्र आपका व्यक्तिगत सुख-दुःख कुछ रह ही नहीं गया था। देश
के लिए जीना आपके जीवन की महान् विजय और देश के लिए मर
ााना ही उसकी महान् सद्गति थी, जो निःसन्देह उसे प्राप्त थी।

भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के साथ अपने को तन्मय कर देने
और राजनीतिक क्षेत्र में अपना विशेष स्थान होने पर भी आपको राज-
नीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता। आपने कभी अपने-आपको राजनीतिक
उलझनों में नहीं उलझाया। गान्धीजी में आपकी अगाध श्रद्धा, स्वदेश
के साथ अपूर्व प्रेम और स्वतन्त्रता की गहरी लगन—ये ही वे प्रवृ-
त्तियाँ थीं जो आपको जबर्दस्ती राजनीतिक-क्षेत्र में खींच लाईं। आप
स्वयं कहा करती थीं—"गान्धी जी मेरे कन्हैया हैं और मैं उनकी

वृद्ध हो जाने पर भी आपकी महान् कार्य-शक्ति एवं अद
साह चीण नहीं हुआ। १९४७ में दिल्ली में पहली बार
शयाई देशों का सम्मेलन हुआ उसका सभापतित्व आपने ही कि
। भारत के स्वाधीन होने पर १५ अगस्त १९४७ को आप
युक्त प्रान्त का गवर्नर बनाया गया। यह आपके समूचे जीवन
शेषता थी कि इस पद पर रहते हुए—जो अपने देश की सेवा
वीकार किया गया आपका अन्तिम पद था—आपने अपने साह
र प्रतिष्ठा एवं महान् मानव-प्रेम के गुणों का पूर्ण प्रदर्शन किया
स सब सार्वजनिक जीवन के पीछे छिपा हुआ आपका व्यक्तिग
वन वास्तव में भारतीय नारी-जीवन का और भी अधिक प्रतीक था
प मातृ-स्नेह में प्रांजल, परिहास मे मुखर और अतिथि-सत्कार
दृत थीं।

आप नारी होते हुए भी पुरुषों के समान आगे बढ़ीं। अन
ष्ट्रीयता और देशभक्ति आपमें एक साथ मिलकर बैठी। आप
दय में अग्नि और अमृत एक साथ निवास करते थे। आपके अति
ह में उग्र समाजवादी और नरेश एक ही जगह ठहरते थे। औ
आपके व्यक्तित्व में यौवन की स्फूर्ति और वार्धक्य एक साथ ही वि
न रहते थे।

११ फरवरी १९४९ को लखनऊ से दिल्ली को प्रस्थान करते हु
आपकी तबियत सहसा खराब हो गई और उसके पश्चात् आप
लत बिगड़ती ही गई। बीमारी के इन दिनों में भी आपने दिल
अनेक सामाजिक समारोहों में भाग लिया। १९ फरवरी को अ

मृत्यु से समस्त देश में शोक की लहर दौड़ गई। आपका विश्व-व्यापी मातम मनाया गया। देश-विदेशों से अनेक श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। महात्मा गान्धी के अतिरिक्त ऐसा विश्व-व्यापी शोक अन्य किसी नेता का नहीं मनाया गया। वास्तव में गान्धी-जी की मृत्यु के पश्चात् देश के हृदय पर यह दूसरा न भरने वाला भारी घाव था।



: २० :

डाक्टर मुख्तारअहमद अन्सारी

[जन्म सन् १८८० : मृत्यु सन् १९३६]

"जिस स्वराज्य के लिए हम लोग प्रयत्नशील है वह न हिन्दू राज होगा और न मुस्लिम राज। वह एक संयुक्त राज होगा, जो सबके न्यायपूर्ण और उचित अधिकारों की रक्षा करेगा।"

भारी बदन, मझोला कद, किताबी चेहरा, दिव्य चक्षु, चौड़ा ललाट, दीर्घ नासिका, इन सबकी शोभा को बढ़ाने वाली बड़ी-बड़ी राजपूती शान की मूँछें : सज्जनता एवं सरलता की सजीव प्रतिमा दिल्ली के गौरव डा० मुख्तारअहमद अन्सारी। हाँ, वही अन्सारी, जिनके हृदय में दीन-दुखियों के लिए दर्द, गरीबों के लिए ममता और बीमारों के लिए सहानुभूति का सागर ठाठें मारता था। पक्के राष्ट्रवादी और सच्चे देश भक्त, हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रतीक, साम्प्रदायिकता की गंध से कोसों दूर। वास्तव में मनुष्यत्व के सभी सद्गुण डा० अन्सारी साहब में विद्यमान थे। आपका निश्चय अटल होता था। कठिन से-कठिन परिस्थितियों में भी आप अपने सिद्धान्तों पर



डाक्टर मुख्तार अहमद अन्सारी

रत के निर्माताओं में आपका अपना एक विशिष्ट स्थान है।

डा० अन्सारी साहब का जन्म २५ दिसम्बर १८८० में संयुक्त-न्त के गाजीपुर जिले के यूसुफपुर नामक ग्राम में हुआ था। आपके ता हाजी अब्दुलरहमान एक धनी-मानी जमींदार थे। प्रारम्भिक क्षा बनारस में पाई। इलाहाबाद से एफ० ए० पास करके निजाम-ालिज हैदराबाद में प्रविष्ट हो गए और मद्रास-यूनिवर्सिटी से ०ए० की परीक्षा पास कर ली। निजाम-रियासत से छात्रवृत्ति मिलने र आप उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सन् १९०० में लायत चले गए। एडिनबरा-यूनिवर्सिटी से एम० डी० और एम० स० तथा लन्दन-यूनिवर्सिटी से एल० आर० सी० पी० की डिग्रियाँ ास करके आपने लन्दन में ही अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। ापको लन्दन के अस्पतालों में 'हाउस-सर्जन' नियुक्त किया गया। ैयरिंग क्रास अस्पताल में आपने 'हाउस-सर्जन', लाक अस्पताल में रेजिडेण्ट मेडिकल-अफसर' और सेण्ट पीटर्स अस्पताल में 'क्लिनि-कल असिस्टेण्ट' का कार्य सात-आठ वर्ष तक किया। सन् १९११ में आप भारत लौट आये और दिल्ली में आकर डाक्टरी करने लगे। अपनी असाधारण योग्यता एवं सज्जनता के कारण आपने थोड़े समय में ही पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली। बड़ी दूर-दूर से रोगी आपके पास आते और स्वस्थ होकर वापस लौटते। बहुत-से राजाओं और नवाबों ने आपको अपना फैमिली-डाक्टर नियुक्त कर लिया। आपके पास रोगियों का मेला-सा लगा रहता था; आप प्रत्येक रोगी को बड़े ध्यान से देखते थे। रोगी का आधा रोग तो आपके दर्शनों से ही दूर हो जाता था। राजनीतिक अथवा सार्वजनिक कार्य करने वाले

थे। सन् १८६६ में, जब आप मद्रास में मैडिकल-कालिज
थे, प्रथम बार कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे
११ में दिल्ली आकर डाक्टरी के साथ-साथ आपकी सार्वजनि
चर्चें भी बढने लगीं। और कुछ ही दिनों में राजनीतिक क्षेत्र
आपका नाम चमकने लगा। १६१२ में आप 'आल-इण्डिय
डिकल मिशन' के अध्यक्ष बनकर टर्की गये। १६१७ में होमरू
आन्दोलन प्रारम्भ हो गया, जिसमें आपने प्रमुख भाग लिया
१८ में कांग्रेस के साथ मुस्लिम-लीग का जो अधिवेशन हुआ
के आप स्वागताध्यक्ष थे। आपका स्वागत-भाषण इतना जोरद
कि सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया। १६१६ में गान्धी जी
ट-एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह-आन्दोलन प्रारम्भ किया, जिस
पने गान्धी जी का पूरा-पूरा साथ दिया। १६२० में खिलाफ
डेशन के अध्यक्ष की हैसियत से आप भारत के वायसराय
ले। १६२२ में आपने अ० भा० कांग्रेस-कमेटी की ओर से समस
का दौरा किया और सत्याग्रह-जाँच कमेटी के सदस्य की हैसि
से रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किये। १६२२ में गया में आपने खिल
-कान्फ्रेंस के अधिवेशन का सभापतित्व किया। सभापति-प
दिये गए अपने भाषण में आपने कहा था कि "इस समय दे
एक ऐसा जातीय संगठन बनाया जाय जिसके द्वा
स्पर विवादात्मक, धार्मिक तथा सामाजिक मामलों
ष्ट्रीय जीवन से पृथक् कर दिया जाय।"

हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए आपने अटूट प्रयत्न किया। आप

गा हुई, उसके स्वागताध्यक्ष आप ही थे। स्वागताध्यक्ष पद से दिये ए अपने भाषण में आपने साम्प्रदायिक दंगों की तीव्र आलोचना करते ए कहा था—"अभी भी मामला बिगड़ा नहीं है, मैं आशावादी और आशा करता हूँ कि यदि हमने साम्प्रदायिक समस्या को ल करने का निश्चित रूप से प्रयत्न किया तो हम अपने उद्देश्यों सफल होंगे। मैंने यह कई बार कहा है और अब भी हृदय कहता हूँ कि मैं इसको हल करने का कार्य अपने हाथ में ले कता हूँ।"

१६२३ में आपने लाला लाजपतराय के साथ मिलकर एक साम्प्र यिक समझौता प्रस्तुत किया था, जो 'लाजपत-अन्सारी-पैक्ट' के ाम से प्रसिद्ध है। १६२४ में जब गान्धी जी ने २१ दिन का अनशन या तो आप ही उनकी नित्य डाक्टरी देख-भाल किया करते थे। तभी न्धी जी ने कहा था कि "डा० अन्सारी की गोद में मेरा जीवन ुरक्षित है।" इन्हीं दिनों दिल्ली में मोतीलालजी के सभापतित्व में जो कता-सम्मेलन हुआ, उसके संयोजकों में डाक्टर साहब भी थे। इसके ाद आपने राष्ट्रीय मुस्लिम-दल बनाया, जिसका उद्देश्य मुसलमानों राष्ट्रीय भावनाओं को उत्पन्न करना तथा सम्प्रदायवादियों के ष्ट्र-विरोधी कार्यों का विरोध करना था। आपने प्रत्येक रीति से हिन्दू स्लिम-एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया।

१६२७ में मद्रास में होने वाले कांग्रेस के बयालीसवें अधिवेशन ा आपको सभापति बनाया गया। इस अधिवेशन में साइमन-कमी न के बहिष्कार का निश्चय किया गया था। विदेशी माल के बहि

परिणामस्वरूप नेहरू-रिपोर्ट तैयार की गई थी। नेहरू-रिपोर्ट के बनाने में डाक्टर साहब का भी पूरा सहयोग था। आपने अपने भाषण में साम्प्रदायिक समझौते पर विशेष जोर दिया था। इसके पश्चात् आप सदैव ही कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य रहे।

१९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन में आपको गिरफ्तार कर लिया गया और छः मास की सजा हुई। गान्धी-इर्विन-पैक्ट के निमित्त से आपको २६ जनवरी १९३१ को छोड़ दिया गया। इन दिनों आपके मकान पर राष्ट्रीय-नेताओं का जमघट रहता था। गांधी जी भी प्रायः आपके यहाँ ही ठहरते थे। कार्य-समिति की बैठकें और नेताओं का सब सलाह-मशविरा आपकी कोठी पर ही होता था। इसके पश्चात् आप राष्ट्रवाद के प्रचार-कार्य में जुट गए और 'राष्ट्रीय-मुस्लिम-दल' को सुसंगठित करने में लग गए। फरीदपुर (बंगाल) में राष्ट्रीय मुस्लिम दल की कान्फ्रेंस तथा लाहौर में पंजाब के राष्ट्रीय मुस्लिम-दल की बैठक में आपको सभापति बनाया गया। हिन्दू-मुस्लिम पैक्ट बनाने के लिए कांग्रेस-कार्य-समिति की ओर से बनाई गई उपसमिति के भी आप सभासद् थे। उक्त समिति ने जो समझौता तैयार किया था, उसे साम्प्रदायिक मुस्लिम नेताओं से मनवाने का आपने भरसक प्रयत्न किया था। इसके लिए आपने मुसलमान नेताओं की एक कान्फ्रेंस भी बुलाई थी, किन्तु इन्हीं दिनों १९३२ का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया और आपका प्रयत्न अधूरा ही रह गया।

१९३२ के आन्दोलन में आप गिरफ्तार कर लिये गए और छः मास की सजा हुई। जेल में आपका स्वास्थ्य खराब हो गया, इसलिए जेल से छूटने पर आप विलायत चले गए। विलायत जाकर भी आप चुप नहीं बैठे, वहाँ [illegible]

र कौंसिल-प्रवेश के अनुमोदक हो गए और इसके लिए आप २४ में स्वराज्य-दल की स्थापना में सहायता दी। इस सम्बन्ध ता में कांग्रेस-महासमिति की एक बैठक हुई, जिसमें कांग्रेस-पा टरी बोर्ड की स्थापना की गई और उसका आपको अध्यक्ष बना ा। मालवीय जी के साथ मिलकर आपने'स्वराज्य-दल' को संगठि ा। बम्बई-कांग्रेस से महासमिति के इस निश्चय को स्वीकार क ा असेम्बली के चुनावों में कांग्रेस की विजय कराने के लिए आप उद्योग किया। यह एक आश्चर्य की बात है कि कौंसिल-प्रवेश ृ आपने इतना आन्दोलन किया। और असेम्बली की सदस्यता ृ खड़ा होने को आप पर काफी ज़ोर डाला गया, जिसमें अ वैरोध ही चुन लिये जाते, किन्तु फिर भी आपने इससे इन्कार क ा। १९३५ में दिल्ली में कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती का उद्घाट ाने ही किया था।

गान्धी जी के प्रति आपका अगाध प्रेम था। १९२४ में जब गान्धी दिल्ली में २१ दिन का व्रत रखा, तब आप ही उनकी डाक्टरी दे ल किया करते थे। गान्धी जी दवा लेने से इन्कार करते तो अ ा-विह्वल होकर दवा लेने के लिए उनके पीछे पड़ जाते। पू किये गए उपवास के समय भी आपकी यही दशा रही थी।

शिक्षा के क्षेत्र में भी आपने कम सेवाएं नहीं कीं। अलीगढ़-यूनि ीटी के संचालन में भी आपका प्रमुख हाथ था। असहयोग-आन्द के दिनों में अलीगढ़ में मुस्लिम-नेशनल-यूनिवर्सिटी (जामिय लिया-इस्लामिया) की स्थापना भी आपके सद्प्रयत्न से ही हुई २५ में जब उक्त संस्था दिल्ली आ गई। तब आप ही उसका संच

१९३९ से आपका स्वास्थ्य अधिक खराब रहने लगा और आप सार्वजनिक कार्यों से अलग-से रहने लगे। इसके पश्चात् आपका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता ही गया। १९२६ में आप रामपुर के नवाब को देखने मसूरी (देहरादून) गए। वहाँ से लौटते समय १० मई को गाड़ी में अचानक हृदय की गति बन्द हो जाने के कारण आपका देहान्त हो गया। यह एक उल्लेखनीय घटना है कि हकीम अजमलखाँ साहब का देहावसान भी इसी प्रकार हृदय की गति बन्द हो जाने के कारण गाड़ी में ही हुआ था और वे भी नवाब को देखने रामपुर गये थे। ११ मई को डाक्टर साहब का शव दिल्ली लाया गया और जामा मस्जिद पर हजारों मुसलमानों ने अपने प्रिय नेता के शव पर अन्तिम नमाज़ पढ़ी। ओखला ले जाकर जामिया मिलिया के मैदान में आपको दफनाया गया। १७ मई को सारे देश में 'अन्सारी-दिवस' मनाया गया और देशवासियों ने अपने प्यारे नेता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। आपकी मृत्यु से दिल्ली के सार्वजनिक जीवन में एक ऐसी शून्यता पैदा हो गई, जो आज तक दूर नहीं हुई।



[illegible] FOR FREE



रासबिहारी बोस



: २१ :

रासबिहारी बोस

[जन्म सन् १८८० : मृत्यु सन् १९४५]

"इस बार भारत के प्रत्येक युवक और युवती को सशस्त्र संघर्ष करना होगा, उसके बाद देखेंगे कि अंग्रेज किस तरह भारत पर शासन करते हैं ?"

प्रभावपूर्ण विशाल गोल मुख, उन्नत भाल, आयत ललाट, गम्भीर आँखें, उन पर चश्मा, सरल चिबुक, सुदीर्घ नासिका—इन रेखाओं से भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रमुख नेता श्री रासबिहारी बोस की चित्र-योजना होती है। चन्द्रनगर के एक सामान्यतः सम्पन्न कायस्थ परिवार में १८८० में आपने जन्म लिया था। डूप्ले कालेज चन्द्रनगर ही उनका शिक्षा का स्थान बना। अध्ययन में उनकी प्रवृत्ति अत्यधिक रही हो, ऐसी बात नहीं है। वे उपाधियों के पीछे सर्वस्व समर्पित करने वाले व्यक्तियों में नहीं थे। फिर भी उनके अध्ययन की परिधि अत्यन्त विस्तृत थी। अंग्रेजी में उनकी अच्छी पहुँच थी। उनके पैम्फलेट आज भी प्रौढ़ साहित्य की सामग्री बने हुए हैं।

कदापि अनुपयुक्त नहीं कि रासबिहारी बोस भी उस क्रमशः पनप
हुए भारतीय राष्ट्रीयतावाद के प्रभाव से वंचित न रह सके। बंग-भं
विरोधी आन्दोलन ने बंगाली नवयुवकों में प्राण फूँक दिए थे
रामकृष्ण, विवेकानन्द के शिष्य बनकर विरक्तिमय जीवन बिताने
विचार रखने वाले श्री० बोस इस आन्दोलन की उत्ताल तरंगों
अप्रभावित न रह सके। उनकी विचार-धाराओं में क्रान्ति हुई, क्रा
उनके जीवन का ध्येय बन गई। क्रान्ति के लिए उन्होंने अपना त
मन-धन सर्वस्व समर्पित कर दिया। उस दिन इनके मित्रों को ब
भारी आश्चर्य हुआ होगा, जब उन्होंने रासबिहारी बोस को भारती
सेना के एक साधारण सैनिक के पद के लिए उम्मीदवार दे
होगा। परन्तु इन-जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को एक सधारण सैनि
का पद देना भी सरकार के नियमों के विपरीत था। बंगाली-युव
होने के कारण सेना में प्रविष्ट हो सकना इसके लिए असम्भव था
वे बर्मा भाग गए। वहाँ जाकर वहाँ की सेना में सैनिक का स्थ
प्राप्त करने में उनको सफलता मिली।

सैनिक बन जाने के पश्चात् श्री० बोस ने देखा कि जिस उद्दे
को लेकर वे सेना में आए हैं, उसकी एकांश में भी पूर्ति हो
असम्भव है। वे सेना में घुसकर सैनिकों में क्रान्ति और विद्रोह
भावनाएँ भरना चाहते थे। परन्तु एक साधारण सैनिक का मह
ही क्या ? फलतः वे सेना से भाग खड़े हुए। सत्ता के विरुद्ध उन
यह प्रथम अपराध था। बर्मा के जंगलों में विचरते हुए उस सा
सिक युवक के ऊपर कहा जाता है, कुछ डाकुओं ने आक्रमण किय
परन्तु उनके साहस ने उन सबको भगा दिया। कलकत्ता लौट

हे भाई को सौंपकर आप अन्य प्रान्तों में जाकर पार्टी के संगठन में ग गए। दिखाने के लिए, सन्देह से बचने के लिए और सरकारी इरयों में शक्ति प्राप्त करने के लिए सरकारी नौकरी पर लेना वे आवश्यक समझते रहे। देहरादून में जंगल विभाग में उन्होंने पुनः एक ाधारण क्लर्क का पद प्राप्त कर लिया। परन्तु उनका प्रधान कार्य ान्तिकारी-दल का संगठन करना था।

उनके नेतृत्व में दल का संगठन दिन-पर-दिन बढ़ता चला जा हा था। बंगाल, युक्तप्रान्त और पंजाब तो क्रान्तिकारियों के गढ़ ने ही हुए थे, राजपूताना और दक्षिण में भी पार्टी का सिक्का जमता ला जा रहा था। युक्तप्रान्त में श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सान्याल के तृत्व में एक दल पहले से ही कार्य कर रहा था। १९१२ में दोनों ल मिलकर एक हो गए। शचीन्द्र और बोस एक दूसरे के अत्यन्त नकट आ गए। दल और भी दृढ़ हो गया।

संगठित पार्टी का जनता और सरकार दोनों को ही परिचय देने के लिए अब यह आवश्यक हो गया था कि कोई ऐसा कार्य किया जाय जिससे देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हलचल मच जाय। दिल्ली-बम-काण्ड इसी का परिणाम था। सेनाओं की पंक्तियों के बीच हाथी पर बैठे हुए सम्राट् के प्रतिनिधि लार्ड हार्डिंग के हौदे पर एक बम आकर लगा। गद्दी टुकड़े-टुकड़े हो गई। बम की दो कीलें लार्ड हार्डिंग के भी लगीं, परन्तु सतर्क डाक्टरी सहायता ने उनकी जीवन-रक्षा कर ली। अपराधी को खोजने के लिए पुरस्कार-पर-पुरस्कार घोषित किये गए, पुलिस और खुफिया पुलिस की सरगर्मी बढ़ी, क्लीवलैंड, पेट्री, टोगार्ड और डीनधाम-जैसे स्काटलैण्ड के

समग्र क्रान्तिकारी संगठन के मूल में एक बंगाली नवयुवक है जिस
नाम है रासबिहारी बोस; परन्तु वह इससे अधिक और कुछ न
सकी। रासबिहारी बोस के हुलिया का भी पूरा विवरण उसे प्राप्त न
सका और वह अन्त तक अनेकों भ्रमों में पड़ी रही।

पहला महायुद्ध प्रारम्भ हो रहा था। श्रीयुत बोस ने विदेशों
सम्पर्क बढ़ाने का निश्चय कर लिया। पार्टी का कार्यालय वे दि
से उठाकर बनारस ले आए थे, परन्तु कार्यक्षेत्र के पश्चिमी-उत्त
भारत में बढ़े रहने के कारण उनको लाहौर अपना केन्द्र निर्वाचि
करना पड़ा।

इसी समय पार्टी ने एक महान् साहसिक कार्य का आयोज
किया। सिपाहियों एवं स्वयं-सेवकों ने एक निश्चित तिथि २
फरवरी सन् १९१५ को सर्वत्र विद्रोह करने का निश्चय किया
विदेशी सत्ता के सौभाग्य से पार्टी की ओर से कुछ ऐसी असावधानि
एवं जल्दबाजियाँ हुईं कि वह षड्यन्त्र सफल न हो सका। सरक
को पहले ही पता चल गया। घोर दमन प्रारम्भ हुआ और क्रान्ति
कारियों की समस्त योजनाएं धूल में मिल गईं। गिरफ्तारियों एवं दम
के जोर ने सारे आन्दोलन को शिथिल कर दिया। केवल सिंगापुर
विद्रोहियों को अवश्य सफलता मिली, परन्तु जापानियों की सहायत
से, जो तब ब्रिटिश सरकार के मित्र बने हुए थे, अंग्रेजों को पुन
सिंगापुर वापिस लेने में अधिक समय नहीं लगा।

अब रासबिहारी बोस का भारत में रह सकना असंभव-सा हो गया
पार्टी ने उनको शस्त्रादि की सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से विदे

को टैगोर का सम्बन्धी और सेक्रेटरी बतला कर जहाज में अपने लिए स्थान सुरक्षित करवा लिया। फिर भी वे प्रत्येक परिस्थिति के लिए सतर्क थे एवं पूर्ण रूप से सशस्त्र थे। जहाज धीरे-धीरे चल पड़ा और उन्होंने अपने साथियों से विदा ली।

रास्ते में एक बड़ी मजेदार घटना हुई। बेतार के तार द्वारा जहाज पर यह सन्देश आया कि कुछ भारतीय क्रान्तिकारी इसी जहाज से बाहर भागे जा रहे हैं। जापानी कप्तान ने जब चाय पीते-पीते यह खबर श्री पी० एन० टैगोर को सुनाई तो उन्होंने निर्लिप्त भाव से उत्तर दिया—"अरे यह बड़ी भयानक बात है" और पहले की तरह चाय पीते रहे। हांगकांग पहुँच कर उन्होंने कप्तान और ब्रिटिश रेजिडेण्ट को चाय-पार्टी दी। तभी यह पता चला कि दो सिख, जो भागने की कोशिश कर रहे थे, उपद्रवकारी होने के सन्देह में पकड़ लिये गए हैं। उन्होंने मन-ही-मन खुफिया विभाग की बेवकूफी पर हँसते हुए कहा—"बस इतना ही और कुछ नहीं।" इसके बाद उनको निर्विघ्न जापान पहुँचने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

उनके जापान पहुँच जाने की बात बाद में ब्रिटिश सरकार के खुफिया विभाग को मालूम हुई। उस समय जापान-सरकार विशेष दृढ़ न थी। टोकियो-स्थित ब्रिटिश राजदूत का बड़ा बोल-बाला था। जापानी सरकार पर यह दबाव डाला गया कि वह रासबिहारी बोस को पकड़कर ब्रिटिश सरकार को सौंप दे। कहा जाता है कि जापान-सरकार ने यह स्वीकार भी कर लिया कि वह बोस को ढूँढकर उनको सौंप देगी। परन्तु जापान के राष्ट्रवादियों को, जो स्वभावतः ब्रिटिश

निरन्तर ६ वर्ष तक अज्ञातवास में रहने में सहायता दी। इसका प
णाम यह हुआ कि स्काटलैण्ड यार्ड की सुशिक्षित पुलिस के भी स
प्रयत्न मिट्टी में मिल गए; पर श्री बोस उनके हाथों में न पड़ सके।

इस अज्ञातवास के लम्बे समय का सदुपयोग श्री बोस ने जापा
भाषा के अध्ययन तथा वहाँ के रीत-रिवाजों को अपनाने में लगाया
सन् १९२० में आप सविधि जापानी नागरिक बन गए और एक
ताल्लुकेदार नाकामुरा की कन्या से पाणिग्रहण भी कर लिया। टोकि
में नाकामुरा नामक एक होटल भी है जो श्री बोस ने अपने श्वसुर
स्मृति में स्थापित किया था। और जहाँ गत युद्ध के पूर्व तक भारती
भोजन मिला करता था। श्रीमती बोस का देहावसान तो २० वर्ष
अल्पायु ही में हो गया। उनसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका ना
'रणसुकी बोस' रखा गया।

सन् १९२१ में श्री रासबिहारी बोस ने 'आजाद हिन्द लीग'
स्थापना की। जापानी लोगों को भारतीय संस्कृति एवं राजनीति
परिचित कराना ही इस संस्था का उद्देश्य था। श्री बोस जापान
सदैव भारतीय हितों की देख-भाल करते रहे। अंग्रेजी और जापा
भाषाओं में आपने एक पत्रिका भी चलाई। भारतीय छात्रों की स
प्रकार की सहायता करने में आपको बड़ा आनन्द आता था।

पूर्वी एशिया में युद्धारम्भ को आपने भारत के स्वाधीनता-संग्राम
लिए स्वर्ण-अवसर समझा। टोकियो-रेडियो से भाषण देते हुए उन्हों
देशवासियों को यही सन्देश दिया। इस सम्बन्ध में टोकियो में प
सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन के लिए श्री बोस ने कई भारती

ाकर जनरल मोहनसिंह की आजाद हिन्द फौज के प्रतिनिधियों के
थ इस विषय पर विचार-विनिमय करेंगे कि भविष्य में क्या कदम
ठाया जाय। यह सम्मेलन १९ जून, १९४२ को बैंकाक में सम्पन्न
आ। विभिन्न स्थानों से १२० प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया।
र सदस्यों की एक कार्यकारिणी-समिति बनाई गई और श्री रास-
हारी बोस को सभापति निर्वाचित किया गया। इसी सम्मेलन ने
धिकृत रूप से आजाद हिन्द दल की स्थापना की और प्रधान कार्या-
य बैंकाक में रखना निश्चित हुआ।

आजाद हिन्द दल की स्थापना के पश्चात् श्री बोस ने सम्पूर्ण
र्वी एशिया का पर्यटन प्रारम्भ किया। आजाद हिन्द दल का सन्देश
येक भारतीय तक पहुँचाने के उद्देश्य से आपने थाईलैण्ड, बर्मा,
लाया, जावा, सुमात्रा तथा अन्य स्थानों में खूब भ्रमण किया। इसके
तिरिक्त आपने रेडियो द्वारा अपने देशवासियों से भी यह अपील की
ि वे पारस्परिक मतभेद को तिलाञ्जलि देकर एक होकर शत्रु का
मना करें। आपने यह भी स्पष्ट कर दिया कि आजाद हिन्द दल
ा उद्देश्य प्रत्येक प्रकार से शत्रु को पराजित करके देश को स्वाधीन
ाना है।

इस महान् बैंकाक-सम्मेलन के पश्चात् ही रासबिहारी बोस
नेता जी सुभाष से टेलीफोन पर बातचीत की। उस समय नेता जी
र्लिन पहुँच चुके थे। बाहर से स्वातन्त्र्य-युद्ध प्रारम्भ करके भी
हात्मा गान्धी के नेतृत्व में विश्वास रखने के विषय में कुछ और
क-दोनों बोसों में मतभेद हो गया। श्री रासबिहारी बोस को
चन-वीरता के स्थान पर कार्य-वीरता अधिक प्रिय थी। लम्बे चौड़े

को लेकर भले ही वे महात्मा गान्धी से मतभेद रखते हों, परन्तु वैसे उनको महात्मा गान्धी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास था।

अप्रैल १९४३ में श्री रासबिहारी बोस प्रधान कार्यालय सिंगापुर से जापान के लिए विदा हो गए। श्री सुभाष पूर्वी एशिया की राजनीति में शीघ्र पदार्पण करने जा रहे थे और लोगों में एक, नये उत्साह का प्रवेश हो रहा था। अन्त में ४ जुलाई १९४३ को एक सम्मेलन सिंगापुर के निकट कैथे नामक स्थान पर बुलाया गया। सम्मेलन में रासबिहारी बोस ने एक लम्बा व्याख्यान दिया और आजाद हिन्द दल की बागडोर नेता जी सुभाष के हाथों सौंप दी।

सभापतित्व को स्वीकार करके सुभाष बाबू ने रासबिहारी बोस को अपना प्रधान सलाहकार बनाया। जिस समय आजाद हिन्द सरकार की स्थापना हुई तब भी आपको प्रधान सलाहकार बनाया गया और मृत्युपर्यन्त आप उसी पद पर रहे। परन्तु स्वास्थ्य दिन-दिन इतना शिथिल होता चला जा रहा था कि जापान से बाहर जाकर सक्रिय कार्य करना उनके लिए असम्भव हो गया था। जिस समय आजाद हिन्द की सेनाएं तूफानी वेग से भारत की ओर बढ़ रही थीं, उस समय श्री बोस का स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता चला जा रहा था। अन्त में २१ जनवरी १९४४ को आपका देहावसान हो गया। इस समाचार को सुनकर आजाद हिन्द के प्रत्येक सैनिक ने बहुत शोक मनाया।

रासबिहारी बोस की मृत्यु उस समय हुई थी, जब उनकी साधनाएं फलवती होने लगी थीं। भारतीय द्वीपों में तिरंगा झण्डा फहराने लगा था। परन्तु कितने शोक का विषय है कि श्री रासबिहारी बो



श्री गजपति

: २२ :

श्री सत्यमूर्ति

[जन्म सन् १८८७ : मृत्यु सन् १९४३]

"हम एक राष्ट्र के रूप में जीवन मे परिपूर्णता चाहते हैं। राष्ट्रीय जीवन की वह परिपूर्णता हमें स्वराज्य के रूप में मिलेगी। यह परिपूर्णता जीवन है और इसका अभाव विनाश। ईसा ने अपने शिष्यों से कहा था 'स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अन्दर है।' इसी प्रकार स्वराज्य का राज्य हमारे अन्दर है। हमें चाहिए कि हम उस स्वराज्य की स्थापना करें।"

मझोला कद, साँवला रंग, भारी ओठ, गम्भीर अध्ययनशीलता का द्योतक चश्मा, सिर पर सफेद मद्रासी पगड़ी और गले में पड़ा हुआ धवल ब्राह्मणोचित साफा तथा पानों से लबरेज़ मुँह: यही थे उद्भट वक्ता और विधान-शास्त्री श्री सत्यमूर्ति। 'वाक्पटुता' और टीका पड़ने पर 'युद्ध-विक्रम' उनकी अपनी विशेषता थी। उनकी वक्तृत्व शक्ति के करिश्मे सार्वजनिक सभाओं में आने वाले श्रोताओं की आँखों के सामने आज भी नाच रहे होंगे, किन्तु उनकी इस कला के जौहर तो केन्द्रीय असेम्बली की [illegible]

"उनकी सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि वे पान बहुत ज्यादा खाते थे, परन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता, सबसे बड़ी शक्ति यह थी कि वे खूब बोलते थे।"

वे बंग-भंग-कालीन प्रसिद्ध नेता श्री विपिनचन्द्र पाल के अन्यतम शिष्यों में से थे और उन्हीं के समय में उन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। उसी समय से वे जीवन-पर्यन्त देश-सेवा के कार्यों में बराबर संलग्न रहे। उनके अपने निजी विचार थे। यही कारण था कि वे सर्वांश मे किसी एक संस्था की नीति से पूर्ण सहयोग कभी नहीं कर सके। वे बोलने मे प्रगल्भ ही नहीं, प्रत्युत धारा-प्रवाह रूप से भाषण देने वाले थे। जब बोलने लगते थे तब उनके मुँह से सजे हुए वाक्यों की धारा अजस्र वेग से बह चलती थी। और वह भी तर्कयुक्त, प्रभावपूर्ण तथा हृदय-ग्राही। इधर पिछले दिनों से वे कांग्रेस के हो गए थे, परन्तु स्वतन्त्र विचार के होने के कारण वे कभी-कभी कांग्रेस के निश्चयों के विरुद्ध कह जाते थे। यही कारण था कि कांग्रेस के 'दरबार' में वे वह स्थान नहीं प्राप्त कर सके थे, जिसके वे पूर्ण अधिकारी थे। परन्तु इससे क्या? उन्होंने अपनी भाषण-क्षमता तथा अपूर्व प्रतिभा को देश तथा लोक की सेवा में लगाने से मुँह नहीं मोड़ा। सारांशतः वे अत्यन्त निर्भीक, तेजस्वी एवं प्रभावशाली नेता थे।

उनका जन्म सन् १८८७ में दक्षिण भारत की पुदुपोटा स्टेट के अन्तर्गत 'तिरुमय्यम्' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री डी० सुन्दर शास्त्रिगल उस इलाके के माने हुए वकीलों में से थे। श्री सत्यमूर्ति की प्रारम्भिक परीक्षा पुदुपोटा स्टेट के 'राजा कालिज' में ही हुई। बाद में 'मद्रास क्रिश्चियन कालिज' में भर्ती होकर उन्होंने बी०ए०

क्टिस' प्रारम्भ कर दी और अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ मे
वे राजनीति में कूद पड़े। परिणाम स्वरूप उनकी लोकप्रियता
नानुदिन बढ़ती ही गई।

सन् १९१६ में उन्होंने कांग्रेस की ओर से विदेश जाने वाले एक
टेशन में सम्मिलित होकर ब्रिटेन और आयरलैण्ड की यात्रा की।
नी विद्वत्ता और अपूर्व कार्यक्षमता के कारण उन्होंने देश की समस्त
तिभाओं में अपना एक विशेष स्थान बना लिया था। यही कारण था
जब जो भी डेपुटेशन कहीं बाहर जाता तो उसमें श्री सत्यमूर्ति को
वश्य शामिल किया जाता था। राजनीति एवं कानून में उनके
साधारण ज्ञान की उपेक्षा करना सर्वथा असम्भव एवं अपरिहार्य
ता था। कांग्रेस में जब कार्यक्रम के प्रश्न को लेकर मतभेद हो
ा था तब १९२५ में पंडित मोतीलाल नेहरू की 'स्वराज्य-पार्टी
ओर से इन्होंने यूरोप की यात्रा की थी। एक बार कांग्रेस के कार्य
म पर इन्होंने समस्त भारत और लंका का भी भ्रमण किया था।
मिल जिले के प्रत्येक ग्राम में जो जागृति आज है उसका अधिकांश
य श्री सत्यमूर्ति को है।

यही नहीं, एक कर्मठ कार्यकर्त्ता होने के साथ-साथ वे रसिक
उच्चकोटि के थे। मद्रास की 'सुगुण विलास सभा' की ओर से
भिनीत होने वाले नाटकों में वे कई बार अभिनेता का कार्य भी कर
के थे। इसके अतिरिक्त वे मद्रास-यूनिवर्सिटी सीनेट, सिण्डीकेट
केडेमिक कौन्सिल एण्ड बोर्ड आफ स्टडीज एण्ड ला, इण्डियन
र्जिक इंस्टीट्यूट, आदि अनेक संस्थाओं के सक्रिय एवं उत्साही
स्य थे। कई वर्ष तक आप 'फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स' के प्रधा

नों आप मद्रास-जिला-कांग्रेस-कमेटी के भी प्रधान चुने गए और
६३५-३६ में तामिल-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के प्रधान बने। सन
६३१ और १६३५ में अ० भा० स्वदेशी प्रदर्शिनी की स्वागत-समिति
अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए। १६३० में असहयोग-आन्दोलन में
क्रिय भाग लेने के लिए आपने 'मद्रास-कौन्सिल' की सदस्यता से
ाग-पत्र दे दिया और विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार का कार्य बड़े ही वेग से
िया। फलस्वरूप १६३१ में गिरफ्तार हुए और थोड़े दिन की सजा
ाटकर छूट गए। १६३२ में फिर जनवरी में आप गिरफ्तार कर लिये
ए और १८ महीने की सजा हुई।

उनके सार्वजनिक जीवन का सूत्रपात जिस ध्येय को दृष्टि में रख
र हुआ था, वह समय अब आ गया था। प्रारम्भ से ही सार्वजनिक
भाओं और 'केन्द्रीय असेम्बली' में पहुँचकर देश की सेवा करना
नका एक-मात्र ध्येय था। अपने इस कार्यक्रम को कांग्रेस से मनवाने
लिए उन्हें अत्यन्त उत्कट प्रयत्न करना पड़ा था। सन् १६३४ के
न्द्रीय असेम्बली के चुनाव में खड़े होने के लिए कांग्रेस को यदि
िसी ने तैयार किया तो वे सत्यमूर्ति ही थे। सन् ३५ के भारतीय
ाधान के अनुसार प्रान्तीय चुनावों में कांग्रेसी उम्मीदवार तैयार करने
ा श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो सत्यमूर्ति को। ११
ान्तों में से ६ प्रान्तों में विजय-लाभ प्राप्त करने के उपरान्त यदि
ांग्रेसी मंत्रि-मंडल स्थापित हो सके तो यह सब भी श्री सत्यमूर्ति
प्रयत्नों का ही सुफल था।

श्री सत्यमूर्ति केन्द्रीय असेम्बली में देने वाले अपने भाषण की पूरी
यारी करके जाते थे। इस दृष्टि से सम्भवतः उन्होंने स्व० गोखले

नके हाथ लगती उसकी शामत आ जाती थी। उस पर जगह-जगा ।शान लगाये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ती थी। इस तैयारी के साथ जो भाषण देते थे वे प्रभावशाली होते थे। उन्हें चुनौती देना टेढ़ ोर थी। केन्द्रीय असेम्बली में प्रश्नोत्तर काल में एक के बाद एक प्रश्न रने में सत्यमूर्ति बहुत प्रवीण थे। कभी-कभी तो एक-एक घंटे तब सिर्फ प्रश्न ही करते रहते और उनका उत्तर मिलता रहता। ब्रिटिश रकार भी उनके प्रश्नों से हैरान और परेशान रहा करती थी। सेक्रे रिएट को यह चिन्ता नहीं होती थी कि असेम्बली में क्या कुछ पूछ ायगा। उसे तो यह चिन्ता रहा करती थी कि सत्यमूर्ति क्या पूछेंगे! ारत-सरकार के तत्कालीन कानून-सदस्य श्री एन० एन० सरकार क । इतना नाकों-दम हो गया था कि उन्होंने श्री सत्यमूर्ति के प्रश्न ो बौछार से बचने के लिए यह नियम कर दिया था कि कोई भी दस्य एक दिन में ५ से अधिक सवाल नहीं कर सकेगा। सत्यमूर्ति भी सवालों में ही सारी कसर निकाल लेते थे। प्रश्नों के स्थान पर वे क-प्रश्न बहुत किया करते थे। इसीलिए असेम्बली के क्षेत्रों में उनक ाम 'सत्यमूर्ति' के स्थान पर 'सप्लीमूर्ति' पड़ गया था।

१९३५ में वे केन्द्रीय असेम्बली में आये और आते ही उन्होंने काले ानूनों को मन्सूख कराने के लिए जो गैरसरकारी बिल पेश किया, ह उन्हें सदा-सर्वदा के लिए अमर कर गया। इस बिल पर भाषण रके उन्होंने भाषण करने का एक नया रिकार्ड कायम कर दिया। न्च का समय होने तक बराबर वे ही बोलते रहे। लञ्च का समय ाने पर टोस्ट खाया, कहवा पिया और पान चबाया। अपने साथियों ौर पत्र-प्रतिनिधियों से भेंट की, उनके साथ अपने भाषण के विषय

ाना की गतिविधि थी। श्री सत्यमूर्ति के मत में 'असेम्बली' भार
स्वराज्य मिलने का साधन नहीं थी, प्रत्युत उनका मन्तव्य था
म्बली में हमें जो भाषण-स्वातन्त्र्य प्राप्त है उससे हम सरकार
अच्छी तरह खोल सकते हैं। वे केन्द्रीय असेम्बली को भारत
धीनता-संग्राम की पहली छावनी कहा करते थे। उनकी संग्र
वाज़, अधिकारपूर्ण तथा प्राञ्जल भाषा, व्यंग बाणों की वृष्टि, उचि
-भाव और इसीलिए उनकी प्रभावशाली भाषण-शैली को कौ
सकता है ?

केवल केन्द्रीय असेम्बली में ही श्री सत्यमूर्ति ने जौहर
ाये, प्रत्युत कांग्रेस के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी धाक थी। इतना स
होते हुए भी उन्हें अपने जीवन में कोई सम्मान प्राप्त नहीं हुआ
गों ने उनके भाषण सुने और तालियाँ पीट दीं। तालियों की ग
ाहट अन्तराल में विलीन हो गई। लोगों ने उनके गले में फू
लाएं डालीं; मगर फूलों की पंखड़ी पंखड़ी बिखर गई, मालाएं
के गले में नहीं रहने पाईं। यहाँ तक कि उन्हें कभी कांग्रेस-का
मिति का सदस्य बनने तक का भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।
९४० में जब श्री राजगोपालाचार्य का पाकिस्तान के मामले
ग्रेस से मतभेद हो गया, तब उनके स्थान पर श्री सत्यमूर्ति का
मिति में लिये गए। वे उसी कार्य-समिति के सदस्य थे, जो अगस
न्दोलन का संचालन करने वाली थी। वे गिरफ्तार हुए उसी का
मिति के सदस्य की हैसियत से। जब उनकी मृत्यु हुई, तब भी वे उ
र्य-समिति के सदस्य थे। इसके अतिरिक्त उन्हें कांग्रेस में क
म्मान प्राप्त नहीं हुआ। पार्टी-पालिटिक्स की बलिहारी।

का कहार ही बना रहना होगा।" पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त जब यू० पी० के प्रधान मन्त्री बने तब कहीं श्री सत्यमूर्ति कांग्रेस-पार्टी के उपनेता बन सके थे। मद्रास प्रान्त में चुनाव का श्रीगणेश करके भी श्री सत्यमूर्ति कभी उम्मीदवार खड़े नहीं हुए। जब उम्मीदवार ही न थे, तब मन्त्री कैसे बन सकते थे? उन्होंने राजा जी के लिए कंटकाकीर्ण मार्ग साफ कर दिया। इसीलिए तो उनके एक साथी के मुख से यह शब्द ठीक ही निकले थे—"श्री सत्यमूर्ति ने एक सजा-सजाया बिस्तर बिछाया और राजा जी उस पर बड़े आराम से सो गए।" त्याग की, आत्म-श्लाघा से बचने की और बीसवीं सदी के आत्म-विज्ञापन के चंगुल से कन्नी काटने की पराकाष्ठा थी। आदर्श शालता की यही तो सच्ची कसौटी है।

श्री सत्यमूर्ति की प्रतिभा राजनीति में बहुमुखी थी। उन्होंने अपनी भाषण-शक्ति को ही अपनी उन्नति का प्रथम साधन बनाया। वह उद्यमी, साधन-सम्पन्न और सतत लग्नशील थे। कोई भी ऐसा विषय नहीं था, जिस पर वह अनायास और अधिकार के साथ न बोल सकते हों। वह सदैव ठोस तर्क-वितर्कों से पूर्ण उत्तर से तैयार रहते थे। जब कभी अंग्रेजी की कविता उन्हें उस समय के लिए निस्सार प्रतीत होती थी, तब वह संस्कृत की कविताओं का उदाहरण दिया करते थे। वह तामिल में और भी अच्छा बोलते थे और गर्व के साथ यह कहा करते थे कि वह तामिलनाड के हर गाँव में बोल चुके हैं।

*

: २३ :

नेता जी सुभाष

[जन्म सन् १८९७ : मृत्यु सन् १९४५]

"मैं प्रसन्नतापूर्वक किसी भी अग्नि-परीक्षा का, जिससे ईश्वर मुझे जाँचना चाहे, सामना करने के लिए तैयार हूँ। मैं तो यह सोचता हूँ कि भारत के पिछले पापों का एक छोटे-से रूप में प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।"

विस्तृत ललाट, चश्मे के भीतर से चमकती हुई बड़ी-बड़ी आँखें, सदा एक रस से ओठों पर अठखेलियाँ करती हुई मधुर मुस्कान, यूनानी देवता की भाँति विशाल वक्ष, सुगठित शरीर, मादक ध्वनि एवं चेहरे पर छाई हुई आत्म-विश्वास की अमिट रेखाएं सुभाष बाबू के नेतृत्व को अपूर्व बनाने में पर्याप्त योग देती हैं।

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस की जीवनी आत्मोत्सर्ग की वह कहानी है जो निर्जीव एवं हतोत्साह व्यक्तियों के हृदयों में भी स्फूर्ति, आशा और प्राणों का संचार कर सकती है। देश की स्वाधीनता के संग्राम में अपने तन, मन और धन सर्वस्व का बलिदान करने वाले बिरले ही



नेताजी सुभाष

गुलामी के इन सुख-स्वप्नों से काँटों भरा हुआ देश-सेवा का मार्ग ः आपको अधिक प्रशस्त दिखलाई पड़ा ।

नेता जी सुभाष के पूर्वज बंगाल प्रान्त के चौबीस परगना जिले ः केदालिया गाँव के निवासी थे । आपका जन्म २३ जनवरी १८६७ ई॰ को कटक में हुआ था । पिता कटक में सरकारी वकील थे । कटक ः ही सुभाष बाबू की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा हुई । बालक सुभाष में ह इनकी प्रतिभाशीलता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे । आध्यात्मिक चेन्तन एवं प्रदर्शन-हीन वेश-भूषा की न जाने कितनी भावनाएं बालक सुभाष के जीवन में ओत-प्रोत हो गईं थीं ।

पिता की गणना कटक के समृद्ध व्यक्तियों में थी । पुत्र का लालन-पालन फूल की भाँति हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । विद्यार्थी सुभाष के जीवन की एक घटना अत्यन्त मनोरंजक है । पड़ोस के एक गाँव में हैजा फैलने पर सुभाष बिना माता-पिता से कहे घर से चलकर वहाँ पहुँच गए और कुछ दिन वहाँ आर्त्तों की सेवा करके वापिस लौट आए। सन् १९१४ में एक बार वे फिर घर से भागे थे । रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों ने किशोर सुभाष के हृदय में सत्य की खोज की उत्कण्ठा भर दी । आप पढ़ाई छोड़कर हरिद्वार, वृन्दावन आदि की ओर चले गए और संन्यास लेने का आपने निश्चय कर लिया । हिमालय पहुँचकर साधुओं के वास्तविक एवं दिखावटी जीवन का उन्होंने निकट से अध्ययन किया । कस्तूरी के मृग की भाँति भटकते-भटकते अन्त में उनको यह आभास हो गया कि वास्तविक सत्य तो उनके मानस में अन्तर्निहित है । बस हिमालय से यह कहकर आपने विदा ले ली 'मैं स्वयं शौर्य, साहस [illegible]

पुनः आपका अध्ययन-क्रम चल पड़ा। सन् १९१३ में आप मि
री स्कूल से मैट्रिक पास कर चुके थे। इसमें आप प्रान्त-भर में द्वित
ह थे। इसके बाद आप कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालिज में भरती हुए
१९१५ मे आपने एफ० ए० प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। बी० ए
आपने दर्शन लिया। स्वभावतः एक गम्भीरता आपमें आ गई
से प्रतिभाशाली सहपाठी का सभी छात्र आदर किया करते थे। सुभ
बू की नेतृत्व एवं संगठन की शक्ति का विकास हो रहा था। अप
थियों की ओर से अधिकारियों से झगड़ा करने में भी सुभाष ब
हिचकते थे। एक साथी पर किये गए अपमान के प्रतिकार में अ
फेसर सी० एफ० ओटन से भिड़ गए। उक्त प्रोफेसर पर हमल
रने के अपराध मे आप कालिज से निकाल दिये गए। कहा जाता
रोष में सुभाष बाबू ने प्रोफेसर के थप्पड़ भी जमा दिए थे। ब
आप स्कॉटिश चर्च कालेज मे प्रविष्ट हो गए और वहाँ से आप
१९१९ में दर्शन में बी० ए० पास किया। इसमें भी आपने प्रथम श्रे
स की। इसके बाद सन् १९१९ में आप इण्डियन सिविल सर्विस
ति योगिता में भाग लेने के लिए विलायत गए। वहाँ आपने केम्ब्रि
श्वविद्यालय से भी बी० ए० पास किया।

सुभाष बाबू के पिता राजभक्त व्यक्ति थे। उन्होंने अपने पुत्र
न आशाओं के साथ आई० सी० एस० के लिए भेजा था उसक
ल्पना कठिन नहीं है। उनको क्या पता था कि उनका पुत्र राजद्रो
न जायगा। देश की राजनीति में अत्यन्त उथल-पुथल थी। पंजा
दुर्घटनाओं ने देश के वातावरण में एक तूफान उपस्थित कर दि
। असहयोग की आंधी चल रही थी। विद्यार्थी कालिज छोड़ रहे

प्राचार्य एवं कांग्रेस-स्वयं-सेवक-दल के कप्तान बनाये गए। प्रिंस ग्राफ वेल्स के स्वागत के बहिष्कार के सम्बन्ध में सुभाष बाबू को प्रथम बार गिरफ्तार करके ६ मास की सजा दे दी गई।

अब सुभाष बाबू सब प्रकार से देश-सेवा के लिए कूद पड़े थे। १९२२ में उत्तरी बंगाल की बाढ में आपने बाढ़-पीड़ितों की अद्भुत सहायता कर अपने कौशल का परिचय दिया। गया-कांग्रेस में देशबन्धु के साथ आपने कौंसिल-प्रवेश का समर्थन किया। तत्पश्चात् आप स्वराज्य-पार्टी के प्रमुख दैनिक पत्र 'फारवर्ड' के सम्पादक बनाये गए। सन् १९२४ में देशबन्धु जब कलकत्ता के मेयर बने तब आपको 'चीफ एक्जीक्यूटिव अफसर' बनाया गया।

उसी वर्ष बंगाल आर्डिनेंस के अन्तर्गत आपको कैद कर लिया गया। देशबन्धु ने इस गिरफ्तारी पर कहा था कि 'यदि सुभाष दोषी है तो मैं भी दोषी हूँ।' इस जेल-प्रवास में सुभाष का स्वास्थ्य गिरता गया। राज यक्ष्मा के लक्षण स्पष्ट दिखने लगे। अप्रैल १९२७ तक आप बिलकुल चारपाई पर गिर गए। सरकार उनके जीवन के साथ कुछ अपमान-जनक शर्तों का खेल खेलना चाहती थी। भला सुभाष-जैसे स्वाभिमानी को यह कैसे सहन हो सकता था? अन्त में हठी सुभाष के आगे उसको घुटने टेकने पड़े। १५ मई, सन् १९२७ को आप कलकत्ता लाकर छोड़ दिये गए।

परन्तु स्वास्थ्य-सुधार के लिए सुभाष बाबू स्विटजरलैंड न जा सके। ऐसे तूफानी समय में देश को उनकी भारी आवश्यकता थी। जनता की प्रार्थना ने ही उनको रोग-मुक्त कर दिया। वे पुनः कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े। अपने जेल-प्रवास-काल में ही वे प्रान्तीय धारा-सभा के सदस्य

नेताओं के निकट सम्पर्क में आ गए। कलकत्ता-कांग्रेस के महात्मा गान्धी के औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रस्ताव पर पं० नेहरू द्वारा उपस्थित किये जाने वाले 'पूर्ण स्वराज्य' वाले संशोधन का सुभाष बाबू ने उग्र शब्दों में समर्थन किया। बाद में पं० नेहरू द्वारा बनाई गई 'इंडिपेंडेंस लीग' के प्रचार में आपने पं० नेहरू को खूब सहयोग दिया।

अगले वर्ष २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। लाहौर-कांग्रेस में पूर्ण स्वराज्य को कांग्रेस ने अपना ध्येय स्वीकृत कर लिया था। इसी बीच सुभाष बाबू कलकत्ता-कारपोरेशन के मेयर बन चुके थे। आपके नेतृत्व में कलकत्ता में भी जुलूस निकला। पुलिस ने जुलूस पर लाठियाँ बरसाईं। सुभाष बाबू अपने साथियों के साथ कैद कर लिये गए। आपको एक वर्ष की सजा दी गई। देश में पुनः आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था। चारों ओर कानून तोड़े जा रहे थे। सरकार बौखलाई हुई थी। जेल में भी सुभाषचन्द्र बोस को नाना प्रकार की यातनाएं दी गईं। पुनः आप रुग्ण हो गए। रुग्णावस्था में भी आपको एकाध बार मार सहनी पड़ी। फलतः पुराना क्षय रोग पुनः उखड़ खड़ा हुआ। सरकार आपको छोड़ना नहीं चाहती थी। आपको नजरबन्द के ही रूप में हुगली ले जाया गया, परन्तु वहाँ भी कोई लाभ नहीं हुआ। अब सरकार की भी चिन्ता बढ़ी; क्योंकि देश में बड़ी सनसनी फैल रही थी। अब की बार संबंधियों के समझाने पर सुभाष बाबू ने सरकार की यह शर्त स्वीकार कर ली कि वे रिहा होते ही सीधे यूरोप चले जायंगे। वैसा ही उन्होंने किया भी। संबंधियों से मिले बिना ही वे तुरन्त वायुयान द्वारा स्विटजरलैंड चले गए।

'यह विदेश-प्रवास प्रच्छन्न रूप में सुभाष बाबू का निर्वासन ही

ास के काल में आपने किसी राजनीतिक चर्चा में भाग भी नहीं या। इस प्रकार सरकार को दिये गए वचन का पालन करके वे पुनः रोप लौट गए।

विदेश-प्रवास-काल में श्री सुभाष बाबू डी० वेलेरा एवं मुसोलिनी भी मिले। आपने फ्रांस, लन्दन आदि की भी यात्राएं कीं। परन्तु छ ही समय बाद आपका मन वहाँ रहते-रहते ऊब गया। अतः इन्होंने िश्चय किया कि वे अब विदेश में न रहेंगे। भारत-सरकार का थन था कि यदि भारत में रहना है तो जेलों में रहो। अन्त में ाप स्वदेश के लिए चल ही पड़े। कांग्रेस ने भी एक प्रस्ताव द्वारा रकार से अनुरोध किया कि वह सुभाष बाबू को मुक्त कर दे। परन्तु रकार ने न माना। बम्बई उतरते ही उनको कैद कर लिया गया।

देश में विक्षोभ फैला। १० मई सन् १९३६ को सुभाष-दिवस नाया गया। पर सरकार इससे विचलित न हुई। उधर जेल जाते ी सुभाष बाबू की दशा पुनः बिगड़ गई। अन्त में १७ मार्च सन् ३६ को सरकार ने उनको छोड़ दिया। सारे देश में प्रसन्नता के बादल ा गए।

अब रचनात्मक-कार्यक्रम का समय आ गया था। कांग्रेस ने कौंसिल-प्रवेश स्वीकृत कर लिया था। प्रान्तों में मंत्रि-मंडल बन रहे थे। सुभाष बाबू को इन कार्यक्रमों में कोई विशेष रुचि न थी। दूसरी ओर आपका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था। स्वास्थ्य के लिए उनको पुनः दो-ढाई मास के लिए विदेश जाना पड़ा। यूरोप मे ही आपने ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीति का भण्डाफोड़ किया। जब आप लन्दन में ही थे, उसी समय आप हरिपुरा-कांग्रेस

राष्ट्रपति बनने के समय सुभाष बाबू की आयु केवल ४१ वर्ष ही थी। १९३५ के संघ-शासन को हरिपुरा-अधिवेशन में बिलकुल अव्यावहारिक बतला दिया गया। सुभाष बाबू व्यक्तिगत रूप से भी इस संघ-शासन के कट्टर विरोधी थे। इसी भय से कि कहीं दक्षिण-पक्षी संघ-शासन की व्यवस्था स्वीकार न कर लें, आपने कांग्रेस के इतिहास में पहली बार नामजद सदस्य के विरुद्ध चुनाव लड़ा। यह संघर्ष बड़ा उग्र था। कहा जाता है कि पट्टाभि सीतारमय्या की पराजय पर स्वयं गान्धी जी ने कहा था कि वह उनकी हार हुई!

सुभाष बाबू के राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाने के पश्चात् भी दक्षिण पक्षी कांग्रेसियों ने उनसे खुलकर असहयोग किया। सुभाष बाबू को इससे मर्म तक पीड़ा हुई। नाना दुश्चिन्ताओं ने उनको पुनः रुग्ण बना दिया। अन्त में जब समझौते की कोई सूरत न दिखाई पड़ी, तो उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। उनके स्थान पर राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति बनाये गए।

इस प्रकार अलग होकर सुभाष बाबू ने कांग्रेस के भीतर एक विरोधी दल 'अग्रगामी दल' की स्थापना की। अग्रगामी दल का प्रमुख उद्देश्य कांग्रेस की वैधानिकता की भावना को तिलाञ्जलि देना था। सुभाष बाबू कांग्रेस की दक्षिणपक्षी नीति से सदैव असन्तुष्ट रहते थे। अग्रगामी दल की स्थापना सुभाष बाबू की पराजय का प्रतिफल नहीं थी। वे अपने संगठन को सदैव वामपक्षी रखना चाहते थे।

अगला कांग्रेस-अधिवेशन रामगढ़ में हुआ। सुभाष बाबू ने समझौता विरोधी सम्मेलन का आयोजन किया, जो अपूर्व ही रहा।

किया है, उनको कांग्रेस की सदस्यता से भी वंचित कर दिया गया। यहाँ तक कि बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी को भी कांग्रेस से निर्वासित कर दिया गया।

तब तक युद्ध के काले बादल घिर चुके थे। काग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने त्याग-पत्र दे दिए थे। गान्धी जी व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ करने की धुन में थे। उसी समय सुभाष बाबू ने बंगाली जनता को हालवेल स्मारक (काल कोठरी) को हटा देने एवं सामूहिक आन्दोलन प्रारम्भ करने के लिए आदेश दिया। सरकार सुभाष बाबू के संकेत पर ही बंगाल में उठते हुए तूफानों को देखकर भयभीत हो गई और उसने सुभाष बाबू को जेल में डाल दिया। ऐसे अवसर पर सुभाष बाबू जेल में नहीं सड़ना चाहते थे। आपने अनशन प्रारम्भ कर दिया। अन्त में सरकार ने एक महीने के लिए सुभाष बाबू को छोड़ दिया, परन्तु उनके घर पर कड़ा पहरा लगा दिया।

एक महीने के लिए सुभाष बाबू बाहर आ गए। इसी बीच में भाग निकलने की अवस्था हो गई। दाढ़ी बढ़ा करके सुभाष बाबू कभी मोटर और कभी रेल द्वारा यात्रा करते हुए पेशावर पहुँच गए। दाढ़ी ने पुलिस की आँखों में खूब धूल झोंकी। उसी पठान जियाउद्दीन के वेश में आपने एक काफिले के साथ सीमा पार की और काबुल पहुँच गए। वहाँ सी० आई० डी० वालों ने उनको परेशान किया। रूस के कारण जर्मनी जाने का पासपोर्ट न मिल रहा था। अन्त में एक जर्मन व्यक्ति के पासपोर्ट का उपयोग करके आप वायुयान द्वारा जर्मनी पहुँच गए।

एवं उसके दामाद काउंट सियानो से भी मिले।

जून १६४३ में सुभाष बाबू टोकियो आ गए थे। २ जुलाई को आप सिंगापुर पधारे। ४ जुलाई को श्री रासबिहारी बोस ने उनको सविधि आजाद हिंद सेना का सेनापति बना दिया। ५ जुलाई को सुभाष बाबू ने आजाद हिन्द फौज के संगठन की घोषणा की। इसके बाद दुनिया ने सुभाष बाबू की संगठन-शक्ति को दाँतों तले अंगुली दबाकर अनुभव किया।

आजाद हिन्द फौज के सैनिक भारत की आजादी का सन्देश लेकर आगे बढने लगे। वातावरण और साधन अनुकूल होने के कारण शीघ्र ही समग्र योजनाएं फलीभूत होने लगीं। आजाद हिन्द फौज का संगठन और कार्यक्रम बड़े-बड़े युद्ध-विशारदों को भी विस्मय में डालने वाला था। सुभाष ब्रिगेड, गान्धी ब्रिगेड, नेहरू ब्रिगेड और आजाद ब्रिगेड—इस प्रकार से चार ब्रिगेडों में सेना का वितरण किया गया था, कैप्टन लक्ष्मी की देख-रेख में महिलाओं की अलग 'झाँसी रानी रेजीमेंट' थी। बच्चों की भी अलग टुकडी थी। कहा जाता है कि बच्चों का यह दल भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ था।

जापान, जर्मनी, इटली, चीन, मंचुको आदि ६ विभिन्न सरकारों ने आजाद हिन्द सरकार की स्वतंत्र सत्ता को एक मत से स्वीकार कर लिया था। आजाद हिन्द सरकार का केन्द्र पहले सिंगापुर बनाया गया। बाद में बर्मा में रंगून को ही अस्थायी सरकार की राजधानी और प्रधान कार्यालय बनाया गया। इसी बीच अंडमान, नीकोबार द्वीप भी स्वाधीन किये जा चुके थे और उनके नाम 'शहीद' और 'स्वराज्य' द्वीप रखे जा चुके थे। क्रमशः अनुशासन एवं व्यवस्थापूर्ण ढंग से आजाद हिन्द

जाती थी। अन्त में रंगून के एक करोड़पति की सहायता से
ाजाद हिन्द बैंक' की स्थापना हो गई। आजाद हिन्द फौज के सैनिक
जादी के लिए लड़ते थे, पैसे के लिए नहीं। भूखे-नंगे रहकर भी
आजादी की लड़ाई को बढ़ाए रखने के लिए सन्नद्ध थे।

राष्ट्रीय अभिवादन (जय हिन्द), राष्ट्रीय मुहर, राष्ट्रीय चिह्न
टीपू सुल्तान का शेर), राष्ट्रीय बैज, राष्ट्रीय गीत (शुभ सुख चैन
बरसा) और न जाने कितनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति
ाजाद हिन्द फौज मे सर्वथा भारतीय रीति से की गई। साम्प्रदायिक
कता का जो आदर्श आजाद हिन्द फौज ने उपस्थित किया वह
र्वथा स्मरणीय, स्पृहणीय एवं अनुकरणीय ही है।

आजाद हिन्द फौज ने नेता जी सुभाष के अनेक ऐसे गुणों पर
प्रकाश डाला है जो अब तक छिपे ही रहे थे। उनकी संगठन
क्ति का ऐसा विस्तृत परिचय पहले कभी न मिला था। उनके १८-१९
तक निरन्तर काम करते रहने की क्षमता का भी ज्ञान सबको न
पाया था। उनकी दक्षता भी उतनी विकसित न हो पाई थी
च तो यह है कि यदि सुभाष को आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व
रने का अवसर प्राप्त न हुआ होता तो उनका व्यक्तित्व अविकसित
रह जाता।

सुभाष बाबू द्वारा लगाई गई 'दिल्ली चलो' की आवाज ने
सिपाहियों पर जादू का-सा असर किया था। १८ मार्च १९४४ का वह
दिन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा; जब आजाद
हिन्द की सेनाएं कोहिमा और मनीपुर के युद्ध में जी-जान से जुट पड़

भी मिली। परन्तु अन्त में ब्रिटिश सरकार के विशाल साधनों के आगे यह मुट्ठी-भर साधन-हीन सेना कब तक जमी रह सकती थी। निदान सुभाष बाबू को रंगून छोड़ देना पड़ा। १९ मई, १९४५ को अंग्रेजों ने रंगून पर पुनः अधिकार जमा लिया।

आजाद हिन्द फौज की शक्ति अब दिन-पर-दिन कम होती गई, परन्तु वह जापानियों के आत्म-समर्पण तक कार्य करती रही। २४ अगस्त १९४५ को नेता जी टोकियो के लिए रवाना हो गए। इस प्रकार आजाद हिन्द फौज का काम एक प्रकार से समाप्त हो गया, परन्तु उसका नाम युगों तक इतिहास में अमर रहेगा। पीठ पर सुरंगें बाँधकर और जमीन पर लेटकर ब्रिटिश टैंकों को उड़ाने वाले बाल-सेना के वीर बच्चे, भूखे पेट अथवा पत्ते खाकर छापा मारने वाले एवं गुलामी के घी से आजादी की घास को उत्कृष्ट समझने वाले सैनिक एवं सोलह-सोलह घंटे तक मौलमीन में युद्ध करके ब्रिटिश सेना के छक्के छुड़ा देने वाली झाँसी रेजीमेंट की सैनिकाएं युग-युग तक इतिहास के पृष्ठों पर अमर रहेंगी। नेताजी का नाम भी इसके साथ अमर रहेगा। टोकियो से २२ अगस्त ४५ को यह समाचार सुनकर कि सुभाष बाबू १८ अगस्त को वायुयान-दुर्घटना में बुरी तरह घायल हुए और उसी रात इस संसार से चल बसे, दुनिया अवाक् रह गई। वास्तव में सुभाष बाबू मरे नहीं, वे युग-युग के लिए अमर हो गए हैं।

★



: २४ :

सरदार वल्लभभाई पटेल

[जन्म सन् १८७५]

"अरे, साँप को क्या अपनी केंचुली उतार फेंकने में कष्ट होता है
कोई मेहनत करनी पड़ती है ? इसी तरह हम भी एक दिन परा
सन की केंचुली उतार फेंकेंगे। उसके लिए श्रम और कष्ट कैसा ?"

सुदृढ़ एवं विशाल शरीर, कठोर मुख, दृढ़ जबड़े और शत्रु के प्रति
नोद तथा ललकार से भरी आँखें—जिनमें उनके लिए व्यंग औ
हर भरा है : यह वल्लभभाई हैं। उनकी मुखमुद्रा से उनकी आन्त
क शक्ति का पता चलता है। सीने में तूफ़ान की शक्ति, भुजाएं फड़
ती हुई, दिल उमंगों के सब्र पर चढ़ा हुआ; वाणी आग उगल
ली ! युद्ध में वह विजयी-से मालूम पड़ते हैं। खतरे के प्रति
ाभाविक प्रेम, गहरी संगठन-शक्ति और अपने सम्बन्ध में मौन; ये वी
ल्लभभाई की ऐसी विशेषताएं हैं, जो किसी दूसरे भारतीय नेता
हीं मिल सकतीं। वे अवसर का उपयोग करते हैं। वीरता उनकी दे
और साहस उनका शस्त्र। वे उन पुरुषों में से हैं, जो बोलते कम

मौनावलम्बन और संगठन-शक्ति का अद्भुत संचय है। इन्हीं गुणों ने आपको योद्धा से ऊपर उठाकर सेनापति—सरदार—के आसन पर ला खड़ा किया है।

वल्लभभाई में वह कूट रहस्यमयता नहीं, जो एक राजनीतिज्ञ में होती है। हाँ, उनमें वह गम्भीरता और वह प्राणोन्मादकारी भावावेश प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं, जो एक सफल सरदार के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। वे राजनीतिज्ञता के पचड़े में नहीं पड़ते। वे स्वयं कहते हैं—"मुझे लड़ते-लड़ते जो संकट और जो उलझन पड़ जाय, उसे मैं तड़ाक से सुलझा लूँगा। ऐसी उलझनें सुलझाने की सूझ मुझे कहाँ से मिलती है, मैं नहीं जानता। परन्तु समझौते की ढीली चर्चाओं में मेरा जी नहीं लगता। ऐसी अकर्मण्य चर्चाओं में कितनी ही बार तो मैं गड़बड़ में पड़ जाता हूँ।" फिर भी ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए हैं, योद्धा के अन्दर दबा राजनीतिज्ञ भी 'एक सीमा तक' विकसित होता गया है। स्वतंत्र भारत का शासन-भार सम्भालने के पश्चात आपने कई ऐसी राजनीतिक गुत्थियों को आसानी से सुलझाया है, जिनका सुलझाना आप ही का काम था।

वल्लभभाई ऊपर से जितने रूखे, निष्ठुर और अभिमानी-से लगते हैं, भीतर से उतने ही सरल, कोमल और निरभिमानी हैं। आपके हृदय में ममत्व, प्यार एवं दयालुता का भी अक्षय भंडार है। किसानों की दयार्द्र दशा देखकर आपका हृदय व्यग्र हो उठता है। किसानों के लिए प्रत्यक्ष रूप से किसी ने इतना नहीं किया, जितना आपने किया है। आप किसान की आशा हैं। वास्तव में आपमें वे सभी सद्गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं, जो एक सफल [illegible] के प्रधान नेता में होते

जाति में हुआ। आपके पिता श्री झबेरभाई पटेल सच्चे कृषक औ
र-भक्त थे। उन्होंने १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम में बुन्देलों
थ मिलकर अंग्रेज़ों से युद्ध किया था; और अपने देश-प्रेम त
ता का परिचय दिया था। पिता के जीवन की छाप वल्लभभ
भी पड़नी आवश्यक थी। अतुल वीरता, अदम्य साहस, निर्भीक
'सरदारी' तो आपको पैतृक सम्पत्ति में ही मिली है। आप
ा पहले घर पर ही हुई, फिर पेटलाद, नडियाद और बड़ौदा में
ड़याद से आपने मैट्रिक पास किया। विद्यार्थी-जीवन मे आप बहु
लट थे। कई बार मास्टरों से आपको झड़पें हो जाया करती थीं
ा-पिता अपनी साधारण स्थिति के कारण आपको उच्च शिक
ाने में असमर्थ थे। अतः आपने मुख्तारी की परीक्षा पास कर
रा और बोरसद गाँव में मुख्तारी शुरू कर दी।

सन् १९१३ में आपने लन्दन जाकर बैरिस्टरी की परीक्षा पास क
सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए तथा आपको पचास पौंड छात्र-वृत्ति भ
ी। पुस्तकें पढ़ने के आप बड़े शौकीन थे। लन्दन से ११ मील द
डिल टेम्पल पुस्तकालय' में आप पुस्तकें पढ़ने जाया करते थे। व
ने बड़ा सादा जीवन व्यतीत किया। लन्दन से भारत लौटने प
ने अहमदाबाद में क़ानूनी प्रैक्टिस प्रारम्भ की। कुछ ही दिनों
के क़ानूनी ज्ञान की सारे नगर में धाक जम गई और आपकी गणन
के प्रसिद्ध बैरिस्टरों में होने लगी।

आपका विवाह तो बैरिस्टरी पास करने से बहुत पहले ही
था। आपकी दो सन्तान कुमारी मणिबेन पटेल तथा डाह्याभा

वर्षा की। विपत्ति में धैर्य और साहस का कितना बढ़िया उदाहरण है।

अहमदाबाद में बैरिस्टरी करके आपने पर्याप्त धन कमाया। आपके बड़े भाई उन दिनों बम्बई में बैरिस्टरी करते थे। और साथ में लोक-सेवा भी। दोनों भाइयों में आपस में तय होगया कि छोटा भाई पैसा कमाकर घर का खर्च चलाये और बड़ा भाई लोक-सेवा की धूनी रमाये। पर जो अपने बड़े भाई को स्वेच्छा से देश-सेवा की सलाह दे सकता था, वह स्वयं उससे कैसे अलग रह सकता था ? गान्धीजी के सम्पर्क में आकर आप भी देश-सेवा के रंग में पूरी तरह रँग गए।

१९१६ में गोधरा में बेगार-प्रथा को बन्द कराने के लिए एक प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। महात्मा गान्धी उसके सभापति थे। सम्मेलन के कार्य की पूर्ति के लिए एक कमेटी बनाई गई; जिसका मन्त्री वल्लभभाई को बनाया गया। गान्धीजी चम्पारन चले गए और उसका सब काम आपको सम्हालना पड़ा। इस कार्य में आपकी शानदार विजय हुई और आपने बेगार-प्रथा को बन्द करा दिया। इसी वर्ष आप लखनऊ-कांग्रेस में गुजरात-सभा के प्रतिनिधि होकर गये थे। सन् १९१८ में खेड़ा-सत्याग्रह की तैयारी शुरू होने पर गान्धीजी का सबसे पहले साथ देने वाले आप ही थे। सरदार ने गुजरात के गाँव-गाँव में घूमकर गान्धीजी का सन्देश गुँजा दिया। अन्त में किसानों की विजय हुई। महायुद्ध के समय रँगरूटों की भर्ती करते समय भी आप गान्धीजी के साथ रहे। रौलट-एक्ट के विरुद्ध किये गए सत्याग्रह में आपने अनेक कष्ट उठाकर भी गान्धीजी का पूरा साथ दिया। पंजाब के हत्याकांड ने देश को झकझोर दिया और गान्धीजी ने सत्याग्रह का बिगुल बजाकर

१९२१ में गुजरात-प्रान्तीय-कांग्रेस के अध्यक्ष पद को आपने सु
भित किया। १९२२ में बोरसद-सत्याग्रह हुआ। सरकार ने लोगों
यह आरोप लगाकर कि वे उपद्रवी तथा जरायमपेशा लोगों को आश्र
ते हैं—बड़े-बड़े जुर्माने किये थे। सरदार पटेल इसे कब सहन
सकते थे। अन्ततः सरकार को सरदार के सामने झुकना पड़ा अ
तिरिक्त कर उठा लिया गया। वास्तव में आपकी निडर ललकार
किसानों में नवजीवन फूँक दिया था। आप कहा करते थे—"यदि
राज-सत्ता अत्याचारी हो तो किसान का सीधा उत्तर है—'जा ज
रे-जैसे कितने ही राज्य मैंने मिट्टी मे मिलते देखे हैं'।" ऐ
धे-सादे शब्दों में आप मतलब की सीधी बात कहना जानते हैं। १
लाई १९२३ में नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह का नेतृत्व भी आप
या और उसमें भी विजय-प्राप्त की। सन् १९२४ से १९२८ त
प अहमदाबाद-म्युनिसिपैल्टी के चेयरमैन रहे। इस पद पर रहक
पने शहर की सफाई और शिक्षा को राष्ट्रीय बनाने का अभूतपू
र्य किया। १९२७ में गुजरात में भयंकर बाढ़ के समय आपने जनत
खूब सेवा की।

सरदार पटेल की सबसे अधिक ख्याति बारडोली-सत्याग्रह के कारण
ही। इसी सत्याग्रह की सफलता के पश्चात् आप न केवल गुजरात,
त समस्त देश के 'सरदार' बन गए। १९२८ में सरकार ने किसानों
लगान उनके विरोध के बावजूद भी २५ प्रतिशत बढ़ा दिया।
ानों ने विरोध करने और संघर्ष करने का निश्चय किया। सरदार
ा को संघर्ष का नेता बनाया गया। सरदार ने किसानों को बता
ा कि यदि वे सत्याग्रह छेड़ेंगे तो उन्हें बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलनी

ो कहे तो उसे निडर होकर कह दो कि "मेरी बोटी-बोटी उड़ा दो पर मैं लगान अदा न करूँगा।" किसानों ने आपकी वाणी पर अमल क्या। १२ फरवरी को बारडोली में सत्याग्रह का बिगुल बज गया रकार के भीषण दमन और अत्याचार करने पर भी सत्याग्रह बराब लता रहा। अन्त में अगस्त के प्रारम्भ में सरकार को झुकना पड़ और समझौता हो गया। जब्तशुदा ज़मीनें लौटा दी गईं, कैदी छो दिये गए, बरख़ास्त मुखिया और पटवारी फिर बहाल किये गए औ रकार ने फिर नये सिरे से बन्दोबस्त करवाया। ११ अगस्त को समस्त ाल्लुके में विजयोत्सव मनाया गया।

१६२६ का सारा वर्ष आपने अपने प्रान्त में कांग्रेस का रचनात्मक ार्य करने में बिताया। इसके पश्चात् १६३० के सत्याग्रह-आन्दोलन मे आपने भाग लिया और दो बार गिरफ्तार होकर जेल गये। इसी बीच ं मोतीलाल नेहरू के गिरफ्तार होने पर आप उनके स्थान पर स्थाना न्न राष्ट्रपति अथवा डिक्टेटर भी बनाये गए थे। गान्धी-इर्विन समझौते के लिए जनवरी १६३१ में सब नेताओं के साथ आपको भ रेहा कर दिया गया।

१६३१ में कराची में कांग्रेस का जो ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ सके आप सभापति निर्वाचित हुए। वह एक महत्त्वपूर्ण अधिवेश ा और जिन परिस्थितियों में वह हुआ, वह भी कुछ कम महत्त्वपू ाहीं थीं। लाहौर में सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँस ोने के कारण देश के नवयुवक अत्यन्त क्षुब्ध थे और कानपुर वे ाम्प्रदायिक दंगे तथा अमरशहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की हत्य े तो सारे ही वातावरण में भयानक विक्षोभ पैदा कर दिया था। उर

[ग]या। सरदार ने अध्यक्ष पद से बड़ा हृदय-स्पर्शी भाषण दिया। [भग]तसिंह की फाँसी पर शोक प्रस्ताव के साथ अन्य कई महत्त्वपूर्ण [प्र]स्ताव भी इसी अधिवेशन में पास हुए।

उधर गान्धीजी यूरोप के मार्ग में थे। इधर सरकार ने गान्धी-[इर]विन समझौते को तोड़ना शुरू कर दिया। गान्धीजी के लौटने पर [ब]म्बई में आपकी अध्यक्षता में कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक हुई। [पं]० नेहरू बैठक में भाग लेने जा रहे थे, जिन्हें मार्ग में गिरफ्तार कर [लि]या गया। दो वर्ष की सज़ा हुई। १९३४ में स्वास्थ्य ख़राब होने [प]र उन्हें छोड़ दिया गया। कांग्रेस ने कौंसिलों के चुनाव लड़ने का [नि]श्चय किया। पार्लमेण्टरी-बोर्ड बना, जिसका अध्यक्ष आपको बनाया [ग]या। कांग्रेस की शानदार विजय हुई और सात प्रान्तों में कांग्रेस-राज [स्]थापित हो गया। सरदार ने बड़ी योग्यता-पूर्वक कांग्रेस के मन्त्रि-मंडल [क]ा संचालन किया इसके बाद यूरोप का द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने पर [क]ांग्रेस ने उसमें सहायता का विरोध किया और सभी मंत्रि-मंडलों ने [अ]पने पद से स्तीफ़े दे दिये।

८ अगस्त १९४२ को बम्बई में 'भारत छोड़ो' का विशेष प्रस्ताव पास किया गया। उस अवसर पर सरदार पटेल ने जो जोशीला भाषण दिया था, उसे पाठक न भूले होंगे। सरकार ने अगस्त-आन्दोलन का पूरी शक्ति से दमन किया और सरदार पटेल को अन्य नेताओं के साथ गिरफ्तार कर लिया।

१९ जून १९४५ को 'शिमला-कान्फ्रेंस' के लिए सब नेताओं के साथ आप भी रिहा हुए। तीन वर्ष के इस कारावास ने आपके विश्वास और प्रभाव की अभिवृद्धि ही की। अपूर्व कल्पना एवं आत्मा को जाग्

बनकर रहेंगे, और यदि संगठित जन-निर्णयों के साथ रहे तो निर्वाचित पुरुषों में—विश्व के इतिहास के निर्माताओं में आपका स्थान होगा।"

इसके पश्चात् १९४६ में मंत्रि-मंडल-मिशन-योजना और १९४७ में एटली-योजना तथा माउण्ट बेटन-योजना में आप बराबर बातचीत में भाग लेते रहे। मंत्रि-मंडल-मिशन-योजना के विफल हो जाने के पश्चात् ब्रिटिश कूटनीति की जड़ें बाहर निकल आईं और देश में साम्प्रदायिकता का नंगा नाच होने लगा। उस समय के सरदार के भाषण यदि आप पढ़ेंगे तो ऐसा जान पड़ेगा कि जनता का वास्तविक प्रतिनिधि जनता के हृदय की आग उगल रहा है। कांग्रेस के मेरठ-अधिवेशन में आपने कहा था—"तलवार का जवाब तलवार से मिलेगा।" तो जनता में बड़ी सनसनी फैल गई थी, किन्तु आपके स्पष्टीकरण करने पर वह तुरन्त दूर हो गई।

१५ जून १९४७ को स्वतंत्रता मिलने पर आप स्वाधीन भारत के उपप्रधान-मन्त्री बने और साथ ही दो अन्य महत्त्वपूर्ण विभाग भी आपको सौंपे गए—गृह-विभाग, और स्टेट्स-विभाग। स्वाधीनता-संग्राम में जहाँ आप ब्रिटिश सरकार और उनकी सहायक शक्तियों से लोहा लेने में सदा तत्पर रहे, वहाँ आपने यह भी दिखा दिया कि अत्यन्त विषम परिस्थितियों के होने पर भी शासन-सम्बन्धी जटिल समस्याओं को हल करने की योग्यता भी आप रखते हैं। गृह-विभाग और सूचना-विभाग-जैसे महत्त्वपूर्ण विभागों के साथ-साथ रियासती सचिवालय का कार्य-भार अपने ऊपर लेकर आपने रियासती राजनीति में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन किये, उन्होंने निःसन्देह भारत के इतिहास

पर रियासती सचिवालय आपके हाथों में आते ही आपने राजाओं को चेतावनी दे दी—"प्रभु-सत्ता की समाप्ति का यह अर्थ कदापि नहीं कि भारत और रियासतों का सम्बन्ध समाप्त हो जाय। यह सम्बन्ध पारस्परिक हितों से नियमित और संयोजित है।" साथ ही नरेशों को किसी प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही न करके शान्तिपूर्ण समझौता करने का अवसर दिया। अपनी अपूर्व योग्यता से थोड़े ही दिनों में आपने भारत की ६००. रियासतों का एकीकरण करके दिखा दिया। २.१६ छोटी रियासतों को प्रान्तों में विलीन कर दिया और शेष रियासतों के संघ बनाकर उनमें प्रजातन्त्रीय शासन कायम कर दिया। जिन रियासतों के शासकों ने हिन्द सरकार के विरुद्ध कुछ चूँ-चरा भी की, उनके प्रति आपने कठोर कदम उठाया। रीवां, जैसलमेर, अलवर और कोल्हापुर इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

१९ फरवरी १९४८ को जामनगर में संघ का उद्घाटन करते हुए आपने अपने इस कार्य पर प्रकाश डालते हुए कहा था—"यूरोप आदि स्थानों में शस्त्र-बल के आधार पर दूसरे देशों को जीतने की भावना ने एकीकरण को जन्म दिया। किन्तु गान्धीजी के जीवन और उनके कार्यों से, जिनमें भारतीय संस्कृति निहित है, हमें अहिंसात्मक क्रान्ति का पाठ पढ़ने को मिला।" इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे सरदार पर गान्धीजी के जीवन-दर्शन की कितनी गहरी छाप है।

हैदराबाद के निज़ाम ने १९ नवम्बर १९४७ को भारत-सरकार के साथ एक वर्ष के लिए यथापूर्व समझौता किया। निज़ाम रजाकारों के हाथों में खेलते रहे। हैदराबाद में भयंकर हत्याओं और बलात्कार की घटनाएँ बढ़ती जा रही थीं। सरदार ने कई बार निज़ाम को चेतावनी

में निजाम की 'सार्वभौम सत्ता' का अन्त हो गया। आपकी एकीकरण की इस नीति पर प्रकाश डालते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा है—"इतिहासकार जब पिछली बातों पर दृष्टि डालेंगे, तब निःसन्देह वे यह समझेंगे कि रियासतों के एकीकरण का कार्य भारत के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है।" निजाम के घुटने टेक देने के पश्चात् अमरीकी पत्रों ने सरदार पटेल की सफलताओं को भारत-सरकार की महान् विजय बतलाया है।

आज हमारे देश के सामने अनेक समस्याएं हैं। ऐसी समस्याएं जिनका सुलझाना साधारण बुद्धि का काम नहीं। कठिन समय में औषधि की भाँति अचूक काम करने वाली गान्धीजी की सलाह भी आज हमें प्राप्त नहीं है। अतः आज सारे देश की आँखें सरदार पटेल की ओर लगी हुई हैं; जिनके सफल नेतृत्व में ही हमारा यह देश सुख और समृद्धि प्राप्त कर सकेगा!





: २५ :

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

[जन्म सन् १८७९]

"हमें रचनात्मक ढंग से सोचने का अभ्यास करना चाहिए और समस्त शक्ति एवं साधनों को राष्ट्र के कार्य के लिए उपयोग में लाना चाहिए।"

दुबला-पतला शरीर, नाटा कद, गहरी आँखें, आँखों पर रंगीन चश्मा, घुटा हुआ सिर, मक्खन की भाँति उज्ज्वल खादी की धोती, कुर्ता, पैरों में चप्पल और हाथ में छड़ी—यही तो वे रेखाएं हैं जो हमारे राजा जी की पुनीत आकृति का निर्माण करती हैं। माथे पर रहने वाली रेखाओं को देखकर आकृति-विज्ञान का साधारण विद्यार्थी भी उनको एक महान् विचारक स्वीकार कर लेगा। चश्मे को भेदकर रहने वाली तेज आँखों से उनकी दूरदर्शिता टपकती है। चेहरे पर एक ओज है—एक आभा है, जो दर्शक को बरबस ही अभिभूत कर देती है। लम्बी और उठी हुई नाक उनके विशाल एवं अगाध बुद्धि-बल का परिचय देती है। उनका व्यक्तित्व [illegible]

भारत [illegible]

कट-से-उत्कट अभिव्यक्ति-मुद्रा में भी उनका कुछ सूक्ष्म एवं अगा
सुरक्षित ही रहता है। उनका व्यक्तित्व बाह्य व्यक्तियों की पक
आने वाली वस्तु नहीं है। हम तो उनको निःसंकोच रूप से ए
नीतिक सन्त कह सकते हैं। कूटनीतिज्ञता एवं राजनीति-कुशल
साथ ही उनमें महात्माओं-जैसी पवित्रता है। प्रति-पक्षियों के म
भी सहानुभूति-पूर्ण दृष्टिकोण विरले व्यक्तियों में ही पाया जाता
न्तु राजा जी अपने विरोधियों के पक्ष पर भी सहानुभूति रखने
नु सदैव से प्रसिद्ध रहे हैं। निरभिमान का दुर्लभ गुण उनके चरि
सबसे बड़ी विशेषता है। संस्कृत के अध्ययन एवं उपनिषदों
ुशीलन ने उनमें दार्शनिकता का भी पुट दिया है! गीता औ
निषद् की उनकी अंग्रेजी टीकाएं अत्यन्त लोकप्रिय हैं। वे तामि
एक विशिष्ट लेखक हैं। वे एक यशस्वी कहानीकार हैं। कांग्रेस
यात्मक राजनीति में राजा जी का भाग बहुत बड़ा है। 'तिरुचेनगो
श्रम-जैसी अनेकों संस्थाओं के वे सूत्रधार र. हैं। हरिजनोद्धा
दी-प्रचार एवं मादक-द्रव्य-निषेध-आन्दोलनों मे वे सदा से ही न
वन का संचार करते रहे हैं। इसके साथ ही वे एक गंभीर प्रा
द्या-प्रेमी एवं संस्कृतनिष्ठ व्यक्ति हैं। सांस्कृतिक उत्थान के वे घ
पाती हैं। बहुत कम व्यक्ति जानते हैं कि राजा जी एक पक
खाड़ी भी हैं। उत्सवों, प्रदर्शिनियों और विशेषतः बच्चों के खे
उनको बड़ा आनन्द आता है।

दक्षिणापथ ने भारत को सदैव शंकर-जैसी अमर विभूतियाँ प्रद
हैं। राजा जी भी दक्षिणापथ की ही एक विभूति हैं। तामिलना
सलेम जिले के एक वैष्णव ब्राह्मण-कुटुम्ब में राजा जी का ज

ने का प्रभाव राजा जी पर पड़ना अनिवार्य था। धार्मिक रीति
वाजों के कट्टर पालक होने पर भी उनमें पुत्र को उच्च आधुनिक शिक्ष
ने की लालसा अवश्य विद्यमान थी।

राजा जी-जैसे मेधावी-छात्र का स्कूल-जीवन पाठ्य-पुस्तकों तक ही
रिमित नहीं रह सकता था। पिता के द्वारा संस्कृत साहित्य में उनकी
भिरुचि अत्यन्त प्रबल हो गई थी। घर पर न तो पुस्तकों क
भाव था और न समझाने वाले का। अपने बाल्य जीवन के इस
ढ़ अध्ययन के ही कारण कालान्तर में वे उपनिषदों एवं अन्य धर्म
न्थों के उत्कृष्ट अनुवाद उपस्थित करने में सफल हो सके। स्कूल
ी शिक्षा को समाप्त कर राजा जी ने मद्रास-कालिज से वकालत की
रीक्षा उत्तीर्ण की एवं सलेम में ही वकालत आरम्भ कर दी।

ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति की वकालत अत्यन्त उत्कृष्ट रूप मे
लने लगी तो इसमें आश्चर्य की ही क्या बात थी? उनमें कुछ ऐसे
यक्तिगत गुण थे जो लोगों को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित क
ते थे। नये-पुराने, अमीर-गरीब, परिचित-अपरिचित सभी प्रकार के
वक्किलों से समता का व्यवहार करना उनकी प्रकृति का एक
ंग था। अध्यवसायी तो वे जन्म से ही रहे हैं। यह उनके परिश्रम
ा ही परिणाम था कि उन्होंने थोड़े ही समय में अपनी वकाल
च्छी तरह जमा ली। उनकी तर्क-प्रखर वाग्मिता ही उनकी इस
फलता का रहस्य थी। प्रत्येक विषय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्ष प
म्भीर विचार-विनिमय के पश्चात् एक निश्चय पर पहुँचना एवं फि
्रुव की भाँति उस पर अडिग रहकर लोगों को तर्क के प्रभाव से इस

शीघ्र ही वे म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष निर्वाचित कर लिये गए। उस पद में उन्होंने सलेम नगर वासियों की जो सेवा की, वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। सलेम कोआपरेटिव बैंक के जन्मदाताओं में भी उनकी प्रथम गणना है।

परन्तु उस प्रतिभा के लिए सलेम एक अत्यन्त संकुचित क्षेत्र था। अन्त में वे मद्रास चले आए। विदेशों से शिक्षा प्राप्त बैरिस्टरों की स्पर्धा में हाईकोर्ट में वकालत प्रारम्भ करना निश्चय ही एक दुःसाहस की बात थी। पर राजा जी-जैसे व्यक्ति सदैव सिद्धान्तों के अपवाद बनने के लिए ही जन्म लेते हैं। कुछ ही समय में मद्रास में उनकी वकालत अत्यन्त तेजी के साथ चल निकली। उनकी आमदनी पचास हजार वार्षिक से भी अधिक हो गई।

वस्तुतः १९१७ का होमरूल-आन्दोलन ही राजा जी के राजनीति-क्षेत्र में प्रवेश का सूत्रधार था। उस समय कौन जानता था कि इस आन्दोलन का एक साधारण सैनिक और मद्रास का एक वकील ही ३१ वर्ष में सारे देश का वैधानिक शिखर(Constitutional head) बन जायगा।

कुछ समय पश्चात् ही भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर एक ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र का आविर्भाव हुआ, जिसने अपने प्रकाश और प्रताप से सबको चमत्कृत कर दिया। देश की बागडोर अपने हाथ में लेकर उसने उसकी काया ही पलट दी। यह ज्योतिष्पिण्ड महात्मा गान्धी थे। उधर प्रथम महायुद्ध की विजय में मदोन्मत्त ब्रिटिश-साम्राज्यवाद पाशविकता और दमन का नरक-कुण्ड बन रहा था। पनपते हुए राष्ट्रीयता के अंकुरों को वह कैसे सहन कर सकता था।

राजगोपालाचार्य से हुआ। प्रथम मिलन में ही दोनों ने एक दूसरे अध्ययन किया और दोनों ने एक-दूसरे का महत्त्व समझ लिया। दिन से लेकर महात्मा गान्धी के देहावसान तक दोनों का संबंध ापूर्ण बना रहा। मतभेद के तो अनेकों अवसर आए, पर वह संबंध भेद होने पर भी सदैव दृढ़ ही बना रहा।

रौलट-एक्ट-विरोधी आन्दोलन की रूपरेखा तैयार करने मे ा जी ने महात्मा गान्धी को जो सहयोग प्रदान किया था, महात्मा न्धी ने अपनी आत्म-कथा में उसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की । तभी से समग्र मामलों को तिलाञ्जलि देकर राजा जी राष्ट्रीय ग्राम में कूद पड़े। रौलट-एक्ट-विरोधी आन्दोलन में उन्होंने महत्त्व ूर्ण भाग लिया। शीघ्र ही देश के नेताओं से उनका परिचय हो ा। सन् १९२०-२१ में वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान न्त्री बनाये गए। इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद का उन्होंने क्षमता पूर्वक र्वाह किया और यह सिद्ध कर दिया कि वे केवल 'मञ्चवीर' ह ीं हैं अपितु सच्चे अर्थ में 'कर्मवीर' भी हैं।

इसके बाद-से राजा जी के जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ ता है। राष्ट्रीय संग्राम के इतिहास के साथ ही उनकी जीवन-गाथ ी संबंधित हो जाती है। फिर भी उनका अपना एक अलग व्यक्तित्व जो प्रत्येक रण-क्षेत्र में अपनी विशिष्ट छाप छोड़ता रहा है। प्रत्येक वीन मोर्चे के प्रारम्भ होने के समय देश की आँखें सदैव इस सैनि दृष्टिकोण को समझने के लिए उत्सुक रहती थीं। राजनीति के विद्यार्थ ान्धी युग के इस चाणक्य का पूर्ण अध्ययन न कर सके तो इस

त्तराधिकारी स्वीकार किया था। देशबन्धु दास ने उनके रंगीन रश्मे पर एक बार कहा था कि "उनका रंगीन चश्मा उन्हें दूसरे ो तो अच्छी तरह दिखला देता है, परन्तु वे स्वयमेव अपने को हीं देख सकते।"

अपने स्वतन्त्र निर्णयों पर पहुँचने के लिए वे सदैव प्रसिद्ध रा । अनेकों बार ऐसा हुआ जब कि उनकी सम्मति उनके साथियों लग रही है। परन्तु एक बार एक निश्चय पर पहुँच जाने के बाद छे लौटना तो उन्होंने सीखा नहीं है। विदेशी माल के बहिष्कार के श्न पर कार्यकारिणी के अनेकों सदस्यों की यह सम्मति थी कि हिष्कार स्थगित कर दिया जाना चाहिए और पहले बहिष्कार के योग की जाँच होनी चाहिए। परन्तु राजा जी अपने इस मत पर ड़ रहे कि इस प्रकार बहिष्कार स्थगित कर देने से जनता में गलत हमी फैलेगी।

कौंसिल-प्रवेश-के विवाद ने भी उनकी विचक्षण तर्कना-शक्ति क त्यन्त भव्य रूप हमारे सम्मुख रखा था। गया में कांग्रेस-अधि शन हो रहा था। देशबन्धुदास और मोतीलाल-जैसे दिग्गज कौंसिल वेश के पक्ष में थे। उस समय इन महारथियों की प्रतिभा एवं क्तृत्व-चातुरी अपनी युवावस्था में थी। विरोधी पक्ष का नेतृत्व ाजा जी ने सँभाला और उसका इस प्रकार निर्वाह किया तथा दास वं मोतीलाल नेहरू की युक्तियों का इतना तर्कपूर्ण खण्डन किय क विजय इनके ही हाथ में रही। जन-साधारण तो उनकी तार्किक तिभा के प्रताप को देखकर अवाक् रह ही गया; बड़े-बड़े वक्ताओं

धारणा ही सत्य सिद्ध हुई और पं० मोतीलाल नेहरू आदि को भी त्याग-पत्र देने पड़े।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि राजा जी एक कुशल वक्ता हैं। सच पूछा जाय तो उनमें वक्तृत्व के वैभव का अभाव है। उनकी वाणी में न तो लाला लाजपतराय की सिंह-गर्जना है, न मोतीलाल नेहरू-जैसी आग है; न देशबन्धु दास-जैसा वेगपूर्ण प्रवाह है, न श्री निवास आयंगर की तूफानी कल्पना है और न सरोजिनी नायडू की काव्यमयी स्रोतस्विनी ही है, परन्तु किसी प्रश्न के तर्कपूर्ण सारांश पर पहुँच जाना और फिर तर्कपूर्ण रूप में उसको विद्वानों के सम्मुख उपस्थित कर देना सदैव उनके लिए बाएं हाथ का खेल रहा है। कहा जाता है कि उनकी वक्तृता जन-साधारण के लिए नहीं है; अपितु कार्य-समितियों के लिए है। यही कारण है कि वे जन-साधारण के नेता न बन सके। परन्तु वे जनता के नेताओं के नेता अर्थात् पथ-प्रदर्शक सदैव रहे हैं।

कांग्रेस के क्रियात्मक कार्यों में राजा जी सदैव सक्रिय भाग लेते रहे हैं। सन् १९२८ में मादक-द्रव्य-विरोधी प्रचार का कार्य उनको सौंपा गया। मद्रास और गुजरात में ही राजा जी को इतनी सफलता प्राप्त हुई कि इस संबंध की उनकी कीर्ति हिन्द महासागर को पार कर गई। भारत में उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों में ही मादक-द्रव्यों की अधिक खपत होती है। मध्य श्रेणी के व्यक्ति तो उससे दूर ही रहते हैं। राजा जी ने निम्न श्रेणी के वर्ग में अधिक सफलता प्राप्त की। अखिल भारतीय मद्य-निषेध-संघ-जैसी संस्था की

प्रश्न तो मद्रास में न था, पर जस्टिस पार्टी के सहारे 'ब्राह्मण-अब्राह्मण' का प्रश्न अवश्य उपस्थित किया गया, परन्तु वे विघ्न राजा जी के पथ के रोड़े न बन सके। गोल मेज परिषद् के बाद पुनः गांधी इर्विन समझौते की धज्जियाँ उड़ाई गईं। 'साम्प्रदायिक निर्णय' साम्प्रदायिकता की आग भड़काने का ही कारण बना। तब गान्धी जी का आमरण अनशन और फिर पूना-पैक्ट सामने आया। पूना-पैक्ट की रूप-रेखा तैयार करने में राजा जी का कितना हाथ था यह किसी से अविदित नहीं है। दोनों पक्ष जिस बात को स्वीकार कर लें ऐसी समन्वयात्मक युक्तियाँ निकालने में राजा जी सदैव सिद्धहस्त रहे हैं।

राजनीति से साभिप्राय अथवा कूटनीति-पूर्ण पलायन करने में राजा जी सर्व-प्रसिद्ध रहे हैं। कई बार ऐसे अवसर आए हैं कि जब राजा जी राजनीति को छोड़कर एकान्त मे जाकर बैठ गए हैं परन्तु कुछ ही समय बाद वे पुनः दूने उत्साह के साथ राजनीति में कूद पड़े हैं एवं उन साथियों में पुनः पूर्ववत् घुल-मिल गए हैं जिनके विरोध के कारण वे राजनीति से पृथक् हुए थे। मद्रास के कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल में प्रधान-मन्त्रित्व स्वीकार करने के पूर्व भी वे एक बार अस्थायी वैराग्य स्वीकार कर चुके थे।

कहानी साधारण-सी है। अपने पट्ट शिष्य और देश के एक पर… हुए नेता डाक्टर राजन के द्वारा त्रिचनापल्ली के स्थानीय निर्वाचन … संबंध में अनुशासन-भंग किये जाने पर आपने उनको समस्त सार्व… जनिक संस्थाओं से त्याग-पत्र देने को बाध्य किया। इसके साथ …

आश्चर्य तो तब हुआ जब वही राजा जी मद्रास की राजनीति की माँग पर पुनः उपनिषदों का अनुशीलन छोड़कर मद्रास के कांग्रेसी मंत्रि-मंडल के नेता बन गए और उन्हीं डाक्टर राजन को अपने मन्त्रि-मण्डल का एक सदस्य बना लिया। राजा जी का मन्त्रि-मण्डल कुशलता पूर्ण शासन-प्रणाली के लिए प्रसिद्ध रहा है। अनेकों कांग्रेसी प्रधान-मंत्रियों को उनके-जैसी सफलताएं प्राप्त नहीं हुई हैं। सन् १९३८ में कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलों ने त्याग-पत्र देने का निश्चय किया। राजा जी के बाहर चले जाने से मद्रास-सरकार को पुरानी दकियानूसी विचार-धाराओं को पुनः पनपने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। राजा जी की समग्र सुधार योजनाएं रद्दी की टोकरी में फेंक दी गईं। मद्य-निषेध का जो क्रियात्मक कदम राजा जी की सरकार ने उठाया था, उसे व्यर्थ बना दिया गया। भला युद्ध के कारण बढ़ते हुए व्यय को देखते हुए एक साम्राज्यवादी सरकार यह कैसे सहन कर सकती थी कि आबकारी द्वारा होने वाली आय को रोके रखा जाय ?

त्याग-पत्र की स्वीकृति गिरफ्तारी के वारण्ट के रूप में आई। राजा जी का जेल-जीवन भी एक सादगी-प्रिय सच्चे गान्धीवादी-जैसा ही उन्नत जीवन है। अपनी कोठरी, बर्तनों और पोशाक की स्वयमेव सफाई करना, चर्खा चलाना और पुस्तकों का अध्ययन करना—यही तो उनके समय बिताने के कार्य थे।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि इतिहास अपने-आपको दुहराता है। जीवन-कथा भी एक प्रकार का व्यक्तिगत इतिहास ही है और जीवन में भी कभी-कभी ठीक उसी प्रकार की घटनाएं घटित होती

देने के पक्ष में भी हो गए। मुसलिम लीग के बढ़ते हुए जोर को देखकर उन्होंने अपना प्रसिद्ध समन्वय-सिद्धान्त प्रकाशित किया। यह एक प्रकार से पाकिस्तान का स्वीकार किया जाना था। लोग आश्चर्य में रह गए। पाकिस्तान का कट्टर विरोधी भले ही समझौते के लिए तैयार हो—यह पाकिस्तान कैसे स्वीकार कर रहा है? सबके मुख पर यही प्रश्न था। बस राजा जी पुनः राजनीति से संन्यास लेकर उपनिषदों और धर्मशास्त्रों के अध्ययन में लग गए। बयालीस का तूफान भी उनको विचलित न कर सका। जिस समय देश का बच्चा-बच्चा 'भारत छोड़ो' का नारा लगा रहा था और मातृभूमि की बलिवेदी पर अपनी भेंट चढ़ा रहा था उस समय राजा जी-जैसे कर्मठ व्यक्ति उपनिषदों के तत्त्वों की खोज में लगे रहे, यह कम आश्चर्य की बात न थी।

पर सन्, १९४५ में वे पुनः सामने आ गए। समझौते के प्रयत्नों में वे आगे रहते थे। अन्त में पाकिस्तान बनकर ही रहा। देश ने स्वाधीनता के उत्तरदायित्व को प्राप्त कर अपने इस मेधावी व्यक्ति के महत्त्व को पुनः समझा। वे बंगाल के गवर्नर नियुक्त किये गए।

परन्तु बंगाल की गवर्नरी उनकी सफलता की चरम सीमा न थी यह तो एक सोपान ही थी। जब राजकुमारी एलिजाबेथ के विवाह के अवसर पर लार्ड माउण्टबेटन लन्दन गए तब राजा जी को स्थानापन्न गवर्नर जनरल बनाया गया। उसी दिन लोगों को यह अनुमान हो गया था कि संभवतः राजा जी ही लार्ड माउण्टबेटन के कार्य-काल के समाप्त होने के पश्चात् गवर्नर जनरल बनेंगे। एक

कौटिल्य की कूटनीति, पं० मोतीलाल नेहरू की आत्म-निर्भरता, गान्धी की सर्वाधिकारिता एवं ध्रुव की दृढ़ता का यदि आपको कहीं एकत्र दर्शन करना है तो वह आप राजा जी में पायेंगे। विरोधी भी मुक्तकण्ठ से सदैव उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहे हैं। प्रो० अब्दुल हमीद ने 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित एक लेख में कहा था कि "राजा जी एक बौद्धिक मानव (Intellectual giant) हैं।"



: २६ :

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

[जन्म सन् १८८२]

"समय की पुकार है कि हम आवश्यक कर्तव्य-पालन करने के
लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दें। चारों ओर से हम पर विपत्तियों के
पहाड़ टूटने वाले हैं तथा हमारे शत्रु भेड़िये के सदृश हम पर आक्रमण
करने के लिए बैठे हैं। ऐसे समय में प्रत्येक नवयुवक को अपने देश की
रक्षार्थ शस्त्र उठा लेने चाहिए। यह कहना कि किसी भी परिस्थिति में
शस्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिए, अहिंसा को गलत रीति से सामने
रखना है।"

इकहरा बदन, उन्नत चमकता हुआ मनस्विता का सूचक ललाट,
...न-सी दाढ़ी से घिरा हुआ चाणक्य-सा तेजस्वी मुख-मण्डल, किसी
भी वस्तु की तह तक घुस जाने वाली विवेकपूर्ण दृष्टि और इन सब
पर शासन करती हुई संकल्प की दृढ़ता तथा उद्देश्य में तल्लीनता
की द्योतक कुटिल भ्रकुटी : यही हैं क्षुरस्य-धारा-पथ-गामी सन्त



राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

अमन्द तेजस्विता, शुद्ध सत्यनिष्ठा और ऊँची विसर्जन-भावना अनुकरणीय है।

टण्डन जी का जन्म सन् १८८२ को प्रयाग में हुआ था। संवत् १६०१ में कानून की परीक्षा पास करके प्रयाग में ही आपने वकालत प्रारम्भ कर दी थी। किन्तु जिसके अन्तस्तल में सेवा और देश-भक्ति के स्वच्छ भाव भरे हों, वह महान् व्यक्ति कब तक पेट की ज्वाला बुझाने के लिए अपनी आत्मा का हनन कर सकता था। उनके देश-प्रेम का सबसे बड़ा ज्वलन्त प्रमाण तो यह है कि वे सर्व-प्रथम सन् १८६६ में वालण्टियर होकर और फिर १६०६ में दादाभाई नौरोजी के समय में डेलीगेट होकर कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे। उस समय की कांग्रेस और आज की कांग्रेस में आकाश-पाताल का अन्तर है। उस समय सोलहों आने 'अंग्रेजी' का बोल-बाला था। हमें अंग्रेजी विधान का ज्ञान था; हम अंग्रेजी में उसे पढ़ते थे और उसी का अनुकरण भी करते थे। हम अपनी राजनीति में अंग्रेजी 'पालिटिक्स' के शब्द तथा पूरे-पूरे वाक्य-के-वाक्य ज्यों-के-त्यों दुहराते थे।

राजनीतिक जीवन में पड़कर टण्डन जी की वकालत खूब चमकी; परन्तु सार्वजनिक कार्यकर्ता के लिए यह अभिशाप भी है। ठीक अवसर आते ही रौलट-एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह-संग्राम में टण्डनजी पूर्णतया लग गए। असहयोग-आन्दोलन के प्रारम्भ में ही १६२१ में अच्छी तरह चलती हुई वकालत पर आपने लात मार दी और तब ही सर्व-प्रथम युक्तप्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के प्रधान चुने गए। कार्य-क्षेत्र में जी-जान से जुट जाने पर सरकार की कृपा दृष्टि भी इन पर होनी स्वाभाविक थी; परिणाम स्वरूप डेढ़ वर्ष के लिए असहयोग-आन्दोलन

सक्रिय भाग लिया। सन् १९२४ में स्व० लाला लाजपतराय के आग्रह करने पर आप उनके लोक-सेवक-मण्डल में सम्मिलित हुए और १९२६ में लाहौर जाकर आप पंजाब नेशनल बैंक के सेक्रेटरी नियुक्त हो गए और वहाँ ही रहे। अन्ततोगत्वा १९३० में आपने वह नौकरी भी छोड़ दी और फिर सारा जीवन लोक-सेवा में ही बिताने का दृढ़ संकल्प करके 'लोक-सेवक-मण्डल' के अध्यक्ष हो गए। आपके इस अनुपम त्याग पर एक बार विश्ववन्द्य बापू ने लिखा था कि 'ऐसे ही पुरुषों से राष्ट्र बनता है।'

बैंक की नौकरी छोड़कर वे फिर प्रयाग आ गए और वहाँ के जन-जीवन में ऐसे रम गए कि समय-समय पर उन्होंने प्रयाग की जो बहुमूल्य सेवाएं की हैं, वे चिर-स्मरणीय हैं। आप वहाँ की म्युनिसि-पैलिटी के कई वर्षों तक चेयरमैन भी रहे और प्रयाग की जनता ने उनकी सेवाओं का आदर भी किया। प्रयाग का 'पुरुषोत्तमदास-पार्क' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सन् १९३०-३२ में आपने आन्दोलन में धुआँधार भाग लिया कि उसमें कई बार जेल भोगनी पड़ी। उन दिनों आपकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। वकालत को तो पहले से ही लात मार दी थी। एक बार की बात है कि आर्थिक अवस्था की हीनता के कारण उनके लड़कों को स्कूल से नाम तक भी कटाने पड़े थे, आमदनी का कोई ज़रिया नहीं था। उनके एक मित्र के पास शायद पहले की कमाई का थोड़ा-सा रुपया जमा था; इसी में से ले-लेकर गिरस्ती चलाई जाती थी। उनके बड़े पुत्र श्री स्वामीप्रसाद टण्डन ने कपड़े की एक छोटी-सी दुकान खोल ली थी और उनसे छोटे सन्तप्रसाद

टण्डन जी को भी सूचित किया गया। जेल में जब उनके दोनों पुत्र और श्री वियोगी हरि जी उनसे मिले तब उन्होंने उस मित्र के स्नेह का बहुत आभार माना। पर ऐसा लग रहा था कि उनके स्वाभिमान को उस मित्र के प्रस्ताव से ठेस पहुँची हो। उन्होंने कहा, "तुम इस पत्र का उत्तर तो उसी दिन लिख सकते थे, मुझसे पूछने की ऐसी क्या आवश्यकता थी। देश-सेवा के व्रत को मैं मलिन नहीं करना चाहता। घर का भले ही सर्वनाश हो जाय, पर लोक-सेवा का विक्रय मैं नहीं करूँगा।"

टण्डन जी के त्याग के सामने लाखों दधीचि और शिवि न्योछावर हैं। ऐसी एक नहीं अनेक घटनाएं उनके जीवन-सागर का मन्थन करके निकाली जा सकती हैं। एक बार की बात है। प्रयाग में 'भरत-मिलाप' होने वाला था; परन्तु शाम को कुछ साम्प्रदायिक दंगा हो गया। जनता विचित्र दुविधा में पड़ी थी। लोग बुरी तरह भयभीत थे। सड़कों पर हथियारबन्द पुलिस गश्त लगा रही थी। छतों पर से ईंट-पत्थर फेंके जा रहे थे। ऐसी स्थिति में भरत-मिलाप का जुलूस निकालने का प्रोग्राम रामलीला-समिति ने स्थगित कर दिया। टण्डन जी को लोगों की यह कायरता बड़ी बुरी मालूम हुई। वे तुरन्त 'रामलीला-समिति' के सदस्यों के पास गए और उन्हें फटकारते हुए बोले—"आप लोगों के लिए यह बड़ी शरम की बात है कि आप 'भरत-मिलाप' बन्द कराने की सोच रहे हैं। चन्द गुण्डों की शरारत से डरकर आप इलाहाबाद की शान को बट्टा लगाने जा रहे हैं। यों तो राम-लीला के इस स्वांग के लिए मेरे दिल में कोई इज्जत नहीं। पर

'भरत-मिलाप' बन्द कराने की सोच रहे हैं ।" 'रामलीला-समिति' के अधिकारियों ने यह बताया कि कोई भी अपने लड़कों को 'राम और भरत' बनाने के लिए तैयार नहीं है, ऐसी अवस्था में जुलूस कैसे निकल सकता है ? इस पर टण्डन जी ने कहा—"आप यह क्या लचर दलील दे रहे हैं ! ज्यादा-से-ज्यादा यही होगा न कि वे लड़के गुण्डों के हाथों मारे जायंगे ? अगर ऐसा हो, तब भी अन्त में उसका अच्छा ही असर पड़ेगा । लोगों के अन्दर इससे शक्ति पैदा होगी । चलिए, इस काम के लिए मैं अपने दो लड़कों को देता हूँ । अगर वे मारे गए, तो उनके बाद दो लड़के और दूँगा । 'भरत-मिलाप' होगा, और फिर होगा ।"

टण्डन जी के ओजस्वी शब्द काम कर गए । उस समय एक-दो जिम्मेवार मुसलमान नेता भी वहाँ उपस्थित थे; उन्होंने भी गड़बड़ न होने देने का पूर्ण भरोसा दिलाया और 'भरत-मिलाप' हुआ, और बड़ी शान एवं शान्ति से हुआ । इसी प्रकार इलाहाबाद के एक दूसरे हिन्दू-मुस्लिम दंगे के अवसर पर भी टण्डन जी की वही तेजस्विता एवं निर्भयता देखने में आई । नंगे सिर, नंगे पैरों बिलकुल निहत्थे वे घंटाघर के आगे पहुँचे, जहाँ दंगाइयों का खासा जमघट था । उन्हें जाकर डाटा और डरी हुई औरतों तथा बच्चों को बगल के मुहल्ले में से निकाल कर उनके घरों पर पहुँचाया ।

टण्डन जी की तेजस्विता ने असत्य के साथ कभी समझौता नहीं किया । अनौचित्य के आगे वे कभी दबे या झुके नहीं । राजनीतिक हेतु समझने के लिए दांव-पेच का हलका मार्ग ग्रहण करना उन्होंने

के आजादी की लड़ाई के दौरान में मोर्चे की कतारों में कोई दरार न पड़ने पाय। इसीलिए बड़े-बड़े निर्णय, बड़ी-बड़ी समस्याएं, बड़े-बड़े मोड़ आये, जिनकी वजह से टण्डन जी के सामने राजनीति एक महान् प्रश्न-चिह्न बनकर खड़ी हो गई। राजनीति के उस चौराहों पर एक ओर राष्ट्रीय आन्दोलन की अविभाज्यता थी और दूसरी ओर विरोध; लेकिन टण्डन जी ने सदा समन्वय का मार्ग अपनाया।

कई वर्ष पूर्व की बात है। शायद १९३९-४० की अगहन के कुहरे में लिपटी हुई धुंधली शाम को प्रयाग के 'टण्डन-पार्क' में एक कांग्रेस की सार्वजनिक सभा हो रही थी। टण्डन जी उसके अध्यक्ष थे। नेहरू जी के भाषण के बाद माइक नीचा किया गया और शाम की सिहरती हवाओं में आवाज़ों के शोले लहरा उठे। टण्डन जी बोल रहे थे "......रास्ता, रास्ता अभी बहुत लम्बा है; लक्ष्य, लक्ष्य अभी बहुत दूर है। और हम लोग तो योद्धा हैं। हमें तो लड़ना है, और अपने फायदे का हिसाब करना मेरी निगाह में, मेरी दृष्टि में, कायरता है। आज से शताब्दियों पूर्व इस रास्ते के लिए कबीर लिख गया था—'कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नांहि। सीस उतारे भुइं धरै, तब पैठे घर मांहि'।" लगा जैसे सारे मजमे पर किसी ने सोने के तारों की एक दहकती हुई चादर उढ़ा दी हो, और उसकी तड़पन आत्मा की पर्तों को चीरकर उतर गई हो। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो अखिल भारत की अनन्त प्रवहमान संस्कृति के निर्माता, विद्रोही सन्तों की आत्मा का स्वर शाम के कोहरे के पंखों पर उतर आया हो। लगा: पुराणों के पन्नों में जान आ गई है और दुर्गा सप्तशती की विद्रोहिणी भाषा बोलती सती का

ौर राजनीति से भी अधिक विद्रोही, अधिक पवित्र और अधिक देवत्व-
ाय है। यह बोली राजनीति की नहीं, संस्कृति की थी।

टण्डन जी की एक सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि वे विज्ञापन
ो दूर रहकर सेवा करना जानते हैं। युक्तप्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभ
े अध्यक्ष के नाते उनकी सेवाएं देश के निर्माण में गौरव के साथ याद
ी जायंगी। साम्प्रदायिकता का किसी भी रूप में फूलना, फलना और
नपना उन्हें पसन्द नहीं। भारत के विभाजन पर जैसे उनके रोम-रोम
ें आग लग गई। इसमें उन्होंने कांग्रेस का दब्बूपन देखा और देश
े प्रति द्रोह भी समझा। 'तुष्टीकरण' की इस नपुंसक नीति का उन्होंने
र्वदा से विरोध किया है। वे यह मानते हैं कि साम्प्रदायिकता का
विष-वृक्ष' तुष्टीकरण की नीति से ही पनपा और बढ़ा है। इसी के
ारण उन्होंने देश के अनेक नेताओं का भारी विरोध भी सहा और
ायद गान्धीजी का सबसे कड़ा विरोध उन्हें सहना पड़ा है, हिन्दी के
ामले में। उत्तर-भारत के हिन्दी-उर्दू-विरोध की परिस्थिति ठीक-ठीक
मझने में गान्धीजी अपने अति उदार दृष्टिकोण और अपनी अत्यधिक
्यस्तता के कारण सदा असमर्थ रहे। इसके अतिरिक्त गान्धीजी के
ारों ओर कुछ इस प्रकार के लोगों ने एक घेरा-सा बना रखा था
िनका भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण बड़ा ही विकृत था और जो सही-
ही बातें उनके सामने तक पहुँचने भी नहीं देते थे। भाषा के प्रश्न
र उस समय गान्धीजी का स्पष्ट विरोध करके चलना अपनी राज-
ीतिक मृत्यु को आमंत्रित करना था, लेकिन टण्डन जी ने बड़े साहस
े अपनी आवाज बुलन्द की। दुर्भाग्य से उनका प्रकृति-सिद्ध राष्ट्र-भाषा
हिन्दी का पक्ष भी ग़लत समझा गया। हिन्दी और हिन्दी-साहित्य-

ांप्रदायिकता फैलती है, तो उसी क्षण हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यालय में आग लगा देता।”

लोग कहते हैं कि इतना त्याग और बलिदान करने पर भी टण्डन जी राजनीतिक क्षेत्र में बहुत आगे नहीं बढ़ सके, वे कांग्रेस-कार्य-समिति में भी नहीं आ सके। किन्तु वे यह नहीं जानते कि राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने या 'कार्य-समिति' में आने के लिए देश-भक्ति के अलावा कुछ और भी साधनों की आवश्यकता हुआ करती है। उन साधनों का सौभाग्य से टण्डन जी के अन्दर अभाव है। असत्य के साथ उन्होंने कभी किसी भी रूप में समझौता नहीं किया। उन्होंने वकालत भी की, और खासी की; किन्तु असत्य को उसमें भी नहीं घुसने दिया। सिद्धान्तों की खातिर भारी-से-भारी स्वार्थ का बलिदान कर देना उनकी अपनी विशेषता रही है। बहुत बरसों से टण्डन जी ने चमड़े के जूते या चप्पल पहनना छोड़ रखा था। उनकी इस भावना के मूल में शुद्ध दया थी। उन्होंने अधिकांश रबर-टायर, या सुतली के तले की, जिनमें खादी की पट्टियाँ लगी रहती थीं, चप्पलें पहनी थीं। एक बार श्री टण्डन जी ने श्री वियोगी हरि को मुर्दार पशु की खाल की चप्पलें भेजने को लिखा। उन्होंने भेड़ के चमड़े की चप्पलें टण्डन जी को भेज दीं, किन्तु वे मुर्दार चमड़े की नहीं थीं। इस पर वे बड़े बिगड़े और गान्धी जी की इस सम्बन्ध में दी गई व्यवस्था की दलील भी उनके गले में नहीं उतरी। संयोग से गान्धी जी भी उन दिनों 'हरिजन-उद्योगशाला' में ठहरे हुए थे। वियोगी हरि जी ने जब उनसे टण्डन जी की इस बात का जिक्र किया तो गान्धी जी सुनकर हँसे, और बोले, “पुरुषोत्तमदास जी की प्रकृति को मैं जानता हूँ। तुम क्या ऐसी चप्पलें ...

वहां कुछ क्षेत्रों में टण्डन जी का सरल हृदय और निष्कपट विश्वास बहुत हानि पहुँचाता है। कम-से-कम राजनीतिक क्षेत्र में तो अपने योग्य साथी चुनने और निर्णय करने में टण्डन जी की कूटनीति-हीन सरल विश्वासी प्रवृत्ति बहुत बाधक रही है। जयपुर के कांग्रेस-अधिवेशन के राष्ट्रपतित्व के लिए उनका असफल हो जाना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। उन्होंने प्रायः कांग्रेस-हाई कमाण्ड के विरुद्ध मोर्चा लिया है। सहायक और समर्थक साथियों के अभाव में; अपनी आवाज में सचाई रखते हुए भी,वे सफल नहीं हो सके। जहाँ उनके व्यक्तित्व में इतनी ऊँचाई और साधना है वहाँ यदि उनमें थोड़ी-सी कूटनीति होती तो कदाचित् राजर्षि टण्डन का नेतृत्व देश को कहीं और ही ले गया होता। विश्व-विख्यात राजनीतिज्ञ कार्लाइल की निम्नलिखित पंक्तियाँ राजर्षि टण्डन के सम्बन्ध में अक्षरशः सही उतरती मालूम होती हैं—

"जिस किसी के दिल में सचाई हो, जिस किसी की नसों में विद्रोह की चिनगारी हो, जिस किसी के माथे पर ईमानदारी की रोशनी जगमगाती हो, अपने जिन्दगी-भर के अनुभव के बाद मेरी यह गम्भीर सलाह है कि उसे राजनीतिक क्षेत्र में भूलकर भी कदम नहीं रखना चाहिए। लेकिन हाय रे, हमारे युग की मजबूरी कि हमारी रूह में बगावत का एक ऐसा शोला है, कि जो हमें अपनी आरामगाह में चैन से नहीं बैठने देता।"





: २७ :

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद

[जन्म सन् १८८४]

"हम लोगों को पीछे नहीं मुड़ना है । लक्ष्य सुस्पष्ट है । वह स्वतन्त्र
अणु-मात्र भी कम नहीं है । यह जनता की व्यापक, अनवर
हिंसात्मक कार्यवाही है । हम एक बार असफल होंगे, दो बार हों
न्तु एक-न-एक दिन अवश्य सफल होंगे ।"

दुबला-पतला लम्बा शरीर, तेजस्वी नेत्र, लम्बी मूँछें, उनके बी
से बहती हुई मुस्कान की मंदाकिनी, दीर्घ नासिका, उन्नत ललाट
डम्बर-हीन चाल, देव-तुल्य स्वभाव : यही हैं सत्य, अहिंसा ए
ग-तपस्या की प्रतिमूर्ति, कांग्रेस के वशिष्ठ, बिहार के गान्धी औ
न्धीजी के परम भक्त बा० राजेन्द्रप्रसाद । वही प्रसाद, जिन्होंने अप
ान् सेवाओं तथा अमूल्य त्याग के द्वारा राष्ट्र के कण-कण को अप
ा दिया है । गान्धीजी के व्यक्तित्व और दर्शन की अमिट छाप कि
है ? गान्धीजी की आत्मा किसमें बोल रही है ? गान्धी के सच
क कौन हैं ? गान्धीजी की मूर्ति का सामूहिक प्रतिफलन कि

सदस्य होने के अतिरिक्त उस पत्र में लेखादि भी लिखा करते थे। १९०६ में आपने बिहारी-छात्र-सम्मेलन का संगठन करके उसका प्रथम अधिवेशन पटना में करवाया। १९२२ तक उस सम्मेलन के नियमित अधिवेशन होते रहे और उसने बिहार के विद्यार्थियों को जाग्रत तथा संगठित करने का बहुत बड़ा काम किया। आपकी लोक-सेवा की इस रुचि और प्रवृत्ति को देखकर १९१० में श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने आपसे 'सर्वेण्ट्स आफ-इण्डिया-सोसाइटी' का सदस्य बनने के लिए आग्रह किया। आप इसके लिए तैयार हो गए, परन्तु आपके बड़े भाई महेन्द्रप्रसाद और आपकी माता ने ऐसा न करने दिया। उस सम्बन्ध में आपने अपने बड़े भाई को एक पत्र लिखा था, जिससे आपकी उस समय की सरलता, सादगी, निस्पृहता और निःस्वार्थ सेवा-भाव का परिचय मिलता है। आपने उन्हें लिखा था—

"मैं आपसे आमने-सामने बातें न कर सका। मैं अपने में एक ऊँची और पवित्र भावना का अनुभव कर रहा हूँ। आपको कठिनाई में डालना मेरे लिए शोभा नहीं देता। फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि आप ३० करोड़ के लिए कुछ त्याग करें। गोखले की सोसाइटी का सदस्य होना मेरे लिए कोई त्याग नहीं है। अच्छा हो या बुरा; परन्तु मुझे ऐसा अभ्यास है कि मैं अपने को कैसी भी परिस्थिति के अनुकूल बना सकता हूँ। मेरा रहन-सहन भी इतना सीधा-सादा और सरल है कि मुझको कोई विशेष सुख-सुविधा और आराम नहीं चाहिए। मुझे सोसाइटी से जो कुछ मिलेगा, काफी होगा। पर मुझे यह

ी है, उससे अधिक की इच्छा सदा बनी रहती है। प्रसन्नत
ाहर से नहीं, भीतर से उत्पन्न होती है। एक गरीब आदम
अपनी छोटी-सी पूँजी में लखपती की अपेक्षा कहीं अधिक संतु
ता है। हमें गरीबी के प्रति घृणा नहीं करनी चाहिए। संसा
जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब अत्यन्त गरीब रहे हैं
ुरू-शुरू में उनको अनेक कष्ट भोगने पड़े हैं और उनको घृण
ी दृष्टि से देखा गया है, किन्तु अन्त में अत्याचार और घृण
रने वाले धूल में मिल गए, उनको जानने-पहचानने वाला भ
ोई नहीं रहा। अत्याचार तथा घृणा का विरोध करने वाल
ो लाखों याद करते हैं और वे उनके हृदयों मे बस जाते हैं
ी यदि कुछ भी महत्त्वाकांक्षा है तो वह यही है कि मैं भारत
ाता की कुछ भी तो सेवा कर सकूँ। गोखले की-सी प्रतिष्ठ
ौरव और प्रभाव किस राजा को प्राप्त हुआ है? क्या गोखल
गरीब नहीं हैं?"

२५-२६ वर्ष की आयु में आपने जो ये शब्द लिखे थे, आज आप
ीवन में उनकी सचाई पूरे रूप में प्रकट हो रही है। यदि आप उ
मय गोखले की सोसाइटी के सभासद हो गए होते, तो कौन क
कता है कि आप आज कहाँ होते और क्या होते? परन्तु यह भ
ष्ट है कि उस समय सोसाइटी का सदस्य न होना आपके औ
श के लिए हितकर ही हुआ। सादगी, सरलता, देश-भक्ति और देश
ेवा की भावना का आपमें इस समय जैसा पूर्ण विकास हुआ है
ह होता या नहीं। और इसमें भी सन्देह है कि तब देश के लि
ेच्छा से गरीबी अंगीकार करने का संकल्प भी पूर्ण होता कि नहीं।

असहयोग-आन्दोलन शुरू हो गया और तब आपने यूनिवर्सिटी अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। हिन्दी की सेवा आपने यूनि वर्सिटी में उसे उच्च स्थान दिलाने का प्रयत्न करके ही नहीं की, अपि अन्य भी अनेक उपायों से की है। १९२१ में आप हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के कलकत्ता-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बने थे। १९३५ नागपुर में अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति थे पटना से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'देश' के आप प्रवर्त्तक थे औ कई वर्ष तक उसका सम्पादन भी किया था। १९२३ में कोकोनाडा दक्षिण भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापतित्व भी आपने किया था। पटना 'ला वीकली' के आप संस्थापक हैं। आप भारत इतिहास-परिषद् के रेक्टर भी हैं। आपकी लिखी पुस्तकें 'खण्डि भारत' और 'आत्म-कथा' आपके गुणों और क्षमताओं की स्मा हैं और जब इनके रचयिता वर्तमान राजनीति में उपस्थित न होंगे त भी यह अनेक पीढ़ियों को उनकी याद दिलाती रहेंगी। उन इतिहास के पृष्ठों की श्री-वृद्धि हुई है। हिन्दी भाषा के सम्बन्ध आपकी एक विशेषता यह है कि अंग्रेजी की उच्चतम शिक्षा प्राप्त क पर भी आप बोल-चाल में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग नहीं करते।

फरवरी १९२१ में जब सरकारी स्कूल और कालिजों का बहिष्क हुआ तो आपने अपने मित्रों के साथ मिलकर राष्ट्रीय विद्यालयों व विद्यापीठ की स्थापना की थी। बिहारी-छात्र-सम्मेलन द्वारा सरक स्कूल-कालिज छोड़ने का संगठित आन्दोलन किया गया था, परिण यह हुआ कि कुछ ही महीनों में विद्यापीठ के मातहत सैकड़ों स

बिहार-शाखा को मज़बूत करने में संलग्न रहे। आपके उस एकान्
भाव का ही यह परिणाम है कि बिहार आज कांग्रेस का ग
हुआ है।

आपके हृदय में दीन, दुखी और संकटापन्न लोगों के लिए सहा
ा का सागर ठाँ मारता रहता है। बिहार के प्रलयकारी भूक
ाद आपके जिस सेवा-भाव का परिचय देशवासियों को १९३४
ा, उसका परिचय अपने प्रान्तवासियों को आप बहुत पहले
थे। बिहार के लोग प्रायः प्राकृतिक कोपों के शिकार होते ही रह
१९१३ में दामोदर और पुनपुन नदियों की बाढ़ों ने बिहार
ानक त्रास फैला दिया था, १९२२ में गंगा की बाढ़ ने भीषण संक
ान्न कर दिया था, १९३१ में दुर्भिक्ष ने चम्पारन को उजाड़ दि
। ऐसे सब अवसरों पर आपने अपनी बीमारी की कुछ भी पर्वाह
े हुए अपना खून-पसीना एक करके जनता की सेवा करने में को
र उठा न रखी। १९३४ में बिहार में घातक भूकम्प से जनता
ान् दुर्दशा हुई। उस समय आप जेल में थे, यह समाचार सुन
को गहरा मानसिक आघात पहुँचा और आपका रोग बहुत ब
ा। सरकार भी आपकी सेवा-वृत्ति को खूब जानती थी; अतः आप
न्त जेल से रिहा कर दिया गया। भूकम्प से पीड़ित जनता
ो देवता मिल गया हो, आपने पीड़ितों के सहायता-कार्य में दि
ा एक कर दिया। आपकी एक आवाज़ पर, दुखी बिहार की से
लिए, सारा देश उठ खड़ा हुआ और देशवासियों ने २६ लाख रु
भारी रकम और बहुत-सा सामान आपके हाथों में सौंप दिया
। १९३५ में क्वेटा में भयंकर भूकम्प आया। सरकार

या। उनकी सहायता के लिए आपने 'क्वेटा-भूकम्प-कष्ट-निवारिण समिति' का संगठन किया और पंजाब तथा सिन्ध का दौरा कर स्थान-स्थान पर उक्त समिति के केन्द्र स्थापित किये, उन्हीं दिनों ई आई० आर० पर भीषण बीहटा-रेलवे-दुर्घटना हुई। तब आप घटन स्थल पर गये और वहां आहतों की सेवा-शुश्रूषा का कार्य संगठि किया।

सन् १९१७ में बिहार के किसानों पर भीषण अत्याचार हो र था। किसानों में अशान्ति और असन्तोष का भयंकर ज्वालामुख धधक रहा था। चम्पारन में नील की कोठी के गोरे मालिक वहां मजदूरों पर मनमाने अत्याचार कर रहे थे। आप समस्त परिस्थि का गम्भीरता से अध्ययन कर रहे थे। इन्हीं दिनों महात्मा गान्ध दक्षिण अफ्रीका से अपने नये अनुभव लेकर वापस आये। उन्हों बिहार की स्थिति देखी और अपने सत्याग्रह के परीक्षणों के लि चम्पारन का क्षेत्र ही उन्हें उपयुक्त जँचा। राजेन्द्र बाबू तो एक व सैनिक थे और उन्हें एक सुयोग्य सेनानी की खोज भी थी। अत आपने अपनी सेवाएं गान्धीजी को अर्पित कर दीं। इस प्रकर आ गान्धीजी के आचार्यत्व में अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धान्तों क शिक्षा पाने लगे। जिस प्रकार आप अपने विद्यार्थी-जीवन की परीक्ष में सर्वप्रथम रहे, उसी प्रकार गान्धीजी जैसे कठिन परीक्षक की परीक्ष में भी आप उत्तीर्ण रहे।

चम्पारन-आन्दोलन में ही गान्धी जी समझ गए कि इस तेजस्व युवक में भारत के स्वाधीनता-संग्राम के महान् भार और उत्तरदायित्

ग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, उसमें आप प्रथम वार कांग्रेस में म्मिलित हुए। तत्पश्चात् १९१६ में लखनऊ में और १९१९ में मृतसर की कांग्रेस में शामिल हुए। तब से आपका कांग्रेस के साथ थायी सम्बन्ध हो गया। राष्ट्रीय आन्दोलनों में प्रमुख भाग लेते यह असम्भव था कि आप वकालत भी करते रहते। यद्यपि वकालत आप काफी धनोपार्जन कर लेते थे, तथापि आपकी स्वातन्त्र्य-प्रिय त्मा ने आपको वकालत छोड़ने पर विवश कर दिया। अतः आपने १९२१ में ऐसे समय अपनी वकालत छोड़ी, जब कि हाईकोर्ट के यायाधीश होने वाले थे।

सन् १९२२ में गया में हुई कांग्रेस के आप स्वागत-मन्त्री बनाये सन् १९३०-२१ और ३२ के सत्याग्रह-आन्दोलनों में आपने तीन र जेल-यात्रा की। अनेक बार पुलिस की बर्बरतापूर्ण लाठियों की टें खाईं। आप सदैव ही वीर सैनिक की भाँति मैदान में डटे रहे पका १९३२ में कटक में होने वाली कांग्रेस का सभापति होन श्चित किया गया था, किन्तु उस वर्ष सत्याग्रह छिड़ जाने के कारण ह अधिवेशन ही न हो सका। अतः १९३४ में बम्बई में कांग्रेस के तालीसवें अधिवेशन में आप सभापति निर्वाचित हुए। उस समय पका अभूतपूर्व स्वागत और सम्मान हुआ था। बम्बई का य धिवेशन बहुत तंग समय में, विपरीत परिस्थितियों में और राष्ट्री र्यकर्त्ताओं में छाये हुए गहरे मतभेद के वातावरण में हुआ था न्धीजी राजनीति से अलग होने की घोषणा कर चुके थे, मालवी ी साम्प्रदायिक विचारों को लेकर अपना अलग अखाड़ा बना चु र और नवयुवकों ने समाजवादी दल की पताका अलग ही फहरा द ं। सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर देने से देश के सार्वजनिक जीव

अधिक सफलता मिली। विषय-समिति में आपका विनोदपूर्ण नियन्‍
देखकर सब लोग चकित रह गए। आपका भाषण बहुत प्रभावशा
और विवेचनात्मक था। सुधार-योजना के श्वेत-पत्र की विद्वत्ता
आलोचना करके आपने उसकी बुरी तरह धज्जियाँ उड़ाई थीं। इ
काल केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव हुए थे। आपने राष्ट्रपति की है
यत से सारे देश का तूफानी दौरा किया। आज तक पं० जवाहरल
नेहरू के अतिरिक्त अन्य किसी राष्ट्रपति ने इतने विस्तृत दौरे न
किये। देश की राष्ट्रीय शक्तियों का संचय करके आपने प्रतिक्रिया
हो जाने पर भी, राजनीतिक चेतना को मरने से बचाया है। गत व
वर्षों में खाली हुए कांग्रेस के कोष को समृद्ध किया है। गान्धी-से
संघ, चर्खा-संघ और कांग्रेस-पार्लमेंटरी बोर्ड आदि की जिम्मेदारी
भी आपने पूरी तरह निबाहा है। कांग्रेस-कार्यकर्ताओं में पैदा
मतभेद को दूर करने का आपने निरन्तर प्रयत्न किया है। कांग्रेस
स्वर्ण-जयन्ती भी आपके राष्ट्रपति-काल में ही मनाई गई थी।

सन् १९३६ के अगस्त मास में आपने सीमाप्रान्त का तूफानी दौ
किया। एबटाबाद और पेशावर आदि में आपको मान-पत्र भेंट कि
गए। उन दिनों आप सीमान्त-गान्धी के घर पर भी गए थे। हिन्
दुस्तान की यात्रा पर आये हुए लार्ड लोथियन ने २७ दिसम्बर १९३७
आपसे भेंट की थी। राजबन्दियों की रिहाई के सवाल को हल क
के लिए आपने काफी परिश्रम किया था। बिहार में इस सवाल
लेकर जब वैधानिक संकट पैदा हुआ। उस समय आप अस्पताल
बीमार पड़े थे। साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के लिए आप स

समय कांग्रेस के भीतर फूट पड़ी हुई थी और अन्तर्राष्ट्रीय जगत् पर युद्ध के बादल मँडरा रहे थे। ऐसी नाज़ुक परिस्थिति में राष्ट्र के आन्दोलन का संचालन करने के योग्य कांग्रेस ने आपको ही समझा। पुनः अनिच्छा होते हुए भी एक सच्चे राष्ट्र-सैनिक की भाँति आपने देश की आज्ञा को स्वीकार करके अपूर्व साहस का परिचय दिया। इसके पश्चात् कलकत्ता में होने वाली अ० भा० कांग्रेस-कमेटी की बैठक में जो हुल्लड़ मचा तथा आपके प्रति जिस असभ्य व्यवहार का प्रदर्शन हुआ उसे इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी भली प्रकार जानता है। किन्तु आपके हृदय में इस घटना से तनिक भी विक्षोभ न हुआ। इसके पश्चात् सन् १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह में, तथा १९४२ में 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव पास होने पर अन्य नेताओं के साथ आप भी गिरफ्तार होकर जेल चले गए।

जून सन् १९४५ में अन्य नेताओं के साथ आप भी रिहा हुए। इन्हीं दिनों कैबिनेट-मिशन से बातचीत में आप सम्मिलित रहे और २ सितम्बर को जो अन्तिम सरकार स्थापित हुई, उसमें आप खाद्य-मन्त्री के पद पर नियुक्त हुए। दिसम्बर १९४६ में आपको भारतीय विधान-परिषद् का अध्यक्ष बनाया गया; फलतः स्वतन्त्र भारत का विधान आपकी अध्यक्षता में ही पूर्ण हुआ। १४ नवम्बर १९४७ को आचार्य कृपलानी के त्याग-पत्र देने पर आपको पुनः कांग्रेस का राष्ट्रपति बनाया गया और आपने विधान-परिषद् की अध्यक्षता के साथ-साथ इस पद के उत्तरदायित्व को भी पूरी तरह निबाहा।

आप दमा के रोग से पीड़ित रहते हुए भी अथक कार्य करते हैं। आत्म-ख्याति, दर्प तथा क्रोध तो आपके पास तक भी नहीं फटकते। आप कभी भी जल्द-बाजी में अपना फैसला नहीं करते, प्रत्येक बात

: २८ :

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त

[जन्म सन् १८८६]

"मै एक वर्गहीन समाज की स्थापना का इच्छुक हूँ, परन्तु मैं जानता हूँ कि उसकी स्थापना केवल अहिंसात्मक नीति और रचनात्मक कार्यों से ही हो सकती है। एक दूसरे के विरुद्ध घृणा और हिंसा के प्रचार से यह सम्भव नही। कांग्रेस प्रजातन्त्रीय समाजवाद के आधार पर स्थिर है। हम मनुष्य-समाज में समानता चाहते हैं और प्रत्येक नागरिक के लिए प्रत्येक सुविधाए सुलभ कर देना चाहते है।"

ऊँचा कद, भारी गठा हुआ पहाड़ी शरीर, उस पर शुद्ध खादी के श्वेत वस्त्र-धोती-कुर्त्ता-सिर पर गान्धी टोपी, और घनी मूँछों के नीचे निरन्तर संघर्षों की आँच के कारण बोलते समय हिलने वाली गरदन को देखकर युक्तप्रान्त के प्रधान-मन्त्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त की उस गम्भीरता और दृढ़ता का सहज ही अनुभव हो जाता है, जिसकी छाप लौह-पुरुष सरदार पटेल की मुख-मुद्रा पर भी स्पष्टतया अंकित है। पन्त जी ने यह गुण अपने जन-सेवामय लम्बे जीवन में ठोस कार्य करके सम्पादित किये हैं।

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त

स्था और राजकीय अर्थ-व्यवस्था-सम्बन्धी ज्ञान और शासन-संचा
की क्षमता अन्य किसी व्यक्ति में कठिनाई से ही मिलेगी।

पन्त जी का जन्म कुमायूँ-खण्ड के पर्वतीय प्रदेश के एक ब्राह्मण
वार में सितम्बर १८८६ में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्ष
मोड़ा में हुई और बाद में इलाहाबाद में आपने उच्च शिक्षा पाई
वविद्यालय में आपका जीवन अत्यन्त प्रभावोत्पादक और तेजस्व
। शिक्षा समाप्त करके आपने वकालत प्रारम्भ की और उसमें आप
न थोड़े ही समय में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली। वकालत के प्रारम्
ही अपने आपने क्षेत्र में ही प्रथम स्थान प्राप्त नहीं किया
त जन-प्रियता में भी आपका स्थान अल्पकाल में ही बहुत उच्
गया। आपकी इस सफलता का रहस्य आपका कठिन परिश्रम औ
की सहज कुशाग्र बुद्धि का मणि-काञ्चन-संयोग है। वह संयो
सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं पर अन्ततः अवश्य ही विजयी होत
अतएव पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त का शीघ्र ही संयुक्त प्रान्त में ए
म श्रेणी का वकील गिना जाने लगना, कोई आश्चर्य की बात न।
आपकी वकालत खूब ही चलती थी और उससे आपको अच्छ
मदनी हो जाती थी। एक वकील के रूप में आपकी शक्तियाँ ठी
गाह पर थीं। परन्तु उनकी उन शक्तियों का उद्देश्य स्वार्थ-लभ
ी वकालत नहीं था। उन शक्तियों का विकास केवल अपने वि
और बौद्धिक यशोपार्जन के ही लिए नहीं हुआ था, प्रत्युत जन
वास्तविक सेवा के लिए ही इन महती शक्तियों का पण्डित प
व्यक्तित्व में विकास हुआ था। और यही कारण है कि जब १९
महात्मा गान्धी ने मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए तैयार होने

अपना मार्ग निश्चित किया। वकालत का चोगा दूर जा पड़ा और उनका उच्च विशाल शरीर अहिंसक स्वातन्त्र्य सैन्य के परिधान से अलंकृत हुआ। देश-प्रेम के आगे व्यक्तिगत सम्मान और यश प्राप्त करने की लालसा न जाने कहाँ तिरोहित हो गई।

आपने देश-सेवा का व्रत ग्रहण किया और तब से अब तक आप उसका पूरी तरह से पालन करते चले आ रहे हैं। गान्धीजी के आवाहन पर आपने उनके सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन को जो गति और प्रेरणा उस समय दी थी, उसकी क्षीण-सी आभा अब भी आपके चेहरे से देखी जा सकती है। उस समय से ही आपने देश की स्वतंत्रता तथा उसके निवासियों की निर्धनता को दूर करने का लक्ष्य बना लिया था। सार्वजनिक क्षेत्र में कूद पड़ने का जो परिणाम होना था, आखिर वही होकर रहा। उनकी वकालत दिनानुदिन मन्द पड़ती गई। धीरे धीरे व्यावसायिक स्तर ढीला होता चला गया और एक दिन वह आया जब पैतृक सम्पत्ति पर भी हाथ साफ होने लगा। इस आर्थिक कठिनाई के बावजूद भी दृढ़-व्रती पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने देश के लिए ऐशो-इशरत का जीवन छोड़कर फकीरी अपनाई।

धीरे-धीरे जनता ने अपने सेवक को पहचाना और उसका यथोचित सम्मान किया। अपनी निरन्तर कार्यशीलता के कारण ही आप १९२३ में युक्तप्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौन्सिल के सदस्य चुने गए। उस समय आपने अपने वैधानिक ज्ञान और अपूर्व कार्यक्षमता से लोगों को चकित और प्रभावित कर दिया। जब पंडित मोतीलाल नेहरू ने 'स्वराज्य-पार्टी' बनाई थी तो संयुक्त प्रान्त में आप ही उसके प्रमुख नेता चुने गए थे। उस समय आपने अपने कुशल नेतृत्व और

पने देश-कार्य में भाग लेना प्रारम्भ किया था तब ही से एक विस्तृत
ग्योगी का जीवन आप बिताते रहे हैं।

सन् १९३४ से १९३६ तक आप केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्य रहे
र यहीं पर आपकी असाधारण वैधानिक क्षमता और चातुर्य क
र्शन हुआ। आपकी वाद-विवाद करने की अजेय शक्ति से विपक्ष
ी तरह घबराते थे। आपके व्यंग तीखे, महान्, शक्तिशाली और
यास्थान प्रहार करने वाले होते थे। आपके तर्क के प्रहारों के समक्ष
रोधी दल के छक्के छूट जाते थे। आपकी तर्कपूर्ण वाग्धारा से
:सृत होने वाली अग्नि विपक्ष को भस्मसात् करके ही छोड़ती थी
न्द्रीय धारा-सभा में पक्ष तथा विपक्ष वाले सभी आपका लोहा मानते
। आज सब ही यह निर्विवाद स्वीकार करते हैं कि देश की आर्थिक
वस्था को गहराई से समझने वाला कदाचित् आपके समान कोई
सरा नहीं है। केन्द्रीय धारा-सभा में बजट की जो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म
ालोचना आप करते थे और उसके दोष तथा उनके अन्दर छिपी हु
ारतों को जिस खूबी से निकालकर आप बाहर रख देते थे, उससे
कालीन अर्थ-सदस्य को तो आप साक्षात् काल-रूप मालूम होते थे
ांग्रेस में आपके सहयोगियों ने आपकी इन असाधारण क्षमताओं की
शंसा प्रतिष्ठा की और सन् १९३६-३७ में जो 'कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड
ना, उसके आप जनरल सेक्रेटरी बनाये गए।

आपकी क्षमताओं का पूर्ण परिचय तो हमें तब प्राप्त हुआ ज
ापने सन् १९३७ में संयुक्त प्रान्त के प्रधान मंत्री के पद को ग्रहण
ेया। आपने उसका ऐसी कुशलता से निर्वाह किया कि पक्ष-विपक्ष

। प्रकट किया था कि:—"अन्य सभी प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डलों पन्तजी का संयुक्त प्रान्तीय सरकार का मन्त्रि-मण्डल योग्यतम ।" इसका प्रधान श्रेय पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त और उनके कालीन सहयोगी श्री रफीअहमद किदवई को ही है। पन्त-मन्त्रि ण्डल तो बुद्धि, क्षमताओं तथा विभिन्न विशेषताओं का ही एक पूर्व संघात था। तत्कालीन मंत्रि-मण्डल में उनके सहयोगी सर्वश्री ी अहमद किदवई, डाक्टर कैलाशनाथ काटजू, सम्पूर्णानन्द, विजय- क्ष्मी पण्डित और हाफ़िज मुहम्मद इब्राहीम थे। और सौभाग्य से इन ब महानुभावों के सक्रिय सहयोग ने ही पन्त जी की यशःपताका को ौर भी स्वच्छन्द रूप से फहराया।

उस समय पन्त-मन्त्रि-मण्डल ने बहुत-से उपयोगी सुधारों क ग्रपात किया था और जिमींदारी-प्रथा का समूलोन्मूलन करने के मित्त उठाये गए कदम का सजीव प्रमाण उनका 'किसान कानून' है स समय उनसे असन्तुष्ट साम्प्रदायिकतावादियों और लुटेरे जिमींदारं इनके मन्त्रि-मण्डल को बदनाम करने के लिए बड़ा शोर मचाया था न्तु पन्तजी की दृढता, सत्य-परता तथा न्याय-निष्ठा के सामने उनके थ्या प्रचार की एक न चली; और विवश होकर स्वयं साम्राज्यवादं वर्नर को भी पन्तजी की इस न्याय-प्रियता की प्रशंसा और विरोधियं मिथ्या प्रचार की भर्त्सना करनी पड़ी। ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान-मंत्र ौर सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ डिसरेली ने कहा है कि—"मनुष्यों प ासन करने के लिए दो मार्ग हैं—या तो आप उनका तिरस्का ीजिए, या आप स्वयं उनसे ऊपर उठिये।" पन्त-मन्त्रि-मण्डल दा उच्चतर मार्ग का ही अनुगमन किया। उस समय मुस्लिम ली

...न ही नहीं दिया, उसके मिथ्या-प्रचार से वे जरा भी विचलि... हुए और आदर्श उदारता का ही व्यवहार आप सदा अपने प्रा... कट्टर विरोधियों के साथ करते रहे। इतना सब-कुछ होते हु... उन्होंने मुस्लिम जनता के प्रति पूर्ण सद्भाव रखा। एक न... साम्प्रदायिक उपद्रवों का उपक्रम आपके शासन को बदना... के लिए किया गया; किन्तु आपने बड़े ही चातुर्य से इन विष... ओं का निराकरण कर दिया।

सहसा यूरोपीय महायुद्ध छिड़ जाने के कारण पन्त जी का ... ...र-कार्य रुक गया। जनता से इस लड़ाई में पूर्णतया सहयोग ... माँग सरकार ने की। कांग्रेस यह नहीं चाहती थी। सरकार ... से युद्धोद्देश्यों के स्पष्टीकरण की माँग कांग्रेस ने की। इसका सन्... उत्तर न मिलने के कारण सब प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल... ...याग-पत्र दे दिये।

त्रिपुरी-कांग्रेस में पन्त जी ने देश-गौरव श्री नेताजी सुभाषच... तथा अन्य राष्ट्रीय कर्णधारों के दुर्भाग्यपूर्ण मन-मुटाव और मतभे... दूर करने में तथाकथित दक्षिण-पक्षियों का नेतृत्व किया था औ... ...विख्यात 'पन्त-प्रस्ताव' के आप ही प्रस्तावक थे। उन दिनों पन्त ... स्थान देश के कर्णधारों में अन्यतम था और वे तब कांग्रेस-कार्य... ...ति के सदस्य भी चुन लिये गए थे। ६ अगस्त १९४२ को कांग्रे... ...र्य-समिति के अन्य सभी सदस्यों के साथ आप भी नज़रबन्द कर... ...गाखाँ-महल में रखे गए थे और अप्रैल १९४५ में वहाँ से रिहा कि... थे। शिमला-सम्मेलन में मुस्लिम-लीग के प्रेसीडेंट श्री जिन्ना ...

के आप पुनः कांग्रेस-नेता चुने गए और अब आपने अपना एक सुदृ मंत्रि-मण्डल बना लिया है; जो पिछले ३-४ वर्ष से बड़ी सफलता पूर्वक कार्य कर रहा है। पन्त-मन्त्रि-मण्डल ने अपनी कार्य-क्षमता से समस्त प्रान्तों की सरकारों के सामने एक अपूर्व आदर्श रखा है। इसका एक मात्र श्रेय श्री पन्त जी को ही है। उनकी बौद्धिक क्षमताएं एवं कुशाग्र बुद्धि सुविख्यात हैं। उनकी उच्चता केवल शारीरिक ही नहीं; प्रत्युत बौद्धिक और चारित्रिक भी है।





: २६ :

मौलाना अबुलकलाम आजाद

[जन्म सन् १८८८]

"मेरा विश्वास है कि स्वतन्त्रता मनुष्य का प्रथम, स्वाभाविक और ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है। न किसी मनुष्य को, न मनुष्यों से बनी किसी नौकरशाही को, ईश्वर के सेवकों को, दास बनाने का अधिकार है। पराधीन और गुलाम बनाने के लिए कैसी ही लुभावनी और लच्छेदार दलीलें क्यों न ढूँढ निकाली जाय, फिर भी गुलामी गुलामी ही है, और वह ईश्वरी इच्छा और नियमों के विरुद्ध है। इसलिए अपने राष्ट्र को पराधीनता से मुक्त करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ। स्वतन्त्रता के वितरण में बन्दर-बाँट करने के लिए अथवा उसकी सीमाएं निर्धारित करने के लिए किसी को वैयक्तिक अधिकार नहीं है। यह कहना कि कोई राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता क्रमागत रूप में ले सकता है, इसी तरह कहने के अनुसार है कि कोई मालिक अपनी सम्पत्ति को सिर्फ धीरे-धीरे वापिस ले सकता है और महाजन अपना कर्जा किश्तों में।"

ा ढक लेने वाली तुर्की टोपी, घनी एवं विशाल श्वेत मूँछें, छोटी-सं
ा, गोरा मुख—इन रेखाओं द्वारा जो चित्र बनता है, वे प्रतिभ
, गाम्भीर्य और प्रसाद की मूर्ति अबुलकलाम आजाद ही हैं।

मौलाना आजाद अपने को अकबर के समकालीन प्रसिद्ध मुल्ल
ा सन्त हजरत शेख जमालुद्दीन का वंशधर मानते हैं। शेख जमालुद्दी
अनेकों शिष्य थे। आपने हदीस का भाष्य एवं अनेकों पुस्तकें लिख
। विद्या-प्रेमी अकबर ने उनको कुछ पद देना चाहा था, व
होंने ठुकरा दिया और राजप्रतिग्रह-पराङ्मुखत्व में ही अपनी आत्
तृप्ति समझी। कहा जाता है कि अकबर को मुज़ाहिद बनने व
री को, जिसका अभिप्राय था कि अकबर न्यायी शासक है एवं उसक
र्मिक विषयों में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार है; सभी धर्म-गुरुओं
कार कर लिया; परन्तु शेख जमालुद्दीन उससे सहमत न हुए
कारण वे अकबर के कोप-भाजन हुए अथवा नहीं इसका
क-ठीक विवरण नहीं, परन्तु वे भारत छोड़कर मक्का अवश्य च
। मौलाना आजाद के एक अन्य पूर्वज शेख मुहम्मद ने जहाँगीर
मुख कोर्निश करने से इन्कार कर दिया था। जिसके लिए उन
र वर्ष जेल में भी रहना पड़ा। इस प्रकार सत्याग्रह मौलाना आज
वंश की परम्परागत प्रेरणा रहा है।

मौलाना आजाद के पिता शेख मुहम्मद खैरुद्दीन, जो प्रसि
ी-विद्वान् थे, गदर के समय अंग्रेजों के अन्याय के कारण देश छो
भाग खड़े हुए। 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' के अनुसार कुस्तुनतुनि
हिरा और मक्का में आपने खूब यश और आदर प्राप्त किया

उनकी मातृभाषा अरबी थी। कलकत्ता आकर उनका शिक्षा-क्र रम्भ हुआ। चौदह वर्ष का 'दर्स निज़ामी' का पाठ्यक्रम इस प्रतिभ ली बालक ने चार वर्ष में ही समाप्त कर लिया। पिता के चरि पुत्र पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। वे किसी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ लिए नहीं भेजे गए, प्राचीन शैली में घर पर ही अध्ययन चला न्तु आजाद् को इसके लिए पश्चात्ताप नहीं करना पड़ा। स्पष्टत नके पिता प्राचीन प्रणाली के बहुत प्रेमी थे। १९०५ में अरबी के च्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आपको काहिरा के 'अल अजहर विश्व द्यालय' में भेजा गया, जहाँ दो वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चा प वापिस लौट आए।

मौलाना आजाद् को एक कलाकार एवं पत्रकार की प्रतिभा जन्म ही प्राप्त है। यौवन के आरम्भ से पूर्व ही उन्होंने अपनी विद्वत्त परिचय देकर हाली और मोहिसिनुल-मुल्क-जैसे विद्वानों को चमत्कृत र दिया था। चौदह वर्ष की अल्प आयु में ही जब बच्चों को दो शुद्ध क्य लिखना भी अच्छी तरह से नहीं आता तब आप 'नौरंगे आलम से गंभीर और प्रौढ़ पत्र के सम्पादक बन गए। कविता के इस प अबुलकलाम के 'कवि' का विकास किया और 'आजाद्' का उप म भी साकार करवाया। तब से ही वह उनके नाम के साथ जु या है।

१८-२० वर्ष की आयु के विदेश-भ्रमण ने इस होनहार युवक दय में कितने तूफान भर दिए थे? राष्ट्रीय भावनाएं उचित स्था प्त कर चुकी थीं। स्वदेश लौटकर उन्होंने अंग्रेजों की नीति क ध्ययन किया। सर सैयद अहमदखाँ की नीति एवं अलीगढ़-कालिज

डुबाने के लिए एवं भेद और शासन की नीति द्वारा अपने क
री रखने के लिए विदेशी सरकार मुसलमानों को उकसा रही है ए
लमान झूठी धर्मान्धता की आग में पथभ्रष्ट हो रहे हैं। इ
लमानों को मार्ग-निर्देश करने की भावना से वे अधीर हो उठे।

'अल हिलाल' का जन्म इन्हीं विचारों का परिणाम था। जू
१२ में इस पत्र का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। छः मास में इ
की ग्राहक-संख्या ग्यारह हजार हो गई, यह उसकी लोकप्रियत
उदाहरण था। पत्रकार आजाद की धारा-प्रवाह टिप्पणियाँ, नुकीले
लेख और चुभती हुई आलोचनाएं जहाँ जन-साधारण के आकर्षण
कारण बनने लगीं, वहाँ अधिकारियों की आँख की किरकिरी भी बन
ीं। पत्रकार आजाद के वाग्बाण पत्रकार तिलक के समकक्ष ही थे
ीय जगत् में एक नव चेतना, एक स्पन्दन, एक स्फुरण व्याप्त ह
ा। पत्र पर अधिकारियों के प्रहार हुए। जमानत ली गई। प्रथ
ायुद्ध में ब्रिटिश नीति के विरोध के कारण जमानत जब्त भी ह
। पर विघ्नों को चीरता हुआ 'अल हिलाल' अडिग रहा, आ
ता रहा। पत्र में राजनीतिक जागृति का सन्देश तो था ही, साहित्य
ीक्षा एवं धार्मिक विवादों का भी वह अत्यन्त प्रौढ़ पत्र था।

पर सरकार उस पत्र एवं इस पत्रकार के इस प्रकार अनुदिन ब
मान यश को सहन न कर सकी। 'अलहिलाल' बन्द कर दिया गया
आजाद ने तुरन्त 'अल-बलाग' नामक पत्र प्रारम्भ कर दिया। अ
सरकार द्वारा आजाद ७ अप्रैल, १६१५ को बंगाल से निर्वासित क
दे गए। कहा जाता है कि इस सरकारी निर्वासन के पीछे मौलान
जाद के विरोध में किया गया भीषण प्रचार था, जो अलीगढ़-विश्व
ा का नेतृत्व करने वाले पुरुष-पुंगवों ने किया था। मौलाना रौ

सन् २०के तूफानी दिनों के प्रारम्भ में एक अत्यन्त उचित अवसर [पर] मौलाना को जेल से छोड़ दिया गया। पंजाब के काले कानून ने [देश]-भर में उथल-पुथल पैदा कर रखी थी। ब्रिटिश सरकार की खिला[फ]त-नीति ने तो सारे संसार के मुसलमानों पर ही प्रहार करना चाहा [था]। इन परिस्थितियों में एक सच्चे राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि [तै]यार हो रही थी। मौलाना आजाद जेल से निकलने के बाद तुरन्त ही [. ज]नवरी २० को) महात्मा गान्धी से दिल्ली में मिले। हकीम अज[म]ल खाँ, अलीबन्धु और देशबन्धु दास के साथ कई दिन तक निर्णय [कर]ते रहे। अन्त मे अहिंसात्मक रूप से खिलाफत-आन्दोलन को [प्रा]रंभ करने का निर्णय किया गया।

सारे देश मे भावनाओं की हिलोरे दौड़ गईं। कोने-कोने में यह [आ]न्दोलन पूर्ण शक्ति के साथ प्रारम्भ हो गया। पंडित मोतीलाल [ने]हरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, देशबन्धु दास, राजगोपालाचार्य, डा० [रा]जेन्द्रप्रसाद, सरदार पटेल-जैसे दिग्गज वकील वकालत छोड़कर [आ]न्दोलन में कूद पड़े। सरकार का दमन-चक्र चला। गिरफ्तारियाँ [हु]ईं। मौलाना आजाद भी गिरफ्तार किये गए। अदालत में पैरवी [क]रने के विरोध में जोरदार वक्तव्य देकर ब्रिटिश न्याय की खूब खिल्ली [उ]ड़ाई गई। मौलाना का मुकदमा जान-बूझकर तीन महीने तक टाला [ग]या।

अदालत के सम्मुख मौलाना आजाद ने एक विस्तृत वक्तव्य दिया [थ]ा। महात्मा गान्धी ने उक्त वक्तव्य की प्रशंसा में लिखा है कि "यह [व]क्तव्य खिलाफत और राष्ट्रवाद पर मौलाना के विचारों का उत्कृ[ष्ट] [नि]बन्ध है।" वस्तुतः मौलाना का यह वक्तव्य, जो आज भी ताजा ब[ना] ...

प्राधिपत्य की बुराइयों का विश्लेषण किया है। खिलाफत के अर्थ पर विस्तृत प्रकाश डाला है। मुसलमानों के कर्तव्य की विशद विवेचना की है। एवं अन्त में महात्मा गान्धीजी के अहिंसात्मक-असहयोग में अपनी पूर्ण श्रद्धा व्यक्त की है। मौलाना आज़ाद का वह वक्तव्य स्थायी साहित्य की वस्तु है। मौलाना के सिद्धान्तों के आदर्शों का सच्चा लेखा हमें इसी वक्तव्य में मिल जाता है। इस्लाम के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं:—

"पाक पैगम्बर ने मुसलमानों के लिए निम्न सिद्धान्त की शिक्षा दी : वह पुरुष धन्य है जो अत्याचारी शासन के विरोध में सचाई का डंका बजाकर मृत्यु का आलिंगन करता है और ऐसे पुनीत कार्य के फल-स्वरूप सजा पाकर कत्ल कर दिया जाता है, उसी की आत्मा हुतात्मा कहलाती है। ·········मुसलमानों के अपने राष्ट्रीय इतिहास में सच बोलने का एक महत्त्वपूर्ण पाठ है। ·········इस्लाम के सिद्धान्त उसके अपने पवित्र ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। ये मुसलमानों को किसी भी अवस्था में स्वतन्त्रता को तिलाञ्जलि देकर जीवन का आनन्दमय उपभोग करने की अनुमति नहीं देते। एक सच्चे मुसलमान को या तो सर्वस्व की बलि चढ़ानी होती है अथवा स्वतन्त्रता को कायम रखना होता है। अपने धर्म की छत्रच्छाया में रहते हुए उसे दूसरा मार्ग श्रेयस्कर नहीं है।"

भारतीय राष्ट्रीय संग्राम में खिलाफत के दिन सुनहले दिवस कहे जायेंगे। एकता के वैसे भाव फिर न पनप सके। उस समय मुसलमानों ने गो-वध बन्द कर दिया था। हिन्दू खिलाफत में खूब खुलकर उनकी सहायता कर रहे थे। [illegible]

करना पड़ा। एकता-सम्मेलन बुलाया गया। प्रस्ताव पास हुए। समझौते हुए। परन्तु दंगे न रुके। हाँ मौलाना आजाद ने हकीम अजमल-खाँ के साथ दोनों सम्प्रदायों में एकता करने के निश्चय को गान्धीजी के सामने दृढ़ता पूर्वक पकड़ लिया था और वह आज तक न छोड़ा।

पीछे के वर्ष आत्म-परीक्षा के वर्ष थे। कांग्रेस-संगठन में बढ़ती हुई शिथिलता को कम करना, साम्प्रदायिक दंगों की आग से देश को बचाना और ब्रिटिश सरकार के बढ़ते हुए दमन-चक्रों का सामना करना कोई सरल काम न थे। इतनी समस्याओं को सुलझाने के बाद नये मोर्चे-पर-मोर्चे प्रारम्भ किये गए, आन्दोलन-पर-आन्दोलन चले। साइमन-कमीशन का बहिष्कार, प्रिंस ऑफ वेल्स का बहिष्कार, विदेशी का बहिष्कार और भी न जाने कितने बहिष्कार चल रहे थे। मौलाना इन सारे आन्दोलनों में अग्रिम पंक्ति पर रहे। कांग्रेस की बागडोर को सँभालने वालों में रहे। मौलाना की दृष्टि में यह बहुत पहले ही स्पष्ट हो चुका था कि साम्प्रदायिक समस्या का समाधान तभी होगा जब ब्रिटिश सरकार यहाँ से विदा ले लेगी।

मौलाना आजाद चिन्तनशील प्राणी हैं। किसी वस्तु को गहराई में बैठना, उसके दोष-गुणों का विवेचन करना, तात्विक एवं गवेषणात्मक विश्लेषण करना और तब किसी अन्तिम परिणाम पर पहुँचना तथा फिर उस परिणाम पर दृढ़ रहना—यह उनके कार्य-क्रम की कुञ्जी है। उनकी पुस्तक-प्रियता विश्व-विख्यात है। प्रतिभा और सत्यता उनके जीवन में ओत-प्रोत हैं। एकाकीपन उनको प्रिय है। सिगरेट के वे प्रेमी हैं। वे एकता के एक जाग्रत प्रतीक हैं। वे मुसलमानों को सदैव यही बतलाते रहे हैं कि वे भविष्य के स्वाधीन भारत को शंका और सन्देह से न देखकर साहस एवं विश्वास से देखें।

विरोधी मुसलमान जमैयत के प्रभाव का सिक्का मानते थे और जमैयत भारतीय मुसलमानों की एक-मात्र सच्ची राष्ट्रीय संस्था थी। समय के प्रभाव ने उन प्रगति-विरोधियों को सिर उठाने का अवसर दिया, और वे भारतीय मुसलमानों को राष्ट्रीयता के पथ से भ्रष्ट करने में सफल हो सके। परन्तु मौलाना आज़ाद ध्रुव की भाँति राष्ट्रीय ध्वज को ऊँचा उठाये हुए अपने पथ पर बढ़ते रहे।

हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास के पिछले वर्षों में मौलाना आज़ाद का महत्त्व अत्यन्त विशिष्ट है। कई बार वे राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बन चुके हैं। युद्ध-काल में कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिया। पुनः आन्दोलनों की शृंखला प्रारम्भ हुई। कांग्रेस की अध्यक्षता पुनः मौलाना आज़ाद के हाथों में आई। १६४२ के महान् आन्दोलन के समय वे कांग्रेस-राष्ट्रपति के पद पर आसीन रहे और कुशलता पूर्वक कार्य-संचालन करते रहे। उन तूफ़ानी दिनों में इस गुरुतर पद को सँभालना सहज न था। कई वर्षों तक यह पद उनके ही हाथ में रहा।

मौलाना आज़ाद का महत्त्व उनकी रचनात्मक क्रियाशीलता में है। गांधीजी की समग्र विचार-धाराओं को उन्होंने पूर्णतः आत्मसात् कर लिया है। वे महात्मा गान्धी के धुरन्धर अनुयायी हैं। कर्म-परता के सच्चे प्रतीक हैं। उनकी वाणी में शक्ति है। लेखनी में ओज है। आँखों में नेतृत्व की आभा है। पैरों में दृढ़ता है। हाथों में प्रेरणा है। आशा है वे आगामी परीक्षा के वर्षों में सफलता पूर्वक देश का नेतृत्व करते रहेंगे।





पण्डित जवाहरलाल नेहरू

: ३० :

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

[जन्म सन् १८८९]

“भविष्य हमारी ओर झाँक रहा है। हम किस ओर जाय
: हमारा प्रयत्न क्या होगा ? हमें सर्व-साधारण के लिए, या भार
किसानों और मजदूरों के लिए स्वतन्त्रता एवं अवसर लाना है
बी, अज्ञान और रोगों से लड़ना और इनका अन्त करना है। ए
द्धिशाली, प्रजातन्त्रात्मक एवं प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करना
ऐसी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाएं बनानी हैं ज
क नर-नारी के लिए न्याय और जीवन की पूर्णता को निश्चि
यंगी।”

चौड़ा ललाट, ममता उत्पन्न करने वाली सतेज आँखें, पतले औ
अभिव्यक्ति से पूर्ण ओठ, स्फूर्ति एवं क्षिप्रकारिता का संदेश देती हु
ईं, सुडौल नासिका, मनमोहक चिबुक, निर्लेप मुखाकृति—
वे रेखाएं जो भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता के दे
जवाहरलाल के मुख-चित्र का निर्माण करती हैं। कर्मठता, साह

महात्मा गान्धी के शब्दों में "बहादुरी में उनसे (जवाहरलाल से) कोई बढ़ नहीं सकता और देश-प्रेम में उनके आगे कौन जा सकता है। वह स्फटिक मणि की भाँति पवित्र हैं। उनकी सत्यशीलता सन्देह से परे है। राष्ट्र उनके हाथ में सुरक्षित है।"

जवाहरलाल यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से बुद्धिवादी हैं, परन्तु व्यवहार में वे भावुक एवं चंचल अधिक हैं। ऐश्वर्य एवं विलासिता के वातावरण में पलने के कारण अहंभाव के अंकुर भी पण्डित नेहरू में विद्यमान हैं। उनको प्रजातन्त्र-विरोधी पाकर वे उनके विरोध का प्रयत्न भी करते हैं, परन्तु प्रायः असफल रह जाते हैं। वे भावना-शील क्रान्तिकारी हैं। वस्तुओं एवं क्रियाओं के बौद्धिक मुल्य की अपेक्षा आप उनके भावनागत मूल्य को ही अधिक महत्त्व देते हैं। इतना सब होते हुए भी अपने साथियों का आदर प्राप्त कर लेने में आपका कौशल विख्यात रहा है। अपने अनुगामियों को प्रेमपूर्ण झिड़कियाँ देकर उनको पथ-निर्देश करते रहने में पण्डित नेहरू ने काफी यश प्राप्त किया है। इतिहास के गंभीर अध्ययन ने तो उनके जीवन पर प्रभाव डाला ही है, महात्मा गान्धी से उनको दार्शनिक प्रेरणा भी प्राप्त हुई है। मानसिक द्वन्द्वों के फलस्वरूप उन निर्णयों में कभी-कभी अस्पष्टता रहती है और कूटनीति-विज्ञान की दृष्टि से वे भारी भूलें भी कर जाते हैं। फिर भी उन-जैसा बाँकपन, उन-जैसी आशावादिता, उन-जैसी चेतना का मन्त्र फूँक देने वाली शक्ति, उन-जैसी ओजस्विता और उन-जैसी पराक्रमशीलता अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसी कारण वे आज भारतीय युवकों के हृदय का तो हार बन ही गए हैं, वृद्ध भी उनको 'जवान बूढ़ा' कहकर सदैव से सम्मानित करते रहे हैं।

क्रान्ति के बाद की अव्यवस्था में यह परिवार प्रयाग चला आया। यहीं उक्त वंश में पण्डित मोतीलाल नेहरू की प्रतिभा चमकी। अपनी बैरिस्टरी की प्रतिष्ठा के वातावरण में पं० मोतीलाल ने अपने को कुलीन यूरोपियनों के समान बना लिया। यहीं प्रयाग के मीरगंज मुहल्ले में १४ नवम्बर १८८९ को श्रीमती स्वरूपरानी के गर्भ से जवाहरलाल का जन्म हुआ। पहली पत्नी एवं पहली सन्तान की मृत्यु हो जाने के कारण पण्डित मोतीलाल का स्नेह जवाहर पर विशेष रूप से उमड़ पड़ा।

वे पिता के दिन-पर-दिन बढ़ते हुए वैभव के बीच पलने लगे। उनके चचेरे भाई आदि अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों के ऊपर किये जाने वाले दुर्व्यवहारों की चर्चा किया करते थे, परन्तु बालक जवाहर के हृदय में अंग्रेजों के प्रति कोई बुरा भाव न था। पं० मोतीलाल पूर्णतः यूरोपियन सभ्यता की ओर खिंच रहे थे। बालक जवाहर ने एक दिन उनको लाल शराब पीते हुए देखा तो वह दौड़कर माँ से जाकर बोला कि कि 'पिताजी खून पी रहे हैं।' अपनी ५-६ वर्ष की आयु में ही जवाहरलाल पिता का एक फाउण्टेन पेन उठाकर उनके भीषण कोप के भाजन हुए थे। हिन्दू-परिवारों में पुरुष के सिद्धान्तों का ही राज्य रहता है एवं बच्चे भी प्रायः उसी ओर आकर्षित होते हैं। इसी कारण माँ और चाची के पूजा-पाठ अथवा आचार-व्यवहार जवाहर के मन को आकर्षित न कर सके।

६ वर्ष से १२ वर्ष तक शिक्षा घर पर ही हुई। साथियों एवं समवयस्क बहनों-भाइयों के अभाव ने जवाहरलाल को गम्भीर एवं शान्त बना दिया था। जब वे दस साल के थे, तो उनका परिवार एक ई मकान 'आनन्द-भवन' में आ गया। यहाँ ...

भाई न होने के कारण हिस्सा बंटाने वाला न हुआ; अतः उनको खु होना चाहिए तो उनको यह बात बहुत चुभी।

ग्यारह वर्ष की आयु में ही जवाहरलाल को एक नये थियोसाफिस्ट शिक्षक श्री० एफ० टी० ब्रुक्स पढ़ाने आए। उन्होंने जवाहरलाल में पुस्तक पढ़ने का चाव तो उत्पन्न किया ही, अपने आध्यात्मिक चिन्तन का भी प्रभाव उन पर डाला। यहाँ तक कि स्वयं एनी बेसेण्ट द्वारा दीक्षा पाकर जवाहरलाल थियोसाफिकल सोसायटी के सदस्य भी बन गए। उन्होंने मांसाहार एवं थियेटर-सिनेमा भी छोड़ दिया। जीवन की पवित्रता और सदाचरण की यह छाप आगे पं० नेहरू के व्यक्तित्व का अंग बनी, यद्यपि उस समय उनके पिता, जो उनको यूरोपीय साँचे में ढालना चाहते थे, यह सहन न कर सके। ब्रुक्स साहब को अलग कर दिया गया।

मई १९०५ में नेहरू-परिवार इङ्गलैंड गया। जवाहर हैरो विद्यालय में भर्ती हो गए। इङ्गलैंड की राजनीति एवं हवाई जहाजों के आरम्भ की चर्चा में उनको विशेष आनन्द आता था। इङ्गलैंड के सार्वजनिक जीवन पर इस विशिष्ट परन्तु व्यय-साध्य विद्यालय का बड़ा प्रभाव रहा है। अक्तूबर १९०७ में जवाहरलाल ट्रिनिटी कालिज (केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय) में प्रविष्ट हुए। यहाँ से जन्तु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान एवं रसायन-शास्त्र में ससम्मान बी० ए० पास किया। सञ्चालकों ने उनकी असाधारण प्रतिभा से सन्तुष्ट होकर बिना परीक्षा लिये ही एम०ए० (आनर्स) की उपाधि दे दी। कालेज की शिक्षा समाप्त कर आप 'इनर टेम्पुल' में भरती हुए और १९१२ में बैरिस्टरी की उपाधि प्राप्त कर ली। उसी वर्ष सात साल तक इंगलैंड रहने ...

का प्रयत्न किया। सन् १९१६ में दिल्ली के एक पं० जवाहरलाल कौल की सुपुत्री कुमारी कमला से आपका विवाह अत्यन्त धूम-धाम के साथ सम्पन्न हुआ। १९१७ में पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। १९२४ में एक पुत्र भी हुआ, पर जीवित न रह सका। सन् १९२० तक जवाहरलाल जैसे-तैसे पिता के साथ बैरिस्टरी करते रहे, यद्यपि सार्वजनिक सेवा उनके आकर्षण का लक्ष्य बन रही थी। गोखले की अपील पर पचास हजार चन्दा एकत्र करके प्रवासियों की सहायता के लिए अफ्रीका भिजवाया। डा० बेसेण्ट के होमरूल-आन्दोलन में भी काफी भाग लेते रहे। इसके बाद अवध के किसानों में भ्रमण करके वहाँ भी खूब काम किया।

उधर पंजाब जल रहा था। सरकार पागल हो रही थी। पंजाब-जाँच के सम्बन्ध में पं० मोतीलाल भी अंग्रेजों की पशुता का निकट से अवलोकन कर रहे थे और उनकी राज-भक्ति कम होती चली जा रही थी। युवक जवाहरलाल को तो इसी क्रम में महात्मा गान्धी का प्रकाश प्राप्त हो गया। तभी खिलाफत और विदेशी बहिष्कार के दिन आए। जवाहरलाल ने अब बैरिस्टरी का बाना फेंक दिया था और खुल-कर मैदान में कूद पड़े थे। सन् २१ में छः महीने की और सन् २२ में अठारह मास की कैद हुई। सन् २२ में ही प्रयाग-म्युनिसपैलिटी के अध्यक्ष बने। नाभा राज्य में सिख-जत्थों पर किये जाने वाले अत्याचारों ने भी जवाहरलाल का ध्यान आकर्षित किया और कुछ समय तक वहाँ की हवालात में रहकर देशी रियासतों की शासन एवं न्याय-व्यवस्था का निकट से अध्ययन करने का अवसर उनको प्राप्त हुआ।

पत्नी कमला के बीमार होने ...

नेहरू जी भी भारतीय राष्ट्र-सभा के प्रतिनिधि के रूप में उक्त अधिवेशन में सम्मिलित हुए। वे उसके पाँच अध्यक्षों में से एक अध्यक्ष भी चुने गए। उसी वर्ष सोवियत् सरकार द्वारा आमन्त्रित होकर रूस गए और सोवियत् संघ के दसवें वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित हुए। मास्को के इस क्षणिक निवास ने पण्डित नेहरू को साम्यवादी विचार-धाराओं का निकट से अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया। उनकी प्रवृत्ति में कुछ परिवर्तन भी आया, ऐसा भी लोगों का मत है। भारत आकर उनका ट्रेड-यूनियन-कांग्रेसों में सक्रिय भाग लेना इसी प्रभाव का परिचायक बतलाया जाता है। इसी यूरोप-प्रवास में अन्य देशों की राजनीतिक विचार-धाराओं के अध्ययन का भी प्रयत्न किया एवं इंग्लैंड के मजदूर-आन्दोलन का भी सूक्ष्म दर्शन किया।

स्वदेश लौटकर वे पुनः उग्र राजनीति में कूद पड़े। देश पुनः एक विशिष्ट संघर्ष के लिए तैयार हो रहा था। कलकत्ता-कांग्रेस में तो महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण पूर्ण स्वराज्य के ध्येय वाला प्रस्ताव पास न हो सका था, परन्तु यह कार्य लाहौर-कांग्रेस के लिए छोड़ दिया गया था। कलकत्ता-कांग्रेस से असंतुष्ट होकर ही पं० नेहरू ने भारतीय-स्वाधीनता-संघ की स्थापना की थी, जिसका लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना था। सुभाष-बाबू ने भी इस संघ के कार्य में पंडित नेहरू को खूब योग-दान किया।

लाहौर-कांग्रेस का महत्त्व पं० नेहरू के जीवन में कम नहीं है। पहली बार देश ने उनको यह सम्मान प्रदान किया था। पं० मोती-लाल को उनके मनोनीत होने के कारण अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी। पिता के बाद ही पुत्र को राष्ट्रपति का पद प्राप्त हो रहा था। पंजाबी

। अभी इस सन्देह में ही थे कि क्या देश संघर्ष के लिए तैयार
वा संघर्ष की योजना क्या हो ?

वस्तुतः संघर्ष की रूपरेखा तैयार करने का कार्य महात्मा गान्
था और उन्होंने ही उसको किया भी। सन् १९३० के वे तूफा
! जन-साधारण में एक जोश छाया हुआ था। कानून तोड़ना, जे
ा साधारण-सा कार्य हो गया था। पं० नेहरू भी एक साल त
में रहे। समझौते की बात चलने पर सरकार ने उन्हें छोड़ दिया
तु गोल मेज परिषदें किसी समझौते की ओर न ले जा सकीं
र्ष फिर चल पड़ा।

उधर साइमन-कमीशन ने देश में एक तूफान खड़ा कर दिया था
ाब में लाला लाजपतराय पर लाठी-चार्ज हुआ। लखनऊ में जवाह
ा नेहरू पर। दोष दोनों का एक ही था-विरोध-प्रदर्शन। नेहरू क
ली बार मार का अनुभव हुआ था। इस घटना ने उनकी शारीरि
ता को स्पष्ट कर दिया। कदाचित् इस कष्ट-क्षमता का ही पुरस्क
ता ने उनको आगे चलकर राष्ट्रपति बनाकर दिया था।

इन संघर्षों में समझौते के प्रयत्न सदैव चलते रहते थे। पर
निष्कर्ष न निकलता था। जयकर और सप्रू द्वारा इस बार भी वि
समझौते के प्रयत्न असफल रहे। जवाहरलाल का तो कार्यक्रम
बन गया था कि आन्दोलन करना और जेल जाना और छूटते
आंदोलन करना। वे जेल से बाहर निकलते ही किसानों में कर-बन्
आंदोलन की ज्योति फूँक जाते और पुनः जेल जा पहुँचते। सरक
भीषण दमन पर उतर आई थी। कैदियों पर बेंत-प्रहार भी कि

गान्धी को भी छोड़ दिया गया। परन्तु पं० मोतीलाल की दशा दिन-दिन गिरती गई; और वे एक दिन चल ही बसे। सारे देश ने ही नेहरू-परिवार के इस शोक में भाग लिया। विदेश से भी सहानुभूति के तार आए। परन्तु जवाहरलाल को सबसे अधिक सहानुभूति और प्रेरणा यदि किसी से मिली तो महात्मा गान्धी से। तीन मास बाद वे क्षणिक आराम के लिए अपनी पत्नी और पुत्री सहित लंका चले गए।

गोल मेज-परिषदों का कोई परिणाम न निकला और पुनः धर-पकड़ प्रारंभ हो गई। गान्धी जी के बम्बई उतरने के पूर्व ही जवाहरलाल को उसी रेल में गिरफ्तार कर लिया गया जिससे वे गान्धी जी से मिलने आ रहे थे। अन्य प्रसिद्ध नेता भी कैद कर लिये गए। और स्वयं गान्धी जी एवं कांग्रेस-अध्यक्ष पटेल तक को न छोड़ा गया। पं० नेहरू प्रायः नैनी जेल में ही रखे जाते थे। अब की बार आपका तबादला बरेली और वहाँ से देहरादून को कर दिया गया था, परन्तु रिहा होने के समय तक वे पुनः नैनी आ गए थे।

जेल से छूटने के बाद अब की बार पं० नेहरू कुछ लिखने एवं साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं में भाग लेने में लग गए। परन्तु यह क्रम अधिक न चल सका। बिहार के भूकम्प ने उनका ध्यान आकर्षित किया। कुछ ही समय बाद कलकत्ते से गिरफ्तारी का वारंट आ गया। कुछ दिन अलीपुर जेल रहकर देहरादून जेल के लिए तबादला हो गया। यहीं देहरा में उन्होंने अपनी आत्म-कथा 'मेरी कहानी' लिखी। पत्नी कमला की भीषण बीमारी के कारण इनको केवल ग्यारह दिन के लिए छोड़ दिया गया और पुनः बन्द कर दिया गया। प्रायः एक मास बाद इनको पत्नी से मिला दिया जाता था। कमला की दशा गिरती

गया। ४ सितम्बर, ३५ को पं० नेहरू को भी अवधि के पाँच मास पूर्व ही मुक्त कर दिया गया। ये भी हवाई जहाज से पत्नी के पास यूरोप चले गए। वहीं लौज़ेन में २८ फरवरी, ३६ को कमला का देहान्त हो गया।

तभी वे लखनऊ-कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिये गए और इसीलिए यूरोप से इनको तुरन्त चलना पड़ा। अगले साल फैजपुर-कांग्रेस में भी आप ही अध्यक्ष रहे। उन्हीं दिनों आपने सारे देश का तूफानी दौरा किया। कहा जाता है कि चार मास के भीतर आपने प्रायः पचास हजार मील की यात्रा की। साथ ही एक दिन में दर्जनों सभाओं में भी बोलना पड़ता था।

सन् १९३७ में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों की स्थापना के बाद आप कुछ दिनों के लिए बर्मा-पर्यटन को निकल गए। परन्तु तभी कांग्रेस के दोनों दलों में उग्र मतभेद हो गया था और स्वयं गान्धी जी के आशीर्वाद-प्राप्त दल को पराजित कर सुभाषबोस राष्ट्रपति बने थे। इसी बीच इस व्यर्थ की राजनीति से अपने को अलग रखने की कामना से पं० नेहरू यूरोप खिसक गए। इसी बीच उनकी माता स्वरूपरानी का भी स्वर्ग-वास हो चुका था।

इस समय यूरोप में महायुद्ध का बीजारोपण हो चुका था। बार्सिलेना में होने वाली बम-वर्षा को इन्होंने अपनी आँखों देखा। वहाँ के प्रजातंत्र-अधिकारियों तक भारत की सहानुभूति का संदेश पहुँचाया। २० जून को आपने पेरिस-रेडियो से एक भाषण ब्राडकास्ट किया, जिससे बड़ा शोर मचा। इसके बाद आप इंग्लैंड गए और वहाँ भी अनेकों प्रति-

उधर त्रिपुरी-कांग्रेस ने कांग्रेस में काफी फूट डालने का कारण उपस्थित कर दिया था। जवाहरलाल ने कांग्रेस-महासमिति के कलकत्ता-अधिवेशन में तथा उसके बाद भी इन झगड़ों के सुलझाने का यत्न किया। उनके प्रभाव से कांग्रेस का संगठन अक्षुण्ण रहने में बड़ी सहायता मिली।

प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल अपना कार्य कर रहे थे। परन्तु समस्त भारत राष्ट्र के संगठन की कोई वैज्ञानिक एवं वैधानिक योजना कांग्रेस के सामने न थी। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। पं० नेहरू ने इस आवश्यकता का अनुभव किया। तुरन्त ही कांग्रेस के तत्वावधान में प्रान्तीय सरकारों के सहयोग से राष्ट्र-निर्माण-समिति का जन्म हुआ। पं० नेहरू को ही इस समिति का सभापति चुना गया। इस समिति की २९ उपसमितियाँ स्थापित की गईं। समिति का कार्य बढ़ता गया और धीरे-धीरे उसमें राष्ट्र-निर्माण के प्रत्येक पहलू का समावेश हो गया। राजनीतिक मतभेद का कोई विचार न करके प्रत्येक विषय के विशारदों को उस विषय का कार्य सौंपा गया। राष्ट्र-निर्माण की बहुमुखी रूपरेखा निर्धारित करने में इस समिति ने एक बहुत बड़ा कार्य किया है।

इसी बीच लंका में भारतीयों के प्रश्न को लेकर वातावरण कुछ कटु हो गया था। आधार-रहित गलत-फहमियों के कारण स्थिति और भी विकट हो रही थी। १९३९ की ग्रीष्म ऋतु में जवाहरलाल लंका गए। वहाँ उनका अनोखा स्वागत हुआ। लंका रहकर उन्होंने समस्त समस्याओं का ध्यानपूर्वक विवेचन किया और पारस्परिक मनो-मालिन्य एवं कटुता को दूर करने का प्रयत्न किया। इन प्रयत्नों में उन्हें आंशिक

एवं उनकी पत्नी से उन्होंने निकट मैत्री-संबंध स्थापित किया। वहाँ उनके सम्मानित अतिथि के रूप में रहते हुए उन्होंने अपने देश एवं चीन के वर्तमान एवं भविष्य के विषय में विचार-विनिमय किया। परन्तु वे चीन में केवल दो ही सप्ताह रह पाए थे कि यूरोप में युद्ध आरम्भ हो गया अतएव स्वदेश की तत्कालीन हलचलों का नेतृत्व करने के लिए आप तुरन्त स्वदेश लौट आए। भारत का जनमत साम्राज्यवाद की रक्षा के लिए लड़े जाने वाले इस महायुद्ध में भाग न लेने का था।

कांग्रेस-कार्य-समिति ने एक लंबे वक्तव्य द्वारा अपनी नीति की घोषणा की एवं ब्रिटिश सरकार से यह माँग की कि वह अपने युद्ध संबंधी उद्देश्य को स्पष्ट करे एवं ब्रिटिश साम्राज्य एवं भारत की स्वाधीनता के विषय में अपनी नीति को स्पष्ट करे। सरकार की ओर से गोल-मोल बातें चलीं, कोई स्पष्ट उत्तर न मिला। देश का जनमत यह सहन न कर सका। अन्त में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिये और देश में दमन का दौर-दौरा शुरू हो गया।

कांग्रेस ने गान्धी जी को सत्याग्रह छेड़ने का सर्वाधिकार सौंप दिया। गान्धी जी ने सीमित रूप में एक वर्ष तक व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया। परन्तु युद्ध की दावानल की चिनगारियों को देखते हुए जहाँ हिंसा धू-धू कर रही थी, लोग सहसा महात्मा गान्धी की आदर्शपूर्ण अहिंसा की ओर आकर्षित न हो सके। धीरे-धीरे यह संघर्ष चलता रहा। इसी बीच ब्रिटिश सरकार ने एक नवीन योजना के साथ सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भेजा। रक्षा-विभाग जन-सरकार को नहीं दिया जा

माँग सरकार से की। सरकार द्वारा प्रस्ताव के अस्वीकृत किये जाने की स्थिति में सत्याग्रह का निश्चय किया गया था। सरकार ने कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित करके इस प्रस्ताव का उत्तर दिया। सभी उच्च नेता पकड़ कर कैद कर लिये गए। भीषण दमन-चक्र चला। राष्ट्र ने सरकारी मशीन को झकझोर कर अपने अपमान का बदला लिया। क्रोधित वातावरण में अहिंसा के लिए कोई स्थान न रह गया था। सन् ४२ का दमन-चक्र ब्रिटिश शासन के इतिहास में एक कलंक के रूप में सदैव स्थायी रहेगा। भारत की स्वाधीनता के इस संग्राम के इतिहास में उन अमर शहीदों के नाम स्वर्ण-लिपि में अंकित रहेंगे जिन्होंने राष्ट्र की बलिवेदी पर अपने सर्वस्व की आहुति दे दी।

सरकार ने नेताओं को अत्यन्त गुप्त रूप से बन्द कर रखा था। बहुत दिनों बाद कहीं यह पता चला कि पं० जवाहरलाल अहमदनगर के किले में कैद हैं। प्रायः ३ वर्ष तक सारे नेता कैद में पड़े रहे। अन्त में सन् १९४५ में वेवल-योजना के अनुसार अन्य नेताओं के साथ पं० जवाहरलाल भी छोड़ दिये गए। फिर शिमला-सम्मेलन और कैबिनेट-मिशन की वार्ताएं चलती रहीं। १९४५ में ही जवाहरलाल को पुनः मौलाना आजाद के स्थान पर राष्ट्रपति बनाया गया था।

इस बार जेल से लौटने के बाद पं० नेहरू के व्याख्यान एवं व्यक्तित्व में एक अलौकिक ओज आ गया था। जहाँ कहीं भी वे जाते, जनता सहस्रों की संख्या में उनका व्याख्यान सुनने के लिए टूट पड़ती थी। शिमला-सम्मेलन की असफलता के बाद पं० नेहरू कुछ दिनों के लिए काश्मीर गए। आपने सबसे पहले अगस्त-आन्दोलन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।

वर्ष बाद पुनः वकालत का चोगा पहना और आजाद हिन्द रक्षा-समिति में सक्रिय भाग लेते हुए सैनिक न्यायालय के सम्मुख खड़े हुए। आजाद हिन्द सेना के अभियुक्तों की मुक्ति में इनके प्रयत्न प्रधान रूप से सहायक हुए एवं कांग्रेस पुनः शीघ्र ही जनता की प्रिय संस्था बन गई।

अस्थायी सरकार बनी। पं नेहरू को अध्यक्ष बनाया गया। इसके बाद स्वाधीन भारत-संघ के प्रथम प्रधान-मन्त्री बनने का गौरव भी पं० जवाहरलाल नेहरू को ही प्राप्त हुआ। आपने भारत-सरकार के विदेश विभाग का मन्त्रित्व सँभाला है। भारत की वैदेशिक नीति किसी गुट में सम्मिलित होने की नहीं है; प्रत्युत सब प्रकार की गुटबन्दी से अलग रहकर समग्र मानव जाति के लिए समानता के अधिकार प्राप्त करवाने की है। पहली बार एशियाई राष्ट्रों का विशाल सम्मेलन बुला-कर पं० नेहरू एशिया के नेता बन चुके हैं। इण्डोनेशिया के प्रश्न को सुलझाने के लिए उनकी अध्यक्षता में एक बार पुनः एशियाई राष्ट्र मिलकर प्रस्ताव पास कर चुके हैं। भविष्य में भी समग्र दुर्बल और शोषित राष्ट्रों को भारत से सक्रिय सहानुभूति प्राप्त होती रहेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आज भी 'जवाहर' भारतीय युवकों के नेता बने हुए हैं यद्यपि वृद्ध पीढ़ी के नेता भी अब उनके नेतृत्व को स्वीकार करते हैं। हैदराबाद और काश्मीर की भीषण समस्याओं में देश को सफलता की ओर अग्र-सर करने में आपको गौरव प्राप्त हुआ है। भारत से साम्प्रदायिकता के वृक्ष के उन्मूलन में भी सारी अन्तः प्रेरणा आपकी ही रही है। अभी देश को आपसे अनेकों आशाएं हैं। भविष्य की गंभीर एवं संकटपूर्ण परिस्थितियों में भी आप देश का पूर्ववत् नेतृत्व करते रहेंगे, ऐसा आबाल-वृद्ध समग्र जन-साधारण का विश्वास है।

: ३१ :

आचार्य नरेन्द्रदेव

[जन्म सन् १८८९]

"इतिहास हमारे साथ है। आज जगत् एक नई व्यवस्था और नये समन्वय की खोज में है। हम अपने चारों ओर जो नागरिक अशान्ति और तीव्र संघर्ष देखते हैं, वह प्राचीन और नवीन संसार है, जो प्रभुता के लिए प्रयत्नशील है, संघर्ष का प्रतीक है। एक नया युग दृष्टिगोचर हो रहा है, और हम निश्चय ही मुक्ति के द्वार पर पहुँच गए हैं, किन्तु सामाजिक स्वाधीनता के सूर्य के उदय होने से पूर्व हमें अपने को नई सभ्यता के अनुकूल बनाना है।"

लम्बा और दुबला-पतला शरीर, प्रतिभा-सम्पन्न चेहरा, असहाय और दीन मजदूरों और किसानों के लिए सुख का मार्ग खोजती हुई आँखें, दीर्घ नासिका, साँवले ओठों पर खेलती हुई असाधारण मुस्कान की रेखा और लम्बी-लम्बी मूँछें : ये हैं समाजवादी दल के सम्मानित नेता आचार्य नरेन्द्रदेव ! आपको देखकर कौन विश्वास कर सकता है कि इस दुबले-पतले और कृश शरीर के अन्दर एक तेजस्वी और बलवान् आत्मा का निवास है ! आपकी महत्ता और सर्व-प्रियता का परि- [illegible] देने के लिए भी [illegible] और [illegible] जाती हैं जो

ए कहे थे—"गान्धी जी और कांग्रेस मुझसे बैठने के लिए कह रही है। हाँ, एक तरह तो मैं बैठ जाऊँ, यदि कांग्रेस आचार्य नरेन्द्रदेव को अध्यक्ष-पद देना स्वीकार कर ले।" आचार्य जी गुरु द्रोणाचार्य के समान सब दलों द्वारा समान रूप से पूजित और आदृत हैं। आप सुलझे हुए मस्तिष्क के आदर्शवादी व्यक्ति हैं। एक प्रसिद्ध विद्वान्, विवेचक, शोधक और राजनीतिज्ञ के रूप में आज आप देश की सेवा कर रहे हैं। आपका भाषण विचारोत्तेजक, धारा-प्रवाह और बड़ा सुन्दर होता है। भारत के अन्दर वाणी के इने-गिने विद्वानों में से आप एक हैं। बड़ी-से-बड़ी सभा को आप अपनी वाणी के द्वारा वश में रख सकते हैं। आपका व्यक्तित्व प्रभावपूर्ण, चरित्र निष्कलंक और स्वदेश-प्रेम उच्च कोटि का है।

आचार्य जी का जन्म सन् १८८९ में सीतापुर में हुआ था। आपके पिता श्री बलदेवप्रसाद जी फैजाबाद के रहने वाले हैं; किन्तु उस समय सीतापुर में वकालत करते थे। वे बड़े ही धर्मात्मा और ईश्वर-भक्त पुरुष थे उनकी इन धार्मिक प्रवृत्तियों का आचार्य जी के जीवन पर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा। यदि यों कहें कि आपका जीवन अपने पिता के सात्विक और सच्चरित्रतापूर्ण जीवन का प्रतिबिम्ब है—तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। बाल्यावस्था में ही आपने घर पर पिता जी से हिन्दी और संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। तुलसी-कृत रामायण और समग्र हिन्दी महाभारत आपने घर पर ही पढ़ा। १० वर्ष की आयु में आपका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ—उस समय आपने सम्पूर्ण गीता तथा रुद्री कंठस्थ कर ली थी। लघु कौमुदी और कोष भी पढ़ी थीं। १९०२ में आप स्कूल में भरती हुए और १९०७ में मैट्रिक पास

दिलचस्पी रखते थे, इसलिए प्रायः बड़े-बड़े नेता उनसे मिल
या करते थे। आपका भी उनसे परिचय होने लगा और आपके हृ
उनके व्यक्तित्व एवं बातों से विशेष प्रेरणा मिलने लगी। मैट्रि
के आप इलाहाबाद पढ़ने लगे। वहाँ मालवीय जी के कहने पर आ
दू बोर्डिंग हाउस में रहा करते थे।

बी० ए० पास करके आप पुरातत्त्व पढ़ने बनारस चले गए औ
ाँ डाक्टर वेनिस और नारमन-जैसे योग्य अध्यापकों से शिक्षा प्राप
। १९२२ में जब एम० ए० पास कर लिया, तब आपके घर वाल
वकालत पढ़ने का आग्रह किया। यद्यपि वकालत से आपको दिल
पी न थी, तथापि जब पुरातत्त्व-विभाग में स्थान न मिला तब इ
वार से कि वकालत करते हुए राजनीतिक कार्यों में भी भाग ले
गा, आप वकालत पढ़ने लगे। सन् १९१५ में एल-एल० बी० पा
के आप फैजाबाद आकर वकालत करने लगे और असहयोग-आन्
में उसका परित्याग किया।

हम ऊपर बता चुके हैं कि बाल्यावस्था में ही भारतीय संस्कृ
आपको असीम अनुराग हो गया था और पिता जी के साथ कांग्रे
धिवेशनों में तथा जलसों में सम्मिलित होने के कारण आप रा
तिक चर्चाओं में भी दिलचस्पी लेने लगे थे। धीरे-धीरे आपकी अभि
चि राजनीति की ओर बढ़ने लगी। आपके हृदय में कांग्रेस के प्र
द्धा और आदर के भाव अभी से उत्पन्न हो चुके थे। इन दिनों बं
ा के कारण कांग्रेस में एक नये दल का जन्म हुआ था, जिसके ने
कमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल आदि थे। यह गरम द
हलाता था। परिणामतः आपका झुकाव गरम दल की ओर ही हो

ी थी। उन दिनों आप कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में भ
म्मिलित हुए थे। उसके पश्चात् जहाँ भी उग्रवादी नेताओं का व्याख्य
ा, आप सुने बिना नहीं छोड़ते। आप धीरे-धीरे गरम दल क
हित्य एवं पत्र-पत्रिकाएं पढ़ने लगे। श्री अरविन्द घोष लेखों
आप पर बहुत प्रभाव डाला।

इसी बीच कुछ क्रान्तिकारियों से भी आपका सम्बन्ध हो गया थ
आप उनके कार्यों से भी दिलचस्पी रखने लगे थे। उस सम
क्रान्तिकारियों का विचार था कि हमें आई० सी० एस०में शामि
जाना चाहिए, जिससे कि क्रान्ति के समय हम शासन-भार संभा
। इस विचार से आप भी सहमत थे, अतः १९११ में अपने सा
थियों के साथ आप भी इङ्गलैण्ड जाने के लिए तैयार हो गए
तु आपकी माता जी ने आज्ञा न दी और आप रुक गए। आप
ी चले गए। उन दिनों लंदन, पैरिस, जिनेवा और बर्लिन आ
ों में क्रान्ति के केन्द्र स्थापित होने लगे थे और वहाँ से क्रान्तिका
हित्य प्रकाशित होता था। आपके मित्र आपके पास क्रान्तिका
हित्य भेजा करते थे और आप उसका गम्भीरता से अध्ययन कर
। इसके पश्चात् आपके विचार इतने गरम हो गए थे कि आप
ग्रेस के अधिवेशनों में भी जाना छोड़ दिया था। सन् १९१६
कांग्रेस के दोनों दलों में समझौता हो गया तब आप पु
ग्रेस में आ गए।

सन् १९१५ में श्रीमती एनी बेसेंट ने युक्तप्रान्त में 'होमरू
ग' की स्थापना की। आपने फैजाबाद में उसकी शाखा खोली अ
के मन्त्री बनाये गए। उन दिनों अली-बन्धुओं की नजरबन्दी

उत्साह और भी बढ़ गया और फिर तो आप बड़े सुन्दर और प्रभावशाली भाषण देने लगे। आपने स्वयं कहा है—"यह मेरा पहला भाषण था। मैं बोलते हुए बहुत डरता था, किन्तु किसी प्रकार बोल ही गया। कुछ लोगों ने मेरे भाषण की बड़ी प्रशंसा की। इससे मेरा उत्साह बढ़ गया और फिर धीरे-धीरे संकोच दूर हो गया। मैं अब सोचता हूँ कि यदि मेरा पहला भाषण बिगड़ गया होता तो शायद मैं भाषण देने का फिर कभी साहस न करता।"

अब राजनीतिक क्षेत्र में आपका पूरी तरह प्रवेश हो चुका था और आप सार्वजनिक कार्यों में तत्परता तथा लगन के साथ भाग लेने लगे थे। जनता भी आपके भाषणों से बड़ी प्रभावित होती थी। वास्तव में आपको नेता बनने का शौक न था—बल्कि सेवा करने की प्रबल भावना विद्यमान थी। काशी विद्यापीठ की स्थापना के समय श्री शिवप्रसादजी गुप्त ने आपको बनारस बुला लिया था। बरेली में जब युक्तप्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ, तब उसके आप सभापति बनाये गए थे। तब से आप बराबर राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेते रहे हैं। १९३४ में आपकी अध्यक्षता तथा नेतृत्व में पटना के अन्दर समाजवादी दल की स्थापना हुई थी। तब से आज तक बराबर आप अ० भा० सोश-लिस्ट पार्टी (समाजवादी दल) का संचालन कर रहे हैं। आप कई बार जेल जा चुके हैं। आपके नेतृत्व में समाजवादी दल ने जो उन्नति की है तथा समय-समय पर जनता की सेवा करके जिस त्याग-भावना एवं स्वदेश-प्रेम का परिचय दिया है, वह सराहनीय है। आज आपकी शिष्य-मण्डली सारे भारतवर्ष में फैली हुई है। उनमें से कई एक केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के मन्त्री हैं और कई

एवं शैक्षणिक क्षेत्र में भी आपका कार्य कुछ कम नहीं है। सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण जब आप कांग्रेस से पृथक् हुए थे, तब संयुक्त प्रान्त के प्रधान-मन्त्री पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त की आँखों में आँसू आ गए थे। यह आपकी सर्वप्रियता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

आजकल आपका शरीर वृद्ध हो गया है। राजेन्द्र बाबू की तरह आप भी दमे के रोग से पीड़ित हैं। फिर भी आप बराबर उसी उत्साह से देश-सेवा का कार्य कर रहे हैं। वक्ता होने के साथ-साथ आप एक अच्छे लेखक भी हैं। अतः आधुनिक भारत के निर्माताओं में आपकी गणना न करना एक भयंकर भूल ही होगी।



: ३२ :

जयप्रकाश नारायण

[जन्म सन् १६०२]

"मैं यह दावे के साथ कहता हूँ कि अहिंसा में मेरा भी उतना ही विश्वास है जितना कि मौलाना आजाद का, और हिंसा में मौलाना-आजाद का उतना ही विश्वास है जितना कि मेरा। महात्मा जी की अहिंसा के आगे मैं नतमस्तक हूँ, किन्तु उनके समान आत्म-बल और शक्ति न होने के कारण मैं बन्दूक लेकर दुश्मन से लड़ना आसान समझता हूँ।"

चौड़ा ललाट, चिपटी नाक, विशाल मुख, भावपूर्ण ठुड्डी—इन साधारण-सी रेखाओं से उस सेनानी जयप्रकाश के मुख का चित्र बनता है, जिसकी गति पर विद्रोह, प्रलय एवं उमंगों के तूफान मचलते रहे हैं। तूफानों और आँधियों से खेलने में जिसे सदैव आनन्द आता रहा है, शोषण का अन्त एवं शोषितों का उत्थान करना जिसका सदैव ध्येय रहा है, अगस्त-आन्दोलन में वृद्ध नेताओं के जेल-प्रवास पर जिसने यौवन के रक्त के साथ नवयुवकों का नेतृत्व किया था, वह जयप्रकाश



जयप्रकाश नारायण

मध्यस्थ-परिवार में १९०२ में जयप्रकाश ने जन्म लिया। बाल्य-काल देहाती वातावरण में ही व्यतीत हुआ। यहाँ तक कि १८-१९ वर्ष की आयु तक शहरी जीवन का उनको कतई ज्ञान न हो पाया। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके वे पटना-विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए। साहित्य में आपकी जितनी गति थी, विज्ञान से भी उतनी ही अभिरुचि थी। यह एक असाधारण बात थी; क्योंकि सामान्यतः एक ही व्यक्ति इन दोनों विषयों में समान रूप से निष्णात नहीं देखा जाता।

१९२०-२१ का असहयोग-आन्दोलन उसी समय प्रारम्भ हुआ जब आप विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे। सरकारी छात्र-वृत्ति को लात मार एवं अध्ययन का मोह छोड़ आप आन्दोलन में कूद पड़े। कारण स्पष्ट था, नेताओं ने विद्यार्थियों से कालिज छोड़ देने को कहा था। परन्तु चौरीचौरा के काण्ड के बाद आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। तरुण जयप्रकाश के हृदय पर इस घटना से आघात पहुँचा। अभी विद्याध्ययन की प्यास बुझी न थी। बस आप १९२० में अमेरिका जा पहुँचे और वहाँ आठ वर्ष तक अध्ययन करते रहे।

पैसे के नितान्त अभाव में अमेरिका में शिक्षा-प्राप्ति के लिए पहुँच जाना वस्तुतः दुःसाहस का कार्य था। परन्तु कठिनाइयों को झेलने में जयप्रकाश को सदैव से आनन्द आता रहा है। उनका वह प्रवासी छात्र जीवन बहुतों के लिए एक आदर्श बन गया है। वे विश्वविद्यालय के अवकाश के दिनों में मजदूरी करते एवं पढ़ाई के दिनों में विद्याध्ययन में संलग्न रहते। मजदूरी द्वारा अर्जित किये गए एक-एक पैसे का सदुपयोग करना वे सीख गए। नाना प्रकार की मजदूरियाँ करते-करते मजदूरों की समस्याओं का अत्यन्त निकट से अध्ययन करने का अवसर

गणित, रसायन, जीव-शास्त्र, एवं मनोविज्ञान का भी पर्याप्त अध्ययन किया था।

नई उमंगों और नई भावनाओं के साथ आठ-नौ वर्ष बाद जय-प्रकाश ने स्वदेश की भूमि पर कदम रखा। इस प्रकार से सुशिक्षित जयप्रकाश के लिए उस समय चारों ओर से अनेकों उच्च पदों के प्रलो-भन आ रहे थे। स्वयं मदनमोहन मालवीय उनको हिन्दू-विश्वविद्या-लय में समाज-शास्त्र का विभाग सौंपना चाहते थे। परन्तु मजदूरों और किसानों की सेवा को जयप्रकाश पहले से ही अपना ध्येय बना चुके थे। पं० नेहरू ने उनको अखिल भारतीय कांग्रेस के कार्यालय में नया खुलने वाला श्रमिक-अनुसंधान विभाग सौंप दिया।

तभी सन् ३० का आन्दोलन आरम्भ हो गया। उन दिनों काम करते हुए भी अपने को गिरफ्तारी से बचाए रखना अच्छा ही समझा जाता था। परन्तु अन्त में बहुत बचने के बाद जयप्रकाश भी गिरफ्तार कर लिये गए। उसी दिन बम्बई के 'फ्री प्रेस जर्नल' ने लिखा 'कांग्रेस का मस्तिष्क गिरफ्तार हो गया'।

जयप्रकाश को नासिक जेल में रखा गया था। यहाँ पर बहुत-से वामपक्षीय नेता भी रखे गए थे, जिनमें अच्युत पटवर्धन, यूसुफ मेहरअली, एम० आर० मसानी, पुरुषोत्तमदास त्रिक्रमदास, एवं नारायण गोरे के नाम उल्लेखनीय हैं। यह सम्मेलन एक सौभाग्य की ही बात थी। कांग्रेस-समाजवादी पार्टी की सारी योजना नासिक जेल में ही तैयार हुई।

कांग्रेस के रचनात्मक प्रोग्राम नवयुवकों के उल्लास के योग्य न

पार्टी' की ओर से कांग्रेस को साम्राज्य-विरोधी मोर्चा बनाने का विचार रखने वाले समाजवादियों का एक सम्मेलन उसी समय हुआ। इसी सम्मेलन में कांग्रेस में समाजवादी दल की स्थापना का निश्चय किया गया। जयप्रकाश नारायण ही उसके संयोजक बने। और तब से सभी को पता है कि जयप्रकाश ही उक्त दल के मेरुदण्ड रहे हैं। पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव के सभापतित्व में पहला सम्मेलन हुआ। जयप्रकाश बाबू ही महामन्त्री बनाये गए। दल के जन्म से ही जयप्रकाश इसके लिए सदैव सावधान रहे कि कांग्रेस-विरोधी तत्त्व और विशेषतः साम्यवादी उसमें प्रविष्ट होकर उस पर अधिकार न कर लें।

अखिल भारतीय समाजवादी दल का प्रथम अधिवेशन १६२५ में मेरठ में हुआ। पार्टी तुरन्त रचनात्मक कार्य में जुट गई। किसानों, मजदूरों में जयप्रकाश की धाक जम गई। वैसे तो अखिल भारतीय किसान मजदूर-सभाओं के कार्यकर्त्ताओं मे उनका नाम आने लगा, परन्तु बिहार प्रान्त में तो वे किसान-मजदूर-संगठनों के सर्वे-सर्वा बन गए। कांग्रेस नवीन संघ-विधान (१६३५) के अन्तर्गत प्रान्तों में मन्त्रि-मण्डल बनाने जा रही थी, परन्तु जयप्रकाश को यह अच्छा नहीं लग रहा था। सन् १६३६ में राष्ट्रपति पं० नेहरू ने उनको अपनी कार्य-समिति में ले लिया, परन्तु इस प्रकार अपने दल के कार्यक्रम से दूर पड़ना उनको रुचिकर न हुआ। त्याग-पत्र देकर वे कार्य-समिति से अलग हो गए, एवं कांग्रेस के वामपक्षी तत्त्वों के नेता बने।

यूरोपीय महायुद्ध में भारत को ब्रिटिश सरकार ने जबरदस्ती युद्ध-रत राष्ट्र घोषित कर दिया। महात्मा गांधी पहले तो सरकार से उचित वादा प्राप्त करने की आशा में बात चलाते रहे, फिर उन्होंने

प्रस्तुत अपने उपनिवेशों की रक्षा के लिए युद्ध कर ।
निर्भीकता पूर्वक 'न एक भाई न एक पाई' का घोष ।
प्रचार के अपराध में आपको १६४० में कैद कर लि
बयान में आपने कहा—"मेरे देश का इस युद्ध से
नहीं है; क्योंकि हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद और
दोनों को ही समान रीति से बुरा समझते हैं । दो
प्रेरित हैं । स्पष्टतः ऐसे युद्ध से भारत का कोई
हो सकता ।"

जयप्रकाश देवली-कैम्प में रखे गए थे । वहाँ के
विरोध में आपने विख्यात अनशन किया । सरक
घृणित प्रचार द्वारा एवं दमन द्वारा भूख-हड़ताल को
करना चाहा, परन्तु अन्त में उसको झुकना पड़ा ।
तोड़ देना पड़ा । महात्मा गान्धी ने अपने एक वक्त
उस हड़ताल एवं जयप्रकाश के पक्ष में कर दिया थ

देवली से आप बिहार हजारी बाग जेल भेज
बाहर जो जयप्रकाश ने पहले ही करना चाहा था,
भी करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा था । क
और सभी नेता जेल में ठूँस दिये गए । आंदो
जयप्रकाश ने पहले ही बना रखी थी । उसी रूप
समाजवादी देश में बड़े पैमाने पर आंदोलन च
जयप्रकाश स्वयं बाहर होने के लिए छटपटा रहे थे

अन्त में जयप्रकाश ने जेल से भागने की योजन

ी तरह से जयप्रकाश के पीछे पड़ी हुई थी। उनके लिए ह
ार का इनाम घोषित किया गया था। परन्तु जयप्रकाश भी ना
ा धारण कर सफलतापूर्वक आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। बम
कर अरुणा आसफअली और डा० राममनोहर लोहिया आ
ाजवादी मित्रों को साथ लेकर एक निश्चित योजना के अनुस
आंदोलन में प्राण फूँकने लगे। सुभाष बाबू द्वारा पूर्वी सीमा
ठत की गई आजाद हिन्द फौज का विवरण सुन जयप्रकाश ने स्वदे
एक आजाद फौज संगठित करना आरम्भ किया। जयप्रकाश ने इ
ा के संगठन का केन्द्र नेपाल राज्य की सीमा पर बनाया था
ाल-सरकार किसी प्रकार उनको एवं डा० राममनोहर लोहि
कैद करने में सफल हो गई। परन्तु दो दिन में आजाद फौज
पर आक्रमण करके आपको छुड़ाने में सफलता प्राप्त कर ली।

इस प्रकार पुलिस से बचते-बचते जयप्रकाश आंदोलन का संचाल
ते हुए देश का भ्रमण कर रहे थे। कई बार आप बिलकुल बाल
ा बचे। आपने मनीपुर जाकर नेताजी सुभाष से भी सम्प
ापित करने का प्रयास किया, परन्तु साधनों के अभाव से इस
लता न मिली।

बंगाल-दुर्भिक्ष में जयप्रकाश मिदनापुर जिले में पीड़ितों की सह
ा में संलग्न रहे। बंगाल-सरकार ने वहाँ पर उनको पकड़ने क
ाफल प्रयत्न किया। अन्त में जब वे पंजाब में रेल में यात्रा क
थे तब एक यूरोपियन तथा दो सिख सी०आई०डी० अफसरों द्वा
ाल में पकड़ लिये गए। इन्होंने पहले साधारण यात्री के रूप

जेलों में जो भीषण अत्याचार किये जाते थे, यह किला सम्भवतः उनसे भी आगे बढ़ा हुआ था।

अन्त में जनता के आन्दोलन के कारण सरकार को उन दोनों वीरों का तबादला आगरा केन्द्रीय जेल को करने के लिए विवश होना पड़ा। इस बीच वेवल-योजना के अनुसार कांग्रेसी नेता मुक्त हो चुके थे एवं शिमला-सम्मेलन आदि वैधानिक कदम प्रारम्भ हो गए थे। परन्तु जयप्रकाश एवं डा० लोहिया को मुक्त करने में सरकार अब भी आना-कानी कर रही थी। अन्त में जब महात्मा गान्धी ने भी उन दोनों पुरुष-पुङ्गवों को वीर बतलाया एवं उनकी प्रशंसा की तथा जनता की आवाज़ उनको रिहा करने के लिए उग्र होती गई, तो सरकार को छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ा। परन्तु यह सरलता से सम्पन्न नहीं हुआ था। महात्मा गान्धी ने स्वयं वायसराय को यह लिखा था। ब्रिटिश पार्लमेण्टरी शिष्ट-मण्डल के नेता सोरेन्सन ने ब्रिटिश सरकार को इसके लिए तार दिया था। फिर भी वायसराय उनको सबसे खतरनाक मनुष्य समझ रहे थे। अन्त में ११ अप्रैल, ४६ को उन दोनों को जेल से उस समय छोड़ा गया, जब केबिनट-मिशन भारत आया था और अन्तःकालीन सरकार की रूप-रेखा तैयार हो रही थी।

महात्मा गान्धी ने सन् १६४० में जयप्रकाश के विषय में कहा था—"जयप्रकाश बाबू एक असाधारण कार्यकर्त्ता हैं। समाजवाद पर आपका ज्ञान अधिकार-सम्पन्न है। यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजवाद के विषय में यदि उन्हें कोई बात मालूम न हो तो वह भारत में अन्य किसी को भी ——

जेल से बाहर आने के बाद जयप्रकाश बाबू समाजवादी दल के
ठन में लग गए। बँटवारे के प्रस्ताव पर समाजवादी दल ने
स्थता की नीति को अपनाया था। इसके बाद से कांग्रेस के
क्षपची वर्ग एं समाजवादी दल में काफी अन्तर पैदा होता
। अन्त में एक बार सरदार पटेल-जैसे गम्भीर व्यक्ति ने भी
त में यह कहा कि "शीघ्र ही यदि ये (समाजवादी) लोग
ग्रेस से बाहर न निकलेंगे, तो हम उनको मार्ग बतायेंगे।"
: वैसा हुआ भी। कांग्रेस के नये विधान के अनुसार समाजवादी
का कांग्रेस के अन्तर्गत रह सकना असम्भव हो गया।
ाजवादी पहले से ही यह अनुभव कर रहे थे कि एक-न-एक दि
को कांग्रेस से अलग तो होना ही है, परन्तु वे अपने-आप अल-
होना चाहते थे।

अन्त में अखिल भारतीय समाजवादी दल ने सर्वथा स्वतन्त्र रू
जन्म लिया। तब से समाजवादी देश में रचनात्मक कार्य में ल
हैं। यद्यपि वे जनमत की किसी बड़ी शक्ति को अब तक अपने हा
नहीं कर पाए हैं, परन्तु उनका भविष्य उज्ज्वल ही दिखला
ा है। स्वयं जयप्रकाश नारायण अनेकों मजदूर-किसान-संगठनों
ा हैं एवं अनेकों भारतीय नवयुवकों के हृदय-सम्राट् बने हुए हैं
जयप्रकाश का समाजवादी दल रचनात्मक एवं वैधानिक का
विश्वास रखता है। अभी पिछले दिनों रेलवे वालों और डाक वा
समझाकर उनकी हड़ताल को टाल देने में जयप्रकाश बाबू
ति-कुशलता दिखलाई थी। वस्तुतः तभी से उनको जन-साधार

क्रमशः मजदूरों और किसानों का विश्वास प्राप्त कर रहा है। आगामी निर्वाचन में यदि उनको विशेष सफलता प्राप्त नहीं भी हुई, तो भी वे कम-से-कम एक सशक्त विरोधी-दल बनाने में तो सफल हो ही जायंगे। भारत के इस नये प्रजातन्त्र को आज एक सबल विरोधी-दल की अत्यन्त आवश्यकता है। जयप्रकाश को छोड़कर और कोई व्यक्ति ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता, जो एक सबल विरोधी-दल का नेतृत्व कर सके एवं एक ठोस तथा व्यावहारिक कार्यक्रम देश के सम्मुख उपस्थित कर सके।